VIDYA UNIVERSITY PRESS

TOUCH n PASS

सर्वश्रेष्ठ परीक्षा पथ-प्रदर्शक

B.A.
द्वितीय वर्ष
(डिप्लोमा कोर्स)
सेमेस्टर-IV

अर्थशास्त्र

मुद्रा, बैंकिंग और सार्वजनिक वित्त

SYLLABUS

UNIT-I **Money and Value of Money :** Money - Meaning, Functions and Classification; Gresham's Law; Role of Money in Capitalist, Socialist and Mixed Economies; Monetary Standards - Metallic and Paper Systems of Note Issue.

Quantity Theory of Money - Cash Transaction and Cash Balance Approaches ; The Keynesian Approach.

UNIT-II **Supply of Money :** Definitions—Determinants of Money Supply—High Powered Money and Money Multiplier—Indian Currency system.

UNIT-III **Commercial Banking :** Meaning and types; Functions of Commercial Banks; The process of Credit Creation - Purpose and Limitations; Liabilities and Assets of banks; Evolution of Commercial banking in India after Independence; A Critical Appraisal of the Progress Of Commercial Banking after Nationalization; Recent Reforms in Banking Sector in India.

UNIT-IV **Functions of a Central Bank :** Quantitative and Qualitative Methods of Credit Control - Bank Rate Policy, Open Market Operations, Variable Reserve Ratio and Selective Methods; Role and Functions of the Reserve Bank of India; Objectives and Limitations of Monetary Policy with Special Reference to India.

UNIT-V **Nature and Scope of Public Finance :** Meaning and scope of Public Finance; Distinction between Private and Public Finance; Public Goods Vs. Private Goods; The Principle of Maximum Social Advantage; Market Failure; Role of the Government.

UNIT-VI **Public Expenditure :** Meaning, Classification and Principle of Public Expenditure; Canons and Effects of Public Expenditure; Trends in Public Expenditure and Causes of Growth of Public Expenditure in India.

UNIT-VII **Taxation :** Sources of Public Revenue; Taxation—Meaning, Canons and Classification of Taxes; Division of Tax Burden—The Benefit and Ability-To-Pay Approaches; Impact and Incidence of Taxes; Taxable Capacity; Effects of Taxation, Characteristics of A Good Tax System.

UNIT-VIII **Fiscal Policy :** Components, Instruments, Objectives. Role of Fiscal Policy in Developed and Developing Countries, Budget Structure of the Government of India, State Budget-Sources of Revenues and Expenditures. Major Tax Reforms in India. Goods & Service Tax (added), Fiscal Federalism in India : Union-State Fiscal Relations, Federal Fiscal Imbalances and the Role of Finance Commission. Finances of Local Bodies.

TOUCH n PASS

VIDYA®
UNIVERSITY PRESS

पंजीकृत कार्यालय
विद्या एम्पायर, बागपत रोड,
मेरठ, उत्तर प्रदेश (NCR) 250 002
www.vidyauniversitypress.com

© प्रकाशक

लेखन एवं सम्पादन
शोध एवं अनुसन्धान प्रकोष्ठ

मुद्रक
विद्या यूनिवर्सिटी प्रेस

TOUCH 'n' PASS

विषय-सूची

UNIT-I : मुद्रा और मुद्रा का मूल्य ...3
UNIT-II : मुद्रा की आपूर्ति ...42
UNIT-III : वाणिज्यिक अधिकोषण ...48
UNIT-IV : केन्द्रीय बैंक के कार्य ...67
UNIT-V : सार्वजनिक वित्त की प्रकृति और कार्यक्षेत्र ...81
UNIT-VI : सार्वजनिक व्यय ...95
UNIT-VII : कराधान ...112
UNIT-VIII : राजकोषीय नीति ...146

UNIT-I

मुद्रा और मुद्रा का मूल्य
Money and Value of Money

खण्ड-अ अतिलघु उत्तरीय प्रश्न

प्र.1. मुद्रा का क्या अर्थ है?
What is meaning of Money?

उत्तर 'मुद्रा' शब्द की उत्पत्ति संस्कृत भाषा में 'मणि' शब्द से हई जिसका अर्थ है 'मूल्यवान रत्न'। इस प्रकार मुद्रा का शाब्दिक अर्थ 'मूल्यवान पदार्थ' से है। मुद्रा को अंग्रेजी भाषा में 'money' कहते हैं।

प्र.2. द्रव्य और मुद्रा में भेद बताइए।
Give the difference between Money and Currency.

उत्तर साधारण बोलचाल में द्रव्य और मुद्रा को पर्यायवाची माना जाता है अर्थात् इनमें कोई भेद नहीं माना जाता परन्तु इन दोनों में यथेष्ठ अन्तर हैं। द्रव्य शब्द 'द्रवित' धातु से बना है जिसका अर्थ है धातु को पिघलाकर सिक्के ढालना। अत: द्रव्य से तात्पर्य धातु के ढले हुए सिक्कों से होता है। मुद्रा शब्द 'मुद्रण' धातु से बना है, जिसका अर्थ होता है छपी हुई अथवा मुद्रित वस्तु। अत: मुद्रा से तात्पर्य छपे हुए कागजी नोटों से होता है, परन्तु आजकल व्यवहार में द्रव्य व मुद्रा में कोई भेद नहीं किया जाता है। इन्हें सामानार्थी माना जाता है।

प्र.3. पत्र-मुद्रा को परिभाषित कीजिए।
Define Paper Money.

उत्तर कागज पर छपी मुद्रा को पत्र-मुद्रा कहते हैं। यह देश की सरकार अथवा देश के केन्द्रीय बैंक द्वारा छापी जाती है। यह विशेष प्रकार के कागज पर मुद्रित ऐसा प्रतिज्ञा-पत्र है जिस पर निर्गमन अधिकारी, माँगने पर एक निश्चित लिखित धनराशि देने का वचन देता है। प्राय: पत्र-मुद्रा की आड़ में सोना, चाँदी या उच्च श्रेणी की प्रतिभूतियों का कुछ कोष रखा जाता है। सभी देशों में आजकल पत्र-मुद्रा देश की प्रधान मुद्रा के रूप में प्रचलित है।
भारत में ₹ 1, 2, 5, 10, 20, 50, 100, 200, 500 तथा ₹ 2,000 के नोट प्रचलन में हैं। एक रुपये का नोट भारत सरकार द्वारा तथा शेष नोट रिजर्व बैंक ऑफ इण्डिया द्वारा जारी किए जाते हैं।

प्र.4. पत्र-मुद्रा की कोई पाँच विशेषताएँ लिखिए।
Write any five characteristics of Paper Money.

उत्तर पत्र-मुद्रा की पाँच विशेषताएँ निम्नलिखित हैं—

1. इसका निर्गमन सरकार अथवा केन्द्रीय बैंक के द्वारा किया जाता है।
2. यह विशेष प्रकार के कागज पर छपी होती है।
3. यह देश की प्रामाणिक मुद्रा होती है।
4. यह असीमित विधिग्राह्य होती है।
5. जारी किए गए नोटों पर सामान्यत: नोट की राशि, नोट संख्या एवं सरकार द्वारा गारण्टी छपी रहती है।

प्र.5. धातु-मुद्रा से आप क्या समझते हैं?
What do you understand by Metallic Money?

उत्तर धातु की बनी हुई मुद्रा धातु-मुद्रा कहलाती है। सिक्का; धातु का विशिष्ट रूप है। प्राचीनकाल में सोना तथा चाँदी आदि श्रेष्ठ धातुओं की मुद्राएँ चलन में थीं, परन्तु आजकल निकिल, ऐलुमिनियम, काँसा आदि निकृष्ट धातुओं के छोटे सिक्के बनाए

TOUCH 'n' PASS

जाते हैं। विभिन्न धातुओं को मुद्रा का रूप देने के लिए उसे निश्चित आकार के टुकड़ों में ढालकर उसे सरकारी मुहर द्वारा प्रमाणित किया जाता है।

जेवन्स के शब्दों में, "सिक्के धातु के ऐसे टुकड़ें हैं जिनकी तौल व शुद्धता उन पर अंकित मुहर द्वारा प्रमाणित होती है।

प्र.6. कीन्स के ब्याज सिद्धान्तों को संक्षेप में लिखिए।

Write briefly the Keynes' Theory of Interest.

उत्तर कीन्स के ब्याज सिद्धान्त निम्नलिखित हैं—

1. ब्याज का प्रतिष्ठित सिद्धान्त (रिकार्डो, मार्शल, पीगू आदि द्वारा प्रतिपादित)।
2. ऋण-देय कोष सिद्धान्त (प्रो० के० विक्सेल द्वारा प्रतिपादित)।
3. कीन्स का तरलता-अधिमान सिद्धान्त।
4. ब्याज का आधुनिक सिद्धान्त (प्रो० हिक्स एवं प्रो० लर्नर द्वारा प्रतिपादित।)

प्र.7. ब्याज क्या है?

What is Interest?

उत्तर ब्याज, राष्ट्रीय आय का वह भाग है जो पूँजी की सेवाओं के बदले में पूँजीपति को दिया जाता है। उत्पादन के पाँच साधनों में पूँजी एक महत्त्वपूर्ण साधन है। ब्याज, पूँजी की सेवाओं का पुरस्कार है।

प्र.8. तरलता-जाल किसे कहते हैं?

What is Liquidity Trap?

उत्तर एक ऐसी स्थिति जिसमें ब्याज की दर बहुत नीची हो जाए तो लोगों को उधार देने में अधिक जोखिम रहता है। ब्याज की न्यूनतम दर पर लोग समस्त मुद्रा को नकद (तरल) रूप में रखेंगे और उधार बन्द की नीति अपनाएँगे। इस स्थिति को कीन्स ने तरलता-जाल की संज्ञा दी है। इसमें मुद्रा की माँग अथवा तरलता-अधिमान अनन्त होता है।

प्र.9. ग्रेशम का नियम क्या है?

What is Gresham's Law?

उत्तर ग्रेशम का नियम एक सिद्धान्त है, जो बताता है कि "खराब मुद्रा अच्छी मुद्रा को बाहर कर देती है" और इसे मुद्रा बाजारों में लागू किया जा सकता है।

सिक्कों और उनके बाद के मूल्य के निर्माण के लिए कीमती धातुओं के ऐतिहासिक उपयोग से कानून उत्पन्न हुआ। धात्विक मुद्रा मानकों के परित्याग के बाद से, सिद्धान्त अक्सर वैश्विक बाजारों में विभिन्न मुद्राओं की स्थिरता एवं गति का वर्णन करता है।

प्र.10. ग्रेशम के नियम को उदाहरण देकर समझाइये।

Explain Gresham's law with example.

उत्तर सर थॉमस ग्रेशम 1519 से 1579 तक रहे और उन्होंने फाइनेंसर के रूप में काम करते हुए सिक्कों के मूल्य और ढलाई के बारे में लिखा और बाद में लंदन शहर के रॉयल एक्सचेंज की स्थापना की। जब हेनरी VIII ने अंग्रेजी शिलिंग की संरचना को बदल दिया, तो चाँदी के एक बड़े हिस्से को आधार धातुओं से बदल दिया, नागरिकों ने अंग्रेजी शिलिंग के सिक्कों को अलग कर दिया और अधिक चाँदी वाले सिक्कों को जमा कर दिया, जो उनके अंकित मूल्य से अधिक मूल्य के थे।

मुद्रा के दोनों प्रकार तरल थे और विनिमय के स्वीकार्य रूपों के रूप में उपयोग के लिए एक साथ उपलब्ध थे। ग्रेशम ने देखा कि खराब मुद्रा अच्छी मुद्रा को चलन के बाहर कर रही है। बैड मनी एक ऐसी मुद्रा है जिसका मूल्य उसके अंकित मूल्य के बराबर या उससे कम होता है। अच्छे पैसे में उसके अंकित मूल्य से अधिक मूल्य की क्षमता होती है। लोग पहले खराब पैसे का इस्तेमाल करना पसंद करेंगे और अच्छे पैसे को रोक कर रखेंगे। स्कॉटिश अर्थशास्त्री हेनरी डनिंग मैकलियोड ने 19वीं शताब्दी में इस कानून के लिए ग्रेशम को जिम्मेदार ठहराया।

TOUCH 'n' PASS

प्र.11. ग्रेशम का नियम कैसे लागू होता है जब कागज और कीमती धातु के सिक्के दोनों प्रचलन में हैं?
How does Gresham's law apply when both paper and precious metal coins are in circulation?

उत्तर ग्रेशम का नियम तब स्पष्ट होता है जब जनता द्वारा कागज के नोट स्वीकार किये जाते हैं और सोने और चाँदी के सिक्कों के साथ प्रसारित होते हैं। संयुक्त राज्य अमेरिका में क्रान्तिकारी युद्ध के दौरान, उस समय भुगतान के रूप में स्वीकार किये गये खराब पेपर मनी ने सभी मूल्यवान सोने और चाँदी के सिक्कों, अच्छे पैसे को संचलन से निकाल दिया।

प्र.12. कानूनी निविदा कानून क्या है?
What is legal tender law?

उत्तर सार्वजनिक निजी ऋण को व्यवस्थित करने या कर भुगतान, अनुबंध और कानूनी जुर्माना या क्षति सहित वित्तीय दायित्व को पूरा करने के साधन के रूप में कानून द्वारा मान्यता प्राप्त मुद्रा को परिभाषित करने के लिए देश कानूनी निविदा कानूनों को लागू करते हैं। राष्ट्रीय मुद्रा हर देश में कानूनी निविदा है।

प्र.13. स्वर्ण मानक का उपयोग ग्रेशम के नियम को कैसे प्रभावित करता है?
How does the use of the gold standard affect Gresham's law?

उत्तर जब 1944 में ब्रेटन वुड्स समझौते के माध्यम से अमेरिकी डॉलर को पहली बार दुनिया की आरक्षित मुद्रा के रूप में प्रमुखता मिली, तो इसे पूरी तरह से सोने का समर्थन प्राप्त था। चूँकि वैश्विक वित्तीय प्रणाली फिएट मुद्राओं में परिवर्तित हो गई है, इसलिए ग्रेशम के नियम के उदाहरण दुर्लभ हैं। ब्रेटन वुड्स प्रणाली के लिए आवश्यक था कि देश विदेशी सरकारों के लिए सोने की बुलियन में परिवर्तनीय डॉलर के साथ अमेरिकी डॉलर में अपनी मुद्राओं की परिवर्तनीयता की गारंटी दें।

खण्ड-ब लघु उत्तरीय प्रश्न

प्र.1. विधिग्राह्य मुद्रा तथा ऐच्छिक मुद्रा में अन्तर स्पष्ट कीजिए।
Clarify the difference between Legal Tander Money and Optical Money.

उत्तर

विधिग्राह्य मुद्रा तथा ऐच्छिक मुद्रा में अन्तर
(Difference between Legal Tander Money and Optical Money)

अन्तर का आधार	विधिग्राह्य मुद्रा	ऐच्छिक मुद्रा
वैधानिक बाध्यता	ऐसी मुद्रा को क्रय-विक्रय, ऋण आदि के भुगतान में जनता को कानूनन स्वीकार करना पड़ता है।	ऐसी मुद्रा को स्वीकार करने के लिए विधान द्वारा किसी को बाध्य नहीं किया जा सकता।
दण्ड की व्यवस्था	इसे स्वीकार न करना कानूनी अपराध होता है, अतः दोषी व्यक्ति दण्ड का भागी होता है।	इसे भुगतानों आदि में स्वीकार करना या न करना व्यक्ति की इच्छा पर निर्भर करता है।
स्वरूप	इसके अन्तर्गत सभी प्रकार के सिक्के तथा कागजी नोट आते हैं।	इसमें चेक, ड्राफ्ट, हुण्डी, विनिमय विपत्र आदि साख-पत्र आते हैं।
उपयुक्तता	थोड़ी रकम का भुगतान करने के लिए विधिग्राह्य मुद्रा उपयुक्त रहती है।	बड़ी रकम का भुगतान ऐच्छिक मुद्रा में करने में सुविधा रहती है।
प्रचलन का क्षेत्र	व्यवहार में अल्प-विकसित देशों में विधिग्राह्य मुद्रा का प्रयोग अधिक तथा ऐच्छिक मुद्रा का प्रयोग कम किया जाता है।	विकसित देशों में विधिग्राह्य मुद्रा की अपेक्षा ऐच्छिक मुद्रा का प्रयोग अधिक किया जाता है।
लाने व ले जाने सम्बन्धी जोखिम	विधिग्राह्य मुद्रा के लाने व ले जाने में जोखिम रहती है।	ऐच्छिक मुद्रा के लाने व ले जाने में कोई जोखिम नहीं होती है।
भुगतान की रसीद लेना	ऐसी मुद्रा द्वारा भुगतान किए जाने पर रसीद लेना आवश्यक होता है।	ऐच्छिक मुद्रा द्वारा भुगतान किए जाने पर रसीद लेना आवश्यक नहीं होता।
पूर्ति की कमी की सम्भावना	विधान द्वारा निर्गमित किए जाने के कारण विधिग्राह्य मुद्रा की पूर्ति के कम पड़ने का भय रहता है।	ऐच्छिक मुद्रा की पूर्ति के कम पड़ने पर कोई आशंका नहीं होती।

TOUCH 'n' PASS

प्र.2. धातु-मुद्रा के भेदों का उल्लेख कीजिए।
Explain the types of Metallic Money.

उत्तर

धातु-मुद्रा के भेद
(Types of Metallic Money)

धातु-मुद्रा दो प्रकार की होती है—

1. **प्रामाणिक मुद्रा या सिक्का**—इन सिक्कों में मुख्यत: निम्नलिखित विशेषताएँ पायी जाती हैं—
   (i) **प्रधान मुद्रा**—ये सिक्के देश की प्रधान मुद्रा होते हैं तथा वस्तुओं और सेवाओं का मूल्य इनमें व्यक्त किया जाता है।
   (ii) **अंकित मूल्य तथा धात्विक मूल्य समान होना**—इन सिक्कों का अंकित मूल्य तथा धात्विक मूल्य बराबर होता है।
   (iii) **असीमित विधिग्राह्य**—यह असीमित विधिग्राह्य होती है अर्थात् भुगतान किसी भी मात्रा में स्वीकार किया जाता है।
   (iv) **स्वतन्त्र अंकण**—इन सिक्कों की ढलाई स्वतन्त्र होती है, अत: कोई भी व्यक्ति अपने साथ धातु ले जाकर टकसाल में सिक्के ढलवा सकता है।
   (v) **उत्तम धातुओं का प्रयोग**—प्रामाणिक सिक्के प्राय: सोने व चाँदी जैसी उत्तम धातु के बने होते हैं।
2. **सांकेतिक मुद्रा या सिक्का**—इसे **प्रतीक मुद्रा** भी कहते हैं। ये प्रामाणिक सिक्कों के सहायक होते हैं। इन सिक्कों के प्रमुख लक्षण निम्नलिखित हैं—
   (i) **सहायक सिक्के**—ये प्रामाणिक सिक्कों के सहायक होते हैं। इनका प्रयोग छोटे-छोटे भुगतानों में किया जाता है।
   (ii) **अंकित मूल्य वास्तविक मूल्य से अधिक होना**—ऐसे सिक्कों का अंकित मूल्य, इनके धात्विक मूल्य से अधिक होता है, इसलिए सांकेतिक मुद्रा को **प्रादिष्ट मुद्रा** भी कहते हैं।
   (iii) **सीमित विधिग्राह्य**—इन्हें सीमित कानूनी मान्यता प्राप्त होती है अर्थात् इन्हें असीमित मात्रा में स्वीकार करने के लिए जनता को बाध्य नहीं किया जा सकता है।
   (iv) **सीमित मुद्रा ढलाई**—इन सिक्कों की ढलाई स्वतन्त्र नहीं होती है; अर्थात् जनता को यह अधिकार नहीं होता कि वह धातुओं को टकसाल में ले जाकर ऐसे सिक्कों को ढलवा ले।
   (v) **सस्ती धातुओं का प्रयोग**—ये सिक्के प्राय: घटिया तथा हल्की किस्म की धातुओं से बनाए जाते हैं।
3. **धातु-मुद्रा के गुण-दोष** (Merits-Demerits of Metallic Money)—अपने गुणों के कारण धातु-मुद्रा बहुत समय तक प्रचलित रही, किन्तु इसके कुछ दोषों के कारण संसार के लगभग सभी देशों में प्रधान मुद्रा के रूप में धातु-मुद्रा का प्रयोग बन्द हो गया है।

प्र.3. धातु-मुद्रा के गुण व दोषों को लिखिए।
Write the merits and demerits of Metallic Money.

उत्तर

धातु-मुद्रा के गुण
(Merits of Metallic Money)

धातु-मुद्रा के गुण निम्नलिखित हैं—

1. **मूल्य में स्थिरता**—धातु-मुद्रा के मूल्य में प्राय: स्थिरता रहती है, क्योंकि अन्य वस्तुओं के मूल्यों की तुलना में धातु के मूल्यों में उतार-चढ़ाव कम होते हैं।
2. **जनता का विश्वास**—धातु-मुद्रा मे धातु होने के कारण उसका कुछ-न-कुछ आन्तरिक मूल्य अवश्य रहता है, अत; धातु-मुद्रा में जनता का विश्वास बना रहता है।
3. **टिकाऊपन**—धातु-मुद्रा टिकाऊ होती है; क्योंकि धात्विक सिक्कों के गलने-सड़ने का भय नहीं होता। अत: इसका संचय आसानी से किया जा सकता है।
4. **मुद्रा प्रसार से सुरक्षा**—धातु-मुद्रा में सरकार धातु से अधिक मुद्रा का निर्गमन नहीं कर सकती, अत; इससे मुद्रा प्रसार का भय कम रहता है।
5. **पुन: प्रयोग सम्भव**—धातु-मुद्रा के घिस जाने पर अथवा खराब हो जाने पर उसे गलाकर पुन: नए सिक्कों का रूप देना सम्भव होता है।

TOUCH 'n PASS

6. **विमुद्रीकरण**—सरकार द्वारा विमुद्रीकरण करने पर धातु-मुद्रा में जनता को कम हानि होती है, क्योंकि सिक्कों को गलाकर कुछ धातु प्राप्त की जा सकती है।

धातु-मुद्रा के दोष
(Demerits of Metallic Money)

धातु-मुद्रा के दोष निम्नलिखित हैं—

1. **महँगी प्रणाली**—धातु स्वयं महँगी वस्तु है, फिर इसके गलाने व ढालने का व्यय भी अधिक आता है; अत: धातु-मुद्रा खर्चीली मुद्रा है।
2. **बहुमूल्य धातुओं की बर्बादी**—सोने या चाँदी के सिक्कों के प्रचलन में होने के कारण देश को इन बहुमूल्य धातुओं की चलन में होने वाली घिसाई के कारण हानि उठानी पड़ती है।
3. **मुद्रा संकुचन का भय**—प्राय: बहुमूल्य धातुओं का देश में अभाव रहता है, अत: मुद्रा संकुचन की समस्या बनी रहती है।
4. **लाने व ले जाने में कठिनाई**—धात्विक सिक्के भारी होते हैं, जिस कारण उन्हें एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाने व लाने में कठिनाई होती है।
5. **संचय करना कठिन**—यह अधिक स्थान घेरती है; अत: क्रय-शक्ति का संचय करने में कठिनाई होती है।
6. **समय एवं शक्ति का अपव्यय**—धातु-मुद्रा को जाँचने, परखने तथा गिनने में समय व शक्ति का अपव्यय होता है।

प्र.4. मौद्रिक नीति की असफलता के कारणों का उल्लेख कीजिए।
Mention the causes of failure of Monetary Policy.

उत्तर

मौद्रिक नीति की असफलता के कारण
(Causes of Failure of Monetory Policy)

विकासशील देशों में मौद्रिक नीति की सफलता में संदेह रहता है। इसका कारण यह है केन्द्रीय बैंक या सरकार की बेलोचपूर्ण अर्थव्यवस्था, जनता, उद्योग तथा शासन का सहयोग नहीं मिलता है। स्पष्ट शब्दों में कहा जाए तो— आर्थिक, प्रशासनिक, सामाजिक तथा राजनैतिक मोर्चे पर विद्यमान कुप्रबन्धन एवं भ्रष्टाचार विकासशील देशों में मौद्रिक नीति की असफलता के लिए मुख्य रूप से जिम्मेदार है। सहयोग न मिलने के कारण निम्नलिलिखित हैं—

1. विकासशील देशों में वस्तु विनिमय प्रणाली, सौदों की बहुत बड़ी मात्रा को नियन्त्रित करती है। जाहिर है कि मुद्रा का प्रयोग न होने के कारण मौद्रिक नीति की सफलता भी सन्देह के घेरे में आ जाती है।
2. विकासशील देशों में कुल साख की मात्रा का एक बड़ा भाग साहूकारों, जमीनदारों तथा सूदखोरों द्वारा पूरा किया जाता है। इनकी कार्य प्रणाली पर केन्द्रीय बैंक का प्रभाव नहीं पड़ता है। ऐसे में स्पष्ट है कि मौद्रिक नीति वांछनीय सफलता नहीं प्राप्त कर सकती है।
3. विकासशील देशों में स्कन्ध बाजार के सुव्यवस्थित न होने के कारण केन्द्रीय बैंकों को खुले बाजार की क्रियाएँ (प्रतिभूतियों का क्रय तथा विक्रय) सम्पन्न करने में असुविधा होती है। जाहिर है कि मौद्रिक नीति ऐसे में पूर्ण सफल नहीं हो सकती है।
4. विकासशील देशों में बैंकों के बीच आपसी व्यवहार में दृढ़ता पाए जाने के साथ-साथ उनके बीच असहयोगात्मक रवैया पाया जाता है। इसी वजह से मौद्रिक नीति को अपेक्षित सफलता नहीं प्राप्त होती है। मौद्रिक नीति को सफल बनाने के लिए मजबूत बैंकिंग व्यवस्था का गठन आवश्यक है।

प्र.5. भारत में मौद्रिक नीति के उद्देश्यों को लिखिए।
Write the objectives of Monetary Policy in India.

उत्तर

भारत में मौद्रिक नीति का उद्देश्य
(Objectives of Monetory Policy in India)

भारतीय मौद्रिक पद्धति पर कार्य करने के लिए गठित चक्रवर्ती समिति ने 1985 में अपना प्रतिवेदन प्रस्तुत किया, जिसमें मौद्रिक नीति के अग्रलिखित समष्टि आर्थिक उद्देश्य निर्धारित किए गए—

TOUCH 'n' PASS

1. मूल्य स्थिरता
2. बचत को प्रोत्साहन
3. गैर स्फीतिक तरीके से संसाधनों को गतिशील करना।
4. अधिक उत्पादकता के उद्देश्य से संसाधनों का प्राथमिकता के क्षेत्र में आवंटन तथा
5. कुशल भुगतान पद्धति को बढ़ावा देना।

भारत में योजना काल के दौरान मौद्रिक नीति के निम्नलिखित उद्देश्य रहे हैं—

1. बचतों को गतिशील करना।
2. विनियोग को प्रोत्साहन देना तथा ऐसा माहौल उत्पन्न करना जो योजना के उद्देश्यों को प्राप्त करने में सहायक हो सके।
3. सम्पूर्ण आर्थिक वृद्धि के लक्ष्य को सुनिश्चित करने के लिए कृषि, उद्योग तथा अन्य उत्पादक क्षेत्रों को पर्याप्त साख सुविधाएँ उपलब्ध करना।
4. स्फीति को रोकना तथा सापेक्षिक कीमतों और सामान्य कीमत स्तर का विवेकपूर्ण तथा अर्थव्यवस्था सहयोगी स्वरूप सुनिश्चित करना।
5. बिना किसी वित्तीय व्यवधानों के आर्थिक विकास को आगे बढ़ाना।

आप यदि ध्यान दें तो पाएँगे कि सभी उद्देश्य एक-दूसरे से सम्बन्धित है। हाँ, थोड़ा विवाद दो बड़े लक्ष्यों—आर्थिक वृद्धि तथा कीमत स्थिरता के बीच हो सकता है। अत: इन दोनों का भी समन्वय आवश्यक है। साठ के दशक से रिजर्व बैंक की नीति नियन्त्रित विस्तार की रही है। जबकि सत्तर के दौरान आर०बी०आई० का उद्देश्य स्थिरता तथा सामाजिक न्याय के साथ विकास रहा है। अर्थात् विकास के वितरणात्मक पहलू पर विशेष ध्यान दिया गया। वर्तमान समय में प्राथमिकता वाले क्षेत्रों को पर्याप्त साख उपलब्ध कराने के लिए केन्द्रीय बैंक उदार मौद्रिक नीति का पालन कर रहा है।

प्र.6. लेन-देन एवं शेष दृष्टिकोण का तुलनात्मक विश्लेषण कीजिए।
Make a comparative analysis of the Transaction and Balance Approach.

उत्तर

तुलनात्मक विश्लेषण (लेन-देन एवं शेष दृष्टिकोण)
(Comparative Analysis (Transaction and Balance Approach)

फिशर एवं कैम्ब्रिज समीकरणों की तुलना (Comparison between Fisher's and Cambridge Equation)—

क्र०सं०	आधार	फिशर	कैम्ब्रिज
1.	मुद्रा की माँग	मुद्रा को विनिमय का माध्यम माना गया	मुद्रा के संचय कार्य को अधिक महत्त्व प्रदान किया गया
2.	मुद्रा का मूल्य निर्धारण	पूर्ति को अधिक महत्त्व	माँग को महत्त्व
3.	प्रवाह तथा स्टॉक	मुद्रा को प्रवाह माना	मुद्रा को स्टॉक माना
4.	प्रचलन गति	महत्त्वपूर्ण	महत्त्वहीन
5.	समय सीमा	समयावधि से सम्बन्धित	समय बिन्दु से सम्बन्धित
6.	कीमत स्तर	सामान्य कीमत स्तर की व्याख्या करता है।	कीमत स्तर उपभोग वस्तुओं की कीमत को व्यक्त करता है।
7.	काल	दीर्घकाल परिवर्तनों की ओर संकेत करता है।	अल्पकालीन समायोजन की व्याख्या करता है।
8.	ब्याज दर	ब्याज दर की उपेक्षा	ब्याज दर को महत्त्व

प्र.7. कैम्ब्रिज समीकरण की श्रेष्ठता लिखिए।
Write the merits of Cambridge Equation.

उत्तर

कैम्ब्रिज समीकरण की श्रेष्ठता
(Merits of Cambridge Equation)

कैम्ब्रिज समीकरण अनेक कारणों से फिशर के समीकरण से श्रेष्ठ है। यद्यपि कि राबर्टसन ने कहा कि मोटे तौर पर दोनों समीकरण एक ही सिक्के के दो पहलू हैं।

TOUCH 'n' PASS

1. कैम्ब्रिज समीकरण नकद शेष पर विशेष बल दिया तथा इसको प्रभावित करने वाले मानवीय कारकों; जैसे—प्रेरणाएँ, निश्चितताएँ आदि के प्रभाव को सम्मिलित करने से इसकी व्याख्या व्यापक हो गई।
2. इसमें कुल व्यापारिक लेन-देन के स्थान पर आय के स्तर को सम्मिलित किया गया है, जो डे के अनुसार आधुनिक आर्थिक सिद्धान्त में अधिक उपयोगी सिद्ध हुआ।
3. कुरीहारा के अनुसार कैम्ब्रिज समीकरणों के चरों को ज्ञात करना फिशर के समीकरण के चरों से अधिक सरल है।
4. फिशर का समीकरण मूल्य निर्धारण में केवल मुद्रा की पूर्ति के महत्त्व को स्वीकार करता है जबकि कैम्ब्रिज समीकरण मुद्रा के मूल्य सिद्धान्त को मूल्य के सामान्य सिद्धान्त का ही अंश मानता है।
5. नकद शेष सिद्धान्त ने तरलता पसंदगी सिद्धान्त के प्रतिपादन में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभायी।

अन्त में कैम्ब्रिज सिद्धान्त की श्रेष्ठता सिद्ध करने के लिए प्रो हेंसन को उद्धृत कर सकते हैं—'मुद्रा परिणाम सिद्धान्त का मार्शल दृष्टिकोण $M = KY$ मुद्रा तथा मूल्य के सम्बन्ध में एक सर्वथा नया तथा मौलिक दृष्टिकोण प्रस्तुत करता है। यह कहना जैसा प्राय: कहा जाता है कि, नए बीजगणितीय पोषाक में यह नकद सौदा दृष्टिकोण ही है, गलत है।' ऐसा कहना वस्तुत: मार्शल के समीकरण में उल्लिखित K के महत्त्व की अवहेलना करना है।

प्र.8. टोबिन का तरलता अधिमान फलन का उल्लेख कीजिए।
Mention the liquidity preference function of Tobin.

उत्तर

टोबिन का तरलता अधिमान फलन
(Tobin's Liquidity Preference Function)

टोबिन ने ब्याज दर तथा मुद्रा के माँग के बीच सम्बन्ध को प्रदर्शित करने वाल अपना तरलता अधिमान फलन व्युत्पन्न किया। उनका तर्क है कि ब्याज दर (ऋणपत्रों पर प्रतिफल की दर) में वृद्धि होने पर सामान्यता सम्पत्ति धारक अपनी सम्पत्ति को अपेक्षाकृत अधिक अंश ऋणपत्रों के रूप में रखने के लिए आकर्षित होंगे तथा अपने सम्पत्ति को मुद्रा के रूप में संचय में कमी करेंगे। इसके विपरीत अपेक्षाकृत कम ब्याज दर पर वे अपने पोर्टफोलियों में अधिक मुद्रा तथा कम ऋणपत्र रखेंगे। इसका अभिप्राय यह कि केन्ज के सट्टे के उद्देश्य से मुद्रा की माँग के समान टोबिन पोर्टफोलियों दृष्टिकोण के अन्तर्गत परिसम्पत्ति के रूप में मुद्रा का माँग फलन (अर्थात् तरलता अधिमान फलन) नीचे की ओर गिरता हुआ होता है जैसाकि रेखाचित्र द्वारा प्रदर्शित किया गया है।

फिशर (1975) ने यह तर्क दिया कि आर्थिक व्यक्ति का जोखिम से बचने के व्यवहार का अकेले मुद्रा का संचय कोई आधार प्रदान नहीं करती क्योंकि टोबिन के अनुसार मुद्रा पूरी तरह से जोखिम मुक्त नहीं होती। एक अन्य प्रारूप अर्न्तव्यापी पीढ़ी मॉडल भी मुद्रा के भण्डार मूल्य फलन के महत्त्व को दर्शाता है। थामस साजेन्ट एवं नील वालेरस के द्वारा 1980 में इस प्रारूप को ख्याति मिली जिसको सेम्युलसन के द्वारा आरम्भ किया गया था। अतिव्यापी पीढ़ी मॉडल एक सन्तुलित गतिशील मॉडल है जो भिन्न-भिन्न पीढ़ियों के बचत के महत्त्व को बताती है।

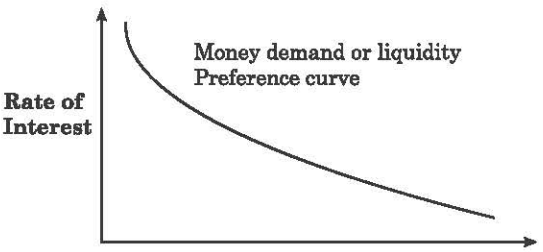

रेखाचित्र

मुद्रा के वर्तमान लेन-देन को पूरी तरह से नजरअंदाज करते हुए मुद्रा को विनिमय फलन के साथ विशुद्ध रूप से एक परिसम्पत्ति माना जाता है। प्रत्येक व्यक्ति अपने जन्म के समय से ही कुछ निश्चित वस्तुओं का उपयोग करता है जो कि कम रिकॉर्ड होते हैं और अगली समयावधि में उपयोग के लिए उपलब्ध नहीं होते हैं। अर्थात् इन्हें पुन: उपभोग के लिए संगृहीत नहीं किया जा सकता है। यद्यपि Enclowment का विनिमय मुद्रा के साथ किया जा सकता है जिसे किसी समय अवधि में संगृहीत किया जा सकता है। किसी भी अवधि में युवा अपने उपभोग की वस्तुओं का विनिमय पुरानीपीढ़ी से करते हैं जो पुरानी-पीढ़ी को उस अवधि में उपभोग को सुविधाजनक बनाती है।

इस प्रकार ऐसा लगता है कि इन सभी प्रारूप में मुद्रा ही विनिमय का माध्यम है लेकिन इसके भण्डारण मूल्य की क्षमता सम्भावित उपभोग के बदलाव की सुविधा देती है। इस प्रकार से प्रारूप हमें यह बताने का प्रयत्न करते हैं कि मुद्रा की माँग परिसम्पत्ति के रूप में मानते हैं न कि विनिमय के रूप में। इन प्रारूपों की मुख्य आलोचना इस आधार पर की गई है कि ये इस बात को स्पष्ट करने में

TOUCH 'n PASS

असफल होते हैं कि परिसम्पत्तियों के दूसरे रूप की अपेक्षा मुद्रा के रूप में क्यों रखा जाता है जबकि वहाँ पर कम जोखिम और धनात्मक ब्याज भी मिलता है।

प्र.9. उपभोक्ता माँग सिद्धान्त दृष्टिकोण की व्याख्या कीजिए।

Explain the Consumer Demand Theory Analysis.

उत्तर

उपभोक्ता माँग सिद्धान्त दृष्टिकोण
(Consumer Demand Theory Analysis)

मुद्रा का विश्लेषण फ्रीडमैन के उपभोक्ता के माँग सिद्धान्त के अन्तर्गत किया गया हैं जिसमें यह स्पष्ट किया गया है कि कोई व्यक्ति किसी वस्तु का संग्रहण इसलिए करता है कि उस वस्तु का उपभोग कर सके। यह सिद्धान्त शिकागो स्कूल से सम्बन्धित है। जिसमें मुद्रा की माँग को किसी टिकाऊ सामान के माँग की पारम्परिक सिद्धान्त का प्रत्यक्ष विस्तार बताया गया है। फ्रीडमैन मुद्रा को परिसम्पत्तियों के एक ऐसे प्रकार के रूप में मानते हैं जिसमें सम्पत्ति संचय करने वाले अपनी सम्पत्ति के एक भाग को तरल रख सकता है। फ्रीडमैन के अनुसार, "व्यक्ति मुद्रा का संचय उसके द्वारा प्रदान की जाने वाली सेवाओं के लिए करते हैं।" यह ध्यान रहे कि मुद्रा द्वारा प्रदान की जाने वाली सेवाओं से अभिप्राय सामान्य क्रय-शक्ति से होता है। मुद्रा की माँग से सम्बन्धित उनका दृष्टिकोण न तो मुद्रा संचय के किसी उद्देश्य पर विचार करता है और न ही यह सट्टा तथा क्रय-विक्रय के उद्देश्य से मुद्रा की माँग के बीच कोई अन्तर करता है। फ्रीडमैन मुद्रा की माँग को केवल पूँजीगत परिसम्पत्तियों की माँग के सामान्य सिद्धान्त के प्रयोग के रूप में ही मानते हैं।

फ्रीडमैन का मुद्रा नकद माँग फलन (M^d) को निम्न प्रकार लिखा जा सकता है—

$$M^d = f(W, h, r_m, r_b, r_c, P, \Delta P/p.U)$$

चूँकि वास्तविक मुद्रा शेषों की माँग की नकद माँग को कीमत स्तर द्वारा विभाजित करने पर प्राप्त किया जाता है, अत: वास्तविक मुद्रा शेष को निम्न प्रकार लिखा जा सकता है—

$$M^d = f(W, h, r_m, r_b, r_c, \Delta P/p.U)$$

जहाँ M^d मुद्रा की नकद माँग, M^d/P वास्तविक मुद्रा शेष की माँग, w व्यक्तियों की सम्पत्ति, h व्यक्तियों द्वारा संचित मानवीय सम्पत्ति तथा कुल सम्पत्ति का अनुपात, r_m ब्याज की दर, r_b ऋणपत्रों पर ब्याज की दर, r_c शेयरों पर प्रतिफल की दर, P कीमत स्तर, $\Delta P/p$ कीमत स्तर में परिवर्तन तथा U संस्थागत तत्त्वों को प्रदर्शित करते हैं।

यह विशेष महत्त्वपूर्ण है कि मुद्रा की माँग को निर्धारित करने वाला प्रमुख तत्त्व व्यक्तियों की सम्पत्ति होती है। सम्पत्ति के अन्तर्गत फ्रीडमैन ने ऋणपत्र शेयर या मुद्रा जैसी गैर-मानवीय सम्पत्ति ही नहीं सम्मिलित करते जिनसे प्रतिफल की विभिन्न दरें प्राप्त होती हैं बल्कि मानवीय पूँजी को भी सम्मिलित करते हैं।

कीन्स के सिद्धान्त के विपरीत फ्रीडमैन ने यह माना कि लोग कैम्ब्रिज स्कूल के परिमाणात्मक सिद्धान्त के अनुसार मुद्रा का संग्रह करते हैं। इसके अतिरिक्त इस बात का भी विश्लेषण किया कि किसी व्यक्ति विशेष के विभिन्न परिस्थितियों में कितनी मुद्रा की आवश्यकता होती है। एक छोटा-सा अन्तर फ्रीडमैन सिद्धान्त और उसके पूर्व के सिद्धान्तों में यह है कि फ्रीडमैन का विश्लेषण वृहद-मुद्रा पर आधारित है जबकि पहले के सिद्धान्त नैरो मनी पर आधारित है। फ्रीडमैन ने कीन्जोपरान्त मुद्रा के माँग के सिद्धान्तों का अनुसरण किया जहाँ मुद्रा वित्तीय परिसम्पत्ति का एक हिस्सा माना जाता है। फ्रीडमैन ने बताया कि इन वास्तविक वस्तुओं को भी पोर्टफोलियों में शामिल करना चाहिए क्योंकि ये कई प्रकार की सेवाओं को उत्पन्न करते हैं। फ्रीडमैन का मत है कि "परिवर्तनशील अवसर लागत और अनुमानित मुद्रा स्फीति की दर का मुद्रा माँग फलन में सैद्धान्तिक महत्त्व होता है।"

वर्तमान में उपभोक्ता का माँग सिद्धान्त मौद्रिक सिद्धान्त के क्षेत्र में मुख्य भूमिका अदा कर रहा है। विचार यह है कि मौद्रिक समूह जैसे M_1, M_2, M_3 और L के गणना में समान भारांकों का उपयोग किया जाए।

प्र.10. कीन्स के ब्याज सिद्धान्त की आलोचनात्मक व्याख्या कीजिए।

Critically explain Keynes' Theory of Interest.

उत्तर

कीन्स के ब्याज सिद्धान्त की आलोचना
(Criticism of Keynes' Theory of Interest)

कीन्स का ब्याज दर का सिद्धान्त एक यथार्थवादी एवं प्रावैगिक सिद्धान्त है। यह ब्याज दर के निर्धारण की व्याख्या उपयुक्त ढंग से करता है। यह प्रतिष्ठित सिद्धान्त पर एक सुधार है। जहाँ प्रतिष्ठित सिद्धान्त मुद्रा को 'विनिमय का माध्यम' मानता है वहीं कीन्स

मुद्रा के 'मूल्य-संचय' के कार्य को भी विशेष महत्त्व देता है। विभिन्न विशेषताओं के होते हुए भी इस सिद्धान्त में कुछ कमियाँ हैं जिसके आधार पर इसकी आलोचनाएँ की जाती हैं। ये आलोचनाएँ निम्नलिखित हैं—

1. **यह सिद्धान्त पूँजी की उत्पादकता पर ध्यान नहीं देता**—पूँजी में उत्पादकता का गुण होता है। मुद्रा की माँग मुद्रा को नकद अथवा तरल रूप में रखने के अतिरिक्त पूँजीगत वस्तुओं में निवेश करने के लिए भी की जाती हैं ऋणी व्यक्ति पूँजी का उत्पाद कार्यों में उपयोग कर अपने उत्पादन एवं आय को बढ़ाता है परन्तु प्रो० कीन्स द्वारा प्रतिपादित तरलता-अधिमान सिद्धान्त मुद्रा की माँग के अन्तर्गत पूँजी की उत्पादकता पर ध्यान नहीं देता है।
2. **कीन्स का सिद्धान्त एकपक्षीय है**—कीन्स का तरलता-अधिमान सिद्धान्त एकपक्षीय सिद्धान्त है क्योंकि यह केवल मुद्रा की माँग पर ही विशेष जोर देता है, मुद्रा की पूर्ति पर कोई ध्यान नहीं देता है। यह सिद्धान्त मुद्रा की पूर्ति को स्थिर मानकर उसकी उपेक्षा कर देता है।
3. **दीर्घकाल में ब्याज-दर के निर्धारण पर ध्यान नहीं देता है**—पूँजी के विनियोग की दृष्टि से अल्पकालीन ब्याज-दर की तुलना में दीर्घकालीन ब्याज-दर अधिक महत्त्वपूर्ण है, परन्तु यह सिद्धान्त अल्पकाल में ब्याज-दर के निर्धारण की व्याख्या को करता है। दीर्घकाल में ब्याज के निर्धारण पर इसमें कोई ध्यान नहीं दिया गया है।
4. **यह सिद्धान्त संकुचित है**—यह सिद्धान्त एक संकुचित सिद्धान्त है। इसमें ब्याज दर के निर्धारण के प्रमुख तत्त्व 'तरलता' की इच्छा केवल तीन उद्देश्यों—लेन-देन, दूरदर्शिता एवं सट्टा हेतु किया जाना बताया गया है जबकि इसके अन्य भी कई उद्देश्य होते हैं, जिन पर ध्यान नहीं दिया गया है।
5. **विकसित देशों हेतु उपयुक्त सिद्धान्त**—कीन्स का तरलता-अधिमान सिद्धान्त विकसित देशों हेतु उपयुक्त है जहाँ पर मुद्रा बाजार विस्तृत एवं संगठित होता है। अविकसित देशों में संगठित मुद्रा बाजार के अभाव में यह सिद्धान्त लागू नहीं होता है।
6. **अनिश्चित सिद्धान्त**—यह सिद्धान्त एक अनिश्चित सिद्धान्त है। इस सिद्धान्त के अनुसार ब्याज दर का निर्धारण मुद्रा की माँग एवं मुद्रा की पूर्ति द्वारा होता है परन्तु मुद्रा की माँग अर्थात् तरलता-अधिमान (विशेषत: सट्टा उद्देश्य हेतु) आय पर निर्भर होती है। आय-स्तर का पता हम तब तक नहीं लगा सकते जब तक कि ब्याज की दर ज्ञात न हो। इस प्रकार, कीन्स का सिद्धान्त एक अनिश्चित सिद्धान्त है।

प्र.11. अच्छा पैसा बनाम बुरा पैसा से क्या समझते हो?

What do you understand by good money vs bad money?

उत्तर ऐतिहासिक रूप से, टकसालों ने सोने, चाँदी और अन्य कीमती धातुओं से सिक्कों का निर्माण किया, जिसने सिक्कों को उनका मूल्य दिया। सिक्कों के जारीकर्त्ताओं ने कभी-कभी उपयोग की जाने वाली कीमती धातुओं के स्तर को कम कर दिया और सिक्कों को पूर्ण मूल्य के सिक्कों के रूप में पारित कर दिया। कम धातु सामग्री वाले नये सिक्कों का बाजार मूल्य कम था और छूट पर कारोबार होता था। पुराने सिक्कों का मूल्य अधिक बना रहता है।

हालाँकि कानूनी निविदा कानूनों ने अनिवार्य किया कि कम धातु सामग्री वाले नये सिक्कों का अंकित मूल्य पुराने सिक्कों के समान ही हो। नये सिक्कों को कानूनी रूप से अधिक मूल्य दिया गया था और पुराने सिक्कों को कानूनी रूप से कम करके आंका गया था। सरकारों, शासकों और अन्य सिक्का जारीकर्त्ताओं ने अक्सर इस नीति को लागू किया ताकि राजस्व प्राप्त किया जा सके और नये सिक्कों का सममूल्य पर उपयोग करके पुराने सिक्कों में उधार लिया गया कर्ज चुकाया जा सके।

कानूनी रूप से दोनों प्रकार के सिक्कों को एक ही मौद्रिक इकाई के रूप में मानने के लिए मजबूर किया गया, खरीदारों ने जितनी जल्दी हो सके अपने कम मूल्यवान सिक्कों के साथ पारित किया और पुराने सिक्कों पर कब्जा कर लिया, इस प्रकार मुद्रा को कम कर दिया, जिससे मुद्रा इकाइयों की क्रय शक्ति में गिरावट आई। ग्रेशम के कानून से लड़ने के लिए, सरकारों ने अक्सर सट्टेबाजों को दोषी ठहराया, मुद्रा नियन्त्रण लागू किया, संचलन से सिक्कों को हटाने पर रोक लगा दी, या निजी स्वामित्व वाली कीमती धातु की आपूर्ति को जब्त कर लिया।

प्र.12. ग्रेशम का कानून और कानूनी निविदा पर प्रकाश डालिए।

Highlight Gresham's Law and Legal Tender.

उत्तर ग्रेशम का कानून आधुनिक अर्थव्यवस्था में कानूनी निविदा कानूनों के साथ स्पष्ट है। जब सभी मुद्रा इकाइयों को समान अंकित मूल्य पर मान्यता प्राप्त करने के लिए कानूनी रूप से अनिवार्य किया जाता है, तो ग्रेशम के कानून का पारम्परिक संस्करण

संचालित होता है। प्रभावी रूप से लागू कानूनी निविदा कानूनों की अनुपस्थिति में, ग्रेशम का कानून उल्टा काम करता है क्योंकि अच्छा पैसा खराब पैसे को प्रचलन से बाहर कर देता है जहाँ लोग कम मूल्यवान धन को स्वीकार करने से मना कर सकते हैं। पेपर मनी को कानूनी मुद्रा के रूप में अपनाने के साथ, पैसे जारी करने वाले अस्तित्व में पैसे प्रिंट कर सकते हैं और इस चल रही गिरावट ने अधिकांश अर्थव्यवस्थाओं में मुद्रा स्फीति की एक सतत् प्रवृत्ति को आदर्श बना दिया है। यदि कोई मुद्रा तेजी से मूल्य खो देती है, तो लोग अधिक स्थिर विदेशी मुद्राओं के पक्ष में इसका उपयोग करना बंद कर देते हैं, कभी-कभी दमनकारी कानूनी दण्ड के सामने भी।

2008 में जिम्बाब्वे में हाइपरफ्लिनेशन की अवधि के दौरान जिम्बाब्वे डॉलर कानूनी मुद्रा थी और कई लोगों ने लेन-देन में इसके उपयोग को छोड़ दिया, अन्ततः सरकार को अर्थव्यवस्था के वास्तविक और बाद में कानूनी रूप से डॉलरकरण को मान्यता देने के लिए मजबूर किया। लगभग मूल्यहीन मुद्रा के साथ आर्थिक संकट की अराजकता में, सरकार अपने कानूनी निविदा कानूनों को लागू करने में असमर्थ थी। अच्छे, स्थिर धन ने खराब, अतिप्रवाहित धन को चलन से बाहर कर दिया।

अमेरिकी डॉलर या यूरो जैसी स्थिर मुद्राओं को अच्छा पैसा माना जा सकता है क्योंकि वे विनिमय के एक अन्तर्राष्ट्रीय माध्यम के रूप में परिचालित होते हैं। कम विकसित देशों की कमजोर मुद्राएँ उनके जारीकर्त्ता देशों के अधिकार क्षेत्र के बाहर बहुत कम परिचालित होती हैं और इसे खराब धन माना जा सकता है।

ग्रेशम के नियम का उदाहरण—1982 में, अमेरिकी सरकार ने 97.5% जस्ता शामिल करने के लिए पेनी की संरचना को बदल दिया। इस परिवर्तन ने 1982 के पूर्व के पेनीज को उनके 1982 के बाद के समकक्षों की तुलना में अधिक मूल्य का बना दिया, जबकि अंकित मूल्य समान रहा। मुद्रा के अवमूल्यन और परिणामी मुद्रा स्फीति के कारण, ताँबे की कीमतें औसतन $0.6662/पौंड से बढ़ीं। 1982 में $3.0597/lb. 2006 में एक पैसे की क्रय शक्ति में लगभग 80% की गिरावट आई।

जैसे ही लोगों ने पुराने पेनी से ताँबे की कटाई शुरू की, अमेरिका ने सिक्कों को पिघालने के लिए कठोर दण्ड लगाया और अपराध के दोषी पाये जाने पर कानून में 10,000 डॉलर का जुर्माना या पाँच साल तक की जेल हुई।

खण्ड-स विस्तृत उत्तरीय प्रश्न

प्र.1. मुद्रा के कार्यों का विस्तार से वर्णन कीजिए।
Describe the functions of Money in detail.

उत्तर

मुद्रा के कार्य
(Functions of Money)

मुद्रा की विभिन्न परिभाषाओं से आपको मुद्रा के कार्यों का अनुगमन अवश्य हो गया होगा परन्तु इन कार्यों के अतिरिक्त मुद्रा के बहुत से अन्य कार्य भी हैं। मुद्रा के कार्यों को निम्नलिखित तीन भागों में बाँटा जा सकता है—

1. **प्रमुख कार्य** (Primary Functions)—मुद्रा के दो प्रमुख कार्य हैं—
   (i) **विनिमय का माध्यम** (Medium of Exchange)—मुद्रा का विनिमय का माध्यम है। माध्यम शब्द का अर्थ है कि प्रत्येक वस्तु तथा सेवा का इसी के द्वारा क्रय-विक्रय होना। वस्तु परिवर्तन के युग में एक वस्तु का विनिमय दूसरी वस्तु से होता था। परन्तु मुद्रा के प्रयोग से प्रत्येक वस्तु या सेवा का द्रव्य द्वारा क्रय-विक्रय होता है। हम अपनी पुस्तक को बेचकर द्रव्य प्राप्त करते हैं और फिर उस द्रव्य को देकर दूसरों से आवश्यक वस्तु प्राप्त करते है। इस प्रकार द्रव्य विनिमय का एकमात्र माध्यम बन गया है। अब वस्तु परिवर्तन के लिए दोहरे संयोग की आवश्यकता नहीं रही। मुद्रा की सर्व स्वीकृति का गुण ही इसको इस कार्य में सफलता प्रदान करता है।
   (ii) **मूल्य का सामान्य मापदण्ड** (Measure of Value)—मुद्रा का दूसरा महत्त्वपूर्ण कार्य यह है कि यह सभी वस्तुओं और सेवाओं के मूल्यों को मापने का कार्य करती है। जिस प्रकार कपड़ा नापने के लिए मीटर, वजन तोलने के लिए क्विंटल व किलोग्राम और दूध नापने के लिए लीटर की आवश्यकता होती है, उसी प्रकार हम वस्तुओं और सेवाओं के मूल्यों को द्रव्य में नापते हैं। वस्तु परिवर्तन के युग में मूल्य का कोई सामान्य मापक नहीं

TOUCH 'n PASS

था, जिस कारण विनिमय के अनुपात को निश्चित करने में बहुत कठिनाई होती थी। आज प्रत्येक वस्तु या सेवा का मूल्य मुद्रा में व्यक्त किया जाता है, जिससे विनिमय के अनुपात को निश्चित करने में कोई कठिनाई नहीं होती है। प्रत्येक वस्तु का मूल्य आँकने के बाद मुद्रा विभिन्न वस्तुओं और सेवाओ के बीच का एक अनुपात निर्धारित करती है जिस पर उसका परस्पर विनिमय हो सकता है। मुद्रा की सहायता से हम सामान्य मूल्य स्तर को भी माप सकते हैं। विभिन्न देशों में भिन्न-भिन्न सामान्य मापदण्ड हैं; जैसे—भारत में रुपया, इंग्लैण्ड में पौंड और अमेरिका में डॉलर इत्यादि।

2. **गौण कार्य** (Secondary Functions)—द्रव्य के गौण कार्य तीन होते हैं—

(i) **भावी भुगतान का स्तर** (Standard of Deferred Payments)—आज का युग साख का युग है। इस युग में बिना उधार दिए-लिए काम नहीं चलता है। इस ऋण का भुगतान भविष्य में होता है। उधार देने वाला उसी समय उधार देगा जब उसे इस बात का पूरा-पूरा विश्वास हो कि जितना धन वह आज उधार दे रहा है उतना ही धन उसे ब्याज सहित वापस मिल जाएगा। यह तभी सम्भव है जब ऋण ऐसी वस्तु के रूप में लिया जाए जिसके मूल्य में परिवर्तन न हो। वस्तु का मूल्य घटता-बढ़ता रहता है। द्रव्य का मूल्य स्थिर रहता है। वह अन्य वस्तुओं की अपेक्षा टिकाऊ भी होता है और उसमें सर्वग्राह्यता का गुण भी होता है। द्रव्य के इन गुणों के कारण यह भावी भुगतान का आधार बन गया है।

(ii) **मूल्य का भण्डार** (Store of Value)—मनुष्य की यह स्वाभाविक प्रवृत्ति होती है कि वह भविष्य के लिए कुछ-न-कुछ बचाकर रखता है। मनुष्य के इस स्वभाव के कारण मूल्य संग्रह अथवा विनिमय शक्ति का संचय होता है। वस्तु विनिमय के युग में संचय वस्तुओं के रूप में हुआ करता था, परन्तु उसमें सबसे बड़ी कठिनाई यह थी कि ये सब पदार्थ कुछ समय बाद नष्ट हो जाते थे। द्रव्य के चलन से यह कठिनाई दूर हो गई। आज की मुद्रा एक टिकाऊ वस्तु है और किसी भी समय उसी मूल्य पर बेची जा सकती है। द्रव्य के इसी गुण के कारण मूल्य संग्रह सम्भव हुआ तथा व्यापार एवं उद्योग-धन्धों का विकास हुआ।

(iii) **मूल्य का हस्तान्तरण** (Transfer of Value)—मुद्रा तरल सम्पत्ति है। इसे एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति को तथा एक स्थान से दूसरे स्थान को सरलता से कम व्यय पर हस्तान्तरित किया जा सकता है। अब यदि कोई व्यक्ति एक स्थान छोड़कर दूसरे स्थान को जाता है तो वह अपनी सम्पत्ति; जैसे—मकान, दुकान खेत आदि को बेचकर अपने साथ मुद्रा ले जाता है और नए स्थान पर जाकर नई सम्पत्ति क्रय, कर लेता है। द्रव्य के इस गुण के कारण मनुष्य के पास पड़ी हुई अतिरिक्त क्रय शक्ति का उत्पादन कार्यों में उपयोग सम्भव हो सका है।

निम्न पंक्तियाँ द्रव्य के उपर्युक्त सभी कार्यों की ओर संकेत करती हैं। अत: विद्यार्थीगण इन्हें कण्ठस्थ कर लें—

द्रव्य के हैं कार्य चार
माध्यम, मापक, स्तर, भण्डार
यदि इनसे काम न सरे,
तो हस्तान्तरण को आगे धरें।

3. **आकस्मिक कार्य** (Contingent Functions)—**किनले** (Kinley) नामक अर्थशास्त्री ने मुद्रा के आकस्मिक कार्यों का वर्णन किया है। ये कार्य निम्नलिखित हैं—

(i) **सामाजिक आय के वितरण का आधार** (Basis of Distribution of Social Income)—वर्तमान युग में उत्पादन का कार्य सामूहिक रूप से किया जाता है। उत्पादन विभिन्न साधनों के सहयोग से किया जाता है। अत: भूमि, श्रम, पूँजी, प्रबन्ध व साहस द्वारा जिन सेवाओं व वस्तुओं का उत्पादन किया जाता है, उसे **राष्ट्रीय लाभांश** कहते हैं। इस राष्ट्रीय लाभांश का उत्पादन के साधनों में वितरण किया जाता है। मुद्रा के द्वारा सभी साधनों के उचित मूल्य को आँका जाता है और फिर मुद्रा के रूप में संयुक्त उत्पत्ति को विभिन्न साधनों में सरलता से वितरित कर दिया जाता है। इस प्रकार मुद्रा सामाजिक आय के वितरण का आधार होती है।

TOUCH 'n' PASS

(ii) **अधिकतम सन्तुष्टि व उत्पादन का आधार** (Basis of Maximum Satisfaction and Maximum Output)—सम-सीमान्त तुष्टिगुण नियम का प्रतिपादन द्रव्य के द्वारा ही सम्भव हुआ है। उपभोक्ता द्रव्य को अनेक वस्तुओं पर इस प्रकार व्यय करता है कि प्रत्येक वस्तु पर व्यय की गई द्रव्य की अन्तिम इकाई की उपयोगिता समान हो। इस प्रकार द्रव्य की सहायता से उपभोक्ता अपनी आय से अधिकतम सन्तुष्टि प्राप्त कर लेता है। इस प्रकार उत्पादन के क्षेत्र में मुद्रा के प्रयोग से सभी साधनों की सीमान्त उत्पादकता बराबर करके अधिकतम उत्पादन प्राप्त किया जा सकता है।

(iii) **साख का आधार** (Basis of Credit)—मुद्रा साख-पत्रों तथा बैंक मुद्रा का आधार है। चेक, हुण्डी तथा विनिमय-पत्र आदि साख-पत्र कहलाते हैं। बैंक से रुपया निकालने का साधन चेक है। चेक का भुगतान करने के लिए बैंक को कुछ मुद्रा नकद कोष में रखनी पड़ती है। यदि बैंक चेक का भुगतान करने में असमर्थ रहता है तो बैंक की साख को बहुत धक्का लगता है। अत: बैंक साख का आधार मुद्रा ही है। बैंक द्वारा **साख का निर्माण** भी नकद कोष की मात्रा के आधार पर ही किया जाता है। **दूसरे,** केन्द्रीय बैंक जब नोटों का प्रचलन करता है तो उसे सुरक्षित कोष में नकद रूप में धन अपने पास रखना पड़ता है ताकि माँग होने पर नोटों के बदले मुद्रा दे सके।

(iv) **पूँजी की उत्पादकता बढ़ाना** (Increasing Productivity of Capital)—पूँजी कई प्रकार की होती है, परन्तु मुद्रा पूँजी का तरलतम रूप है। मुद्रा के रूप में पूँजी को कम लाभपूर्ण कार्यों से हटाकर लाभपूर्ण उपयोगों में लगाया जा सकता है। इस प्रकार मुद्रा द्वारा पूँजी की उत्पादकता में वृद्धि की जा सकती है।

(v) **पूँजी को सामान्य रूप प्रदान करना** (Giving a General Form to Capital)—मुद्रा पूँजी को अत्यधिक तरल रूप में रखने योग्य बना देती है और सब प्रकार की सम्पत्ति तथा पूँजी को साधारण मूल्य के रूप में बदल देती है। **कीन्स** के अनुसार, पूँजी को कई उद्देश्यों (जैसे—आय का उद्देश्य, सट्टे का उद्देश्य तथा आकस्मिक उद्देश्य) से तरल रूप में रखना आवश्यक होता है। यह कार्य मुद्रा द्वारा सरलता से सम्पन्न हो जाता है। द्रव्य की इसी विशेषता पर कीन्स का **'ब्याज का तरलता पसन्दगी सिद्धान्त'** आधारित है।

4. **अन्य कार्य** (Other Functions)—कुछ लेखकों ने द्रव्य के निम्नलिखित अतिरिक्त कार्य भी बताए हैं—

(i) **शोधन क्षमता बनाए रखना** (Gaurantor of Solvency)—**कैन्ट** के अनुसार, मुद्रा ऋण चुकाने की क्षमता प्रदान करती है। किसी भी व्यक्ति, बैंक सरकार तथा कम्पनी में अपने ऋण चुकाने की क्षमता उसी समय तक रहती है जब तक उसके पास मुद्रा है। ऋणदाता अपना भुगतान मुद्रा में लेना चाहते हैं। अत: प्रत्येक व्यक्ति अथवा संस्था को अपनी शोधन क्षमता को बनाए रखने के लिए अपने पास तरल रूप में कुछ मुद्रा अवश्य रखनी पड़ती है। मुद्रा के अभाव में दिवालिया घोषित होने की सम्भावना होती है।

(ii) **निर्णय का वाहक** (Bearer of Option)—**प्रो० ग्राह्य** के अनुसार, "मनुष्य जिस समय धन संचय करता है उस समय पर इस धन संचय का उद्देश्य निर्धारित करना कठिन होता है। परन्तु संचय मुद्रा के रूप में होने से इस संचित मुद्रा के व्यय के सम्बन्ध में कोई कठिनाई नहीं होती, क्योंकि मुद्रा निर्णय का वाहक है। मनुष्य अपनी संचित मुद्रा को मनचाहे ढंग से सदैव व्यय कर सकता है।

(iii) **पूँजी को तरलता प्रदान करना—प्रो० कीन्स** के अनुसार, "मुद्रा पूँजी को तरलता प्रदान करती है। आज मुद्रा के रूप में उपलब्ध पूँजी को किसी भी रूप में प्रयुक्त किया जा सकता है।"

प्र.2. मुद्रा का विभिन्न आधार पर वर्गीकरण कीजिए।

Describe the classification of money on different bases.

उत्तर "जो मुद्रा विनिमय के माध्यम का कार्य करती है वह चलन की इकाई (वास्तविक मुद्रा) कहलाती है और जो मुद्रा हिसाब के काम आती है वह लेखे की इकाई (हिसाब की मुद्रा) कहलाती है।"

मुद्रा का वर्गीकरण
(Classification of Money)

मुद्रा के विभिन्न रूपों एवं कार्यों को ध्यान में रखते हुए विभिन्न अर्थशास्त्रियों ने मुद्रा का वर्गीकरण विभिन्न आधारों पर किया है, उनमें से अग्रलिखित आधार प्रमुख हैं—

TOUCH 'n' PASS

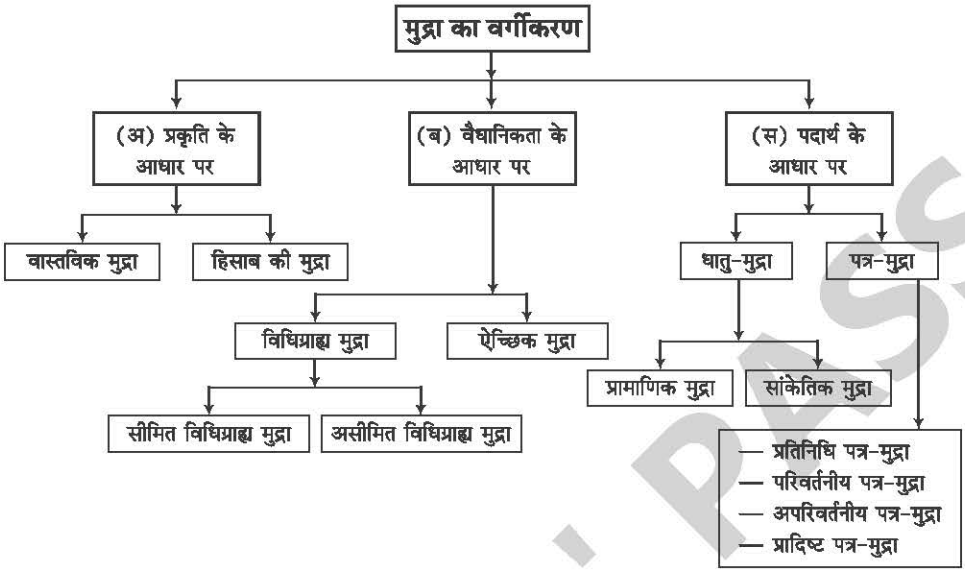

(अ) प्रकृति के आधार पर मुद्रा का वर्गीकरण
(Classification of Money on the Basis of Nature)

प्रो० कीन्स ने प्रकृति के आधार पर मुद्रा को निम्नलिखित दो भागों में बाँटा है—

1. **वास्तविक मुद्रा**—वास्तविक मुद्रा से आशय उस मुद्रा से है जो किसी देश में वास्तव चलन में होती है, जो विनिमय के माध्यम के रूप में कार्य करती है, वस्तुओं तथा सेवाओं के मूल्य जिसमें आँके जाते हैं, ऋणों का भुगतान उसी में होता है तथा मूल्य-संचय भी इसी रूप में किया जाता है। भारत में सभी प्रकार के सिक्के तथा कागजी नोट वास्तविक मुद्रा हैं।
2. **हिसाब की मुद्रा**—हिसाब या लेखे की मुद्रा से तात्पर्य उस मुद्रा से होता है जिसमें वस्तुओं तथा सेवाओं के क्रय-विक्रय के सौदे किए जाते हैं तथा हिसाब-किताब रखा जाता है। साधारणत: वास्तविक मुद्रा ही हिसाब की मुद्रा होती है, किन्तु मुद्रा के इतिहास में ऐसे भी उदाहरण मिलते हैं जब किसी देश की हिसाब की मुद्रा वास्तविक मुद्रा से भिन्न रही है। प्रथम महायुद्ध के बाद 1923 ई० में जर्मनी में विनिमय के माध्यम के रूप में **मार्क** चलते थे, किन्तु हिसाब-किताब करने के लिए तथा मूल्य-मापक के रूप में **फ्रेंक** तथा **स्विस डॉलर** का प्रयोग होता था।

बेन्हम ने वास्तविक मुद्रा को **चलन की इकाई** तथा हिसाब की मुद्रा को **लेखे की इकाई** कहा है।

(ब) वैधानिकता के आधार पर मुद्रा का वर्गीकरण
(Classification of Money on the Basis of Legal Recognition)

वैधानिकता के आधार पर मुद्रा के दो भेद किए जा सकते हैं—

1. **विधिग्राह्य मुद्रा**—यह वह मुद्रा है जो एक देश की राजनीतिक सीमाओं के भीतर सबके द्वारा स्वीकार की जाती है। प्रत्येक नागरिक इसे स्वीकार करने के लिए कानून द्वारा बाध्य होता है। यदि कोई व्यक्ति इसे लेने से इन्कार करता है तो वह दण्ड का भागी हो सकता है। भारत में रुपया तथा पैसा विधिग्राह्य द्वारा है। विधिग्राह्य मुद्रा भी दो प्रकार की होती है—
   (i) **सीमित विधिग्राह्य मुद्रा**—यह वह मुद्रा है जो छोटे-छोटे भुगतान के लिए चलायी जाती है। इस मुद्रा को निश्चित सीमा तक स्वीकार करना अनिवार्य होता है। निश्चित सीमा के ऊपर स्वीकार करना या न करना, पाने वाले की इच्छा पर निर्भर करता है। भारत में ₹ 1 तक के भुगतान के लिए व ₹ 10 तक के भुगतान के लिए सीमित विधिग्राह्य मुद्रा है।
   (ii) **असीमित विधिग्राह्य मुद्रा**—यह वह मुद्रा होती है जिसे किसी भी सीमा तक भुगतान के रूप में स्वीकार करना कानूनन अनिवार्य होता है। इसको अस्वीकार करने वाला व्यक्ति दण्ड का भागी होता है। भारत में ₹ 1 से लेकर ₹ 2,000 तक के सभी कागजी नोट और सिक्के असीमित विधिग्राह्य मुद्रा हैं।

TOUCH 'n' PASS

2. **ऐच्छिक मुद्रा**—यह वह मुद्रा है जिसे स्वीकार करना कानूनन अनिवार्य नहीं होता है। इसे स्वीकार करना या न करना पाने वाले की इच्छा पर निर्भर करता है। यह मुद्रा विश्वास के आधार पर चलती है। इसे **बैंक-मुद्रा** या **साख-मुद्रा** या **वैकल्पिक मुद्रा** भी कहा जाता है। चेक, विनिमय विपत्र, बैंक ड्राफ्ट इत्यादि एच्छिक मुद्राएँ हैं।

(स) पदार्थ के आधार पर मुद्रा का वर्गीकरण
(Classification of Money on the Basis of Material)

यह वर्गीकरण इस आधार पर किया जाता है कि मुद्रा किस पदार्थ से बनी है। आधुनिक युग में मुद्रा केवल दो पदार्थों की ही बनी होती हैं—धातु की या कागज की। अत: इस वर्गीकरण के अनुसार मुद्रा के दो भेद किए जाते हैं—

1. **धातु-मुद्रा**—जब मुद्रा किसी धातु की बनी होती है तो उसे '**धातु मुद्रा**' कहते हैं। प्राचीन काल में सोने तथा चाँदी के सिक्कों का प्रचलन था, परन्तु वर्तमान में इनका स्थान ताँबा, गिलट व निकिल जैसी हल्की व कम मूल्य वाली धातुओं ने ले लिया है। यह मुद्रा भी दो प्रकार की होती है—
   (i) **प्रामाणिक मुद्रा**—यह देश की प्रधान मुद्रा होती है जो देश में विनिमय का माध्यम तथा मूल्य के मापन का कार्य करती है। इस पर अंकित मूल्य इसके वास्तविक मूल्य के बराबर होता है। इसकी ढलाई स्वतन्त्र होती है तथा यह असीमित विधिग्राह्य मुद्रा होती है। यह शुद्ध धातु की बनी होती है।
   (ii) **सांकेतिक मुद्रा**—इस मुद्रा का प्रयोग सहायक मुद्रा के रूप में किया जाता है। इसमें जनता को अपनी धातु देकर सिक्के ढलवाने का अधिकार नहीं होता है। यह सीमित विधिग्राह्य मुद्रा होती है तथा निकृष्ट धातु की बनी होती है। इस पर अंकित मूल्य इसके वास्तविक मूल्य से अधिक होता है।
2. **पत्र-मुद्रा**—कागज पर छपे नोट कागजी मुद्रा या पत्र-मुद्रा कहलाते हैं। पत्र-मुद्रा सरकार द्वारा या सरकार के आदेशानुसार केन्द्रीय बैंक के द्वारा छापी जाती है। ऐसी मुद्रा सरकार की साख के आधार पर चलती है तथा असीमित विधिग्राह्य मुद्रा होती है। भारत में 1806 ई० में बैंक ऑफ बंगाल द्वारा सर्वप्रथम पत्र-मुद्रा जारी की गई थी। विश्व के सभी देशों में पत्र-मुद्रा का प्रचलन है। पत्र-मुद्रा चार प्रकार की होती है—
   (i) प्रतिनिधि पत्र-मुद्रा, (ii) परिवर्तनीय पत्र-मुद्रा, (iii) अपिरवर्तनीय पत्र-मुद्रा तथा (iv) प्रादिष्ट पत्र-मुद्रा।

प्र.3. मौद्रिक नीति से आप क्या समझते हैं? मौद्रिक नीति के मुख्य उद्देश्यों की विवेचना कीजिए।
What do you understand by Monetary Policy? Discuss the major objectives of Monetary Policy.

उत्तर

मौद्रिक नीति
(Monetory Policy)

सीधे और सरल शब्दों में किसी देश के केन्द्रीय बैंक (वह बैंक जो सम्पूर्ण बैंकिंग व्यवस्था का नियमन करता है अर्थात् जो बैंकों का बैंक होता है) द्वारा अर्थव्यवस्था पर वांछित प्रभाव डालने (पूर्ण रोजगार के लक्ष्य को प्राप्त करने, मूल्य स्थिरता को बनाए रखने, आर्थिक विकास को सुनिश्चित करने तथा जन सामान्य को सम्मानजनक जीवन स्तर प्रदान करने) तथा अवांछनीय प्रभाव (बेरोजगारी को कम करना, स्फीति तथा अवस्फीति को दूर करना तथा भुगतान सन्तुलन के असाम्य को ठीक करना) को कम करने के लिए अपनायी जाने वाली नीति मौद्रिक नीति कहलाती है।

संकीर्ण अर्थों में मौद्रिक नीति से आशय केन्द्रीय बैंक तथा सरकार द्वारा अपनायी जाने वाली उस नीति से है, जिसके द्वारा मुद्रा तथा साख की मात्रा का नियमन किया जाता है ताकि ब्याज दर को प्रभावित करके बाजार में कुल माँग और कुल पूर्ति को संयमित किया जा सके। परन्तु व्यापक अर्थ में गैर मौद्रिक उपायों; जैसे—मजदूरी तथा कीमतों पर नियन्त्रण एवं बजटीय क्रियाओं को भी मौद्रिक नीति में शामिल किया जाता है।

आर०पी० केन्ट के अनुसार—मौद्रिक नीति, स्पष्ट रूप से निर्धारित पूर्ण रोजगार के उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए प्रचलन में मुद्रा की यात्रा का विस्तार एवं संकुचन करने के प्रबन्ध का नाम है।

एच०जी० जॉनसन के अनुसार—मौद्रिक नीति के अन्तर्गत वे सभी मौद्रिक निर्णय एवं उपाय सम्मिलित हैं, जिनके उद्देश्य चाहे मौद्रिक हो या अमौद्रिक तथा वे सभी अमौद्रिक निर्णय एवं उपाय सम्मिलित हैं, जिनके उद्देश्य मौद्रिक हैं। निश्चित रूप से यह परिभाषा बहुत व्यापक है परन्तु मौद्रिक नीति के विशिष्ट उद्देश्यों को प्राप्त करने में बहुत सहायक नहीं है।

TOUCH 'n' PASS

मौद्रिक नीति का उद्देश्य (Objectives of Monetary Policy)

आप जान गए हैं कि मौद्रिक नीति आर्थिक नीति का एक अंग है। इसका अभिप्राय यह है कि मौद्रिक नीति के उद्देश्यों को समग्र आर्थिक उद्देश्य का ही एक भाग माना जाना चाहिए। द्वितीय विश्वयुद्ध के पहले तक परम्परागत मौद्रिक नीति का मुख्य उद्देश्य विनिमय दर तथा मूल्य स्तर को स्थिरता प्रदान करना था।

रेडक्लिफ समिति ने खासकर विकसित देशों के लिए मौद्रिक नीति के निम्नलिखित उद्देश्य बताए—

1. उच्चतम एवं स्थिर रोजगार का स्तर।
2. उचित मूल्य स्थिरता ताकि मुद्रा का आन्तरिक मूल्य सम्मानजनक स्तर पर बना रहे।
3. सतत् आर्थिक विकास ताकि आय के स्तर में वृद्धि हो सके और राष्ट्र के जीवन स्तर में सुधार हो सके।
4. अर्थव्यवस्था के बहिर्मुखी विकास हेतु भुगतान सन्तुलन को नियमित करना।
5. विनिमय दर को स्थिरता प्रदान करना तथा विदेशी विनिमय कोष को मजबूत करना।

यद्यपि कि मौद्रिक नीति के उपर्युक्त उद्देश्य बताए गए। परन्तु समय-समय पर बदलते सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक तथा अन्तर्राष्ट्रीय परिदृश्य के कारण मौद्रिक नीति के निम्नलिखित उद्देश्य स्वीकार किए गए हैं—

1. मुद्रा की उदासीनता (Neutrality of Money)
2. विनिमय दर स्थिरता (Exchange Rate Stability)
3. कीमत स्थिरता (Price Stability)
4. पूर्ण रोजगार और (Full Employment)
5. आर्थिक वृद्धि (Economic Growth)

1. **मुद्रा की उदासीनता** (Neutrality of Money)—वीकस्टीड, हायक तथा राबर्टसन का मानना है कि सर्वश्रेष्ठ मौद्रिक नीति वह है जो मुद्रा को पूर्णतया उदासीन बनाए रखे। अर्थात् मुद्रा की भूमिका अर्थव्यवस्था के संचालन में मात्र एक निष्क्रिय साधन ही रहे। मुद्रा को अर्थव्यवस्था के संचालन में बिना कोई अव्यवस्था उत्पन्न किए, केवल विनिमय के माध्यम के रूप में कार्य करना चाहिए। मुद्रा की उदासीनता के उद्देश्य को सुनिश्चित करने के लिए यह आवश्यक है कि मुद्रा की मात्रा प्रत्येक परिस्थिति में स्थिर रखी जाए। इन अर्थशास्त्रियों के अनुसार, मुद्रा एक तकनीकी यन्त्र है जो अर्थव्यवस्था के संचालन में निष्क्रिय भूमिका अदा करती है। इसका मुख्य उद्देश्य केवल राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था के सुचारु रूपेण संचालन में सहयोग प्रदान करना है। संचय की प्रवृत्ति तथा संचलन वेग के मद्देनजर मुद्रा की मात्रा को स्थिर बनाए रखने के लिए मुद्रा की पूर्ति में परिवर्तन करना पड़ता है। अर्थव्यवस्था में होने वाले आधारभूत परिवर्तनों जैसे—जनसंख्या में परिवर्तन, उत्पादन तकनीक में परिवर्तन तथा नवप्रवर्तन आदि को अप्रभावी करने के लिए मुद्रा की पूर्ति में परिवर्तन में आवश्यक होता है। अत: यदि मुद्रा की मात्रा में समय-समय पर परिवर्तन नहीं किया गया तो यह अपने मुख्य गुण उदासीनता का पालन करने में असमर्थ रहेगी।

   आलोचना—अर्थशास्त्रियों ने मुद्रा की उदासीनता की निम्नलिखित आधारों पर आलोचना की है।

   मुद्रा की उदासीनता की अवधारणा समय के साथ अपना महत्त्व खो चुके मुद्रा के परिमाण सिद्धान्त पर आधारित है, इसलिए यह भी महत्त्वहीन है।

   (i) उदासीनता कीमत स्थिरता के उद्देश्य को प्राप्त करने में असमर्थ है। आधुनिक अर्थव्यवस्था में तकनीकी एवं वैज्ञानिक प्रगति उत्पादन वृद्धि में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। ऐसी स्थिति में यदि मुद्रा की मात्रा स्थिर रखी जाए तो यह केवल अवस्फीतिक दशाएँ उत्पन्न करेगी, जिससे कीमतों में गिरावट आएगी।

   (ii) मन्दी के दौरान उदासीन मुद्रा नीति अप्रभावी रहती है। अत: इस अवधि में इसका अनुपालन नहीं किया जा सकता है।

   (iii) मुद्रा की उदासीनता की अवधारणा स्वयं में विरोधाभासी है। एक तरफ यह मुद्रा के निष्क्रिय स्वरूप को स्वीकार करके अहस्तक्षेप की नीति का समर्थन करता है दूसरी तरफ आधारभूत परिवर्तनों के अनुरूप मुद्रा की पूर्ति में परिवर्तन की वकालत भी करता है। दोनों एक साथ कैसे सम्भव हैं?

   निष्कर्ष स्वरूप यह कहा जा सकता है कि आधुनिक अर्थव्यवस्था में मुद्रा की भूमिका एक सक्रिय यन्त्र की है। मुद्रा की उदासीनता व्यावसायिक उच्चावचनों को नियन्त्रित करने में असफल है।

TOUCH 'n' PASS

2. **विनिमय दर स्थिरता** (Exchange Rate Stability)—विनिमय दर की स्थिरता तथा स्वर्णमाल युग को यदि एक-दूसरे का पर्याय कहा जाए तो शायद अतिशयोक्ति नहीं होगी। भुगतान सन्तुलन के अनुकूल होने पर बाहर से स्वर्ण देश में आने लगता है। ऐसे में मौद्रिक सत्ता करेंसी तथा साख में विस्तार करके आन्तरिक मूल्यों में वृद्धि कर देती है, परिणामस्वरूप देश के भीतर वेदना लाभप्रद हो जाता है। इस प्रकार स्वर्ण के आगमन को प्रतिबन्धित करके विनिमय दर की स्थिरता को बनाए रखा जाता है। इसी प्रकार भुगतान सन्तुलन के प्रतिकूल होने पर जब स्वर्ण का निर्यात प्रारम्भ हो जाता है तब करेंसी तथा साख की मात्रा में संकुचन करके आन्तरिक मूल्य को कम कर दिया जाता है जिससे वस्तुओं का बाहरी बाजार में बेचना लाभप्रद हो जाता है। इस प्रकार स्वर्ण के निर्यात को नियन्त्रित करके विनिमय दर को स्थिर बनाए रखा जाता है।

तीस के दशक में यूरोपीय देशों से स्वर्णमान लगभग उन्मूलन हो गया, साथ ही स्थायी विनिमय दर भी बीते दिनों की बात हो गई। पत्र मुद्रा के वर्तमान युग में विनिमय दर की स्थिरता विश्व की सभी अर्थव्यवस्थाओं के सामने एक मुख्य चुनौती है। अब तो यहाँ तक कहा जाने लगा है कि मौद्रिक नीति का मुख्य उद्देश्य विनिमय दर को स्थिर बनाए रखना है। आप जानते हैं कि विनिमय दर वह दर है जिस पर दो देशों की मुद्राओं का आपस में लेन-देन होता है। विनिमय दर की अस्थिरता मुख्य रूप से निम्न समस्याएँ उत्पन्न करती हैं—

(i) विनिमय दर में बड़े पेमाने पर पायी जाने वाली अस्थिरता मुद्रा बाजार में सट्टा कार्य को बढ़ावा देती है।

(ii) यह विदेशी निवेशकों के मन में डर एवं अविश्वास उत्पन्न कर देता है, जिससे देश में विदेशी विनियोग तथा पूँजी निर्माण की दर बुरी तरह प्रभावित हो सकती है तथा विदेश अपनी पूँजी अपने देश वापस ले जा सकते हैं।

यह सम्बन्धित देश में बड़े पैमाने पर आन्तरिक कीमत स्थिरता को नुकसान पहुँचा सकती है।

आलोचना—विनिमय दर की स्थिरता की निम्नलिखित आधारों पर आलोचना की जाती है—

(i) स्वर्णमान में विनिमय दर की स्थिरता आन्तरिक मूल्यों के उतार-चढ़ाव की लागत पर प्राप्त की जाती है। आन्तरिक मूल्यों में हिंसक अस्थिरता आर्थिक प्रगति को बुरी तरह प्रभावित कर सकती है।

(ii) विनिमय दर की स्थिरता का एक दुष्परिणाम यह है कि विदेश में होने वाली कोई भी आर्थिक हलचल सरलतापूर्वक सम्बन्धित देश में हस्तान्तरित हो जाती है।

द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष की स्थापना की गई, जिसका मुख्य उद्देश्य सदस्यों के बीच विनिमय दर की स्थिरता को बनाए रखना है। परिणामस्वरूप सदस्य देशों के लिए मौद्रिक नीति का मुख्य उद्देश्य विनिमय दर की स्थिरता न होकर पूर्ण रोजगार एवं आर्थिक विकास है। 1973 में डॉलर के अवमूल्यन के बाद अन्तर्राष्ट्रीय मौद्रिक व्यवस्था समाप्त हो गई और विश्व अर्थव्यवस्था एक बार पुनः परिवर्तनशील विनिमय दर के हवाले हो गई। इसका अभिप्राय यह है कि विनिमय दर की स्थिरता अभी भी मौद्रिक नीति की अनिवार्य अतिरिक्त जिम्मेदारी है। मुद्रा कोष द्वारा स्थापित बहुपक्षीय व्यापार प्रणाली के अन्तर्गत प्रतिकूल भुगतान सन्तुलन होने पर भी सदस्य देश व्यापारिक कार्य जारी रख सकते हैं।

3. **पूर्ण रोजगार** (Full Employment)—विभिन्न कारणों से मुद्रा की उदासीनता तथा विनिमय दर की स्थिरता मौद्रिक नीति के बहुत महत्त्वपूर्ण उद्देश्य नहीं रहे। कींस ने 1936 में प्रकाशित अपनी पुस्तक 'जनरल थ्योरी ऑफ इम्प्लायमेण्ट, इन्टरेस्ट एण्ड मनी (*The General Theory of Employment, Interest and Money*)' में स्पष्ट किया कि मौद्रिक नीति का मुख्य उद्देश्य पूर्ण रोजगार के लक्ष्य को प्राप्त करना होना चाहिए। पूर्ण रोजगार की दशा में ही संसाधनों का अधिकतम एवं उत्पादक प्रयोग किया जा सकता है जो अधिकतम सामाजिक कल्याण के उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए अनिवार्य है। प्रो० जी०एन० हॉम ने भी कींस की इस विचारधारा का समर्थन किया। यद्यपि पूर्ण रोजगार की अवधारणा अपने आप में विवाद का विषय है। डब्ल्यू०डब्ल्यू० हार्ट के अनुसार पूर्ण रोजगार को परिभाषित करने का प्रयास करना बहुत लोगों का रक्तचाप बढ़ाने जैसा है। पूर्ण रोजगार का मतलब यह कतई नहीं है कि प्रत्येक व्यक्ति जो स्वस्थ और कार्य करने के लिए स्वतन्त्र है उसे वर्तमान मजदूरी की दर तक उत्पादक कार्य करने का अवसर उपलब्ध है। वास्तव में पूर्ण रोजगार के साथ मौसमी तथा घर्षणात्मक बेरोजगारी पायी जा सकती है।

TOUCH 'n' PASS

मौद्रिक नीति द्वारा कैसे पूर्ण रोजगार के लक्ष्य को सुनिश्चित किया जा सकता है—
आप जानते हैं कि कींस के अर्थशास्त्र में आय का समीकरण $Y = C + I$ है। आय बढ़ने के लिए (आपको पता है कि कींस के अर्थशास्त्र में—राष्ट्रीय आय, उत्पादन, रोजगार तथा प्रभावपूर्ण माँग सब एक ही हैं) कुल व्यय (उपभोग व्यय तथा विनिमय व्यय) का बढ़ना आवश्यक है। यह तो सामान्य ज्ञान की बात है कि अल्पकाल में उपभोग प्रवृत्ति लगभग स्थिर रहती है इसलिए मौद्रिक नीति को पूर्ण रोजगार के लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए विनिमय पर केन्द्रित होना चाहिए। सरकार मन्दी के दौरान निजी निवेशकों को प्रोत्साहित करने के लिए सस्ती मुद्रा नीति लागू करनी चाहिए ताकि निम्न ब्याज दर से आकर्षित होकर निवेशक विनियोग के प्रति व्याप्त निराशा से बाहर आ सके। परन्तु सस्ती मुद्रा नीति को पूर्ण रोजगार बिन्दु के बाद महँगी मुद्रा नीति से विस्थापित नहीं किया जाना चाहिए, क्योंकि यह अतिस्फीति को जन्म देगी। ऐसी दशा में स्थिर कीमत स्तर नीति को अपनाया जाना चाहिए। पूर्ण रोजगार का उद्देश्य इसलिए सर्वोत्तम है, क्योंकि मौद्रिक नीति के अन्य उद्देश्य विनिमय दर की स्थिरता तथा कीमत स्थिरता अपने आप ही इसमें शामिल हो जाते हैं। मौद्रिक सत्ता को चाहिए कि वह प्रत्येक दशा में पूर्ण रोजगार के स्तर पर बचत तथा विनियोग में समानता कायम रखे।

4. **आर्थिक संवृद्धि** (Economic Growth)—हाल के वर्षों तक पूर्ण रोजगार को मौद्रिक नीति का आदर्श उद्देश्य माना जाता रहा है। परन्तु अब इसका स्थान आर्थिक संवृद्धि ने ले लिया है। विकसित तथा विकासशील देशों में मौद्रिक नीति की प्राथमिकता आर्थिक संवृद्धि को सुनिश्चित करना हो गया है, क्योंकि—
   (i) किसी भी अर्थव्यवस्था में पूर्ण रोजगार के लक्ष्य को तीव्र आर्थिक विकास की दर के बगैर प्राप्त करना सम्भव नहीं है।
   (ii) तेजी से बढ़ती जनसंख्या की आवश्यकताएँ तथा उनकी विविध रुचियों को बिना तीव्र आर्थिक संवृद्धि के पूरा करना सम्भव नहीं है तथा
   (iii) आज के इस अन्तर्राष्ट्रीय गला घोंट प्रतिस्पर्धा के दौर में अपने अस्तित्व को बचाए रखने के लिए सतत् एवं तीव्र वृद्धि विकासशील देशों के लिए जीने मरने का प्रश्न है।

   यू०एस०ए० ने रोजगार अधिनियम, 1946 में यह घोषणा की कि न केवल अधिकतम रोजगार बल्कि अधिकतम उत्पादन को भी सुनिश्चित करने के लिए सभी आवश्यक कदम उठाए जाएँ। उपर्युक्त कारणों से आर्थिक संवृद्धि हाल के वर्षों में मौद्रिक नीति का महत्त्वपूर्ण उद्देश्य बन गया।
   यद्यपि कि प्रो० एलिस के अनुसार विकासशील देशों द्वारा आर्थिक संवृद्धि के लिए मौद्रिक नीति के द्वारा किया जाने वाला कोई भी प्रयास स्फीतिक दशाओं के कारण असफलता ही प्रदान करेगा। परन्तु प्रो० एलिस का यह तर्क बहुत स्वीकार्य नहीं है, क्योंकि विकासशील देश उपयुक्त नियामक नीति का प्रयोग करके स्फीतिक दशाओं को नियन्त्रित कर सकता है।
   अब प्रश्न उठता है कि आर्थिक संवृद्धि क्या है? और तीव्र आर्थिक वृद्धि के लक्ष्य को प्राप्त करने में मौद्रिक नीति की क्या भूमिका हो सकती है? सीधे और सरल शब्दों में वास्तविक राष्ट्रीय आय में सतत् वृद्धि को आर्थिक वृद्धि कहते हैं। इसके लिए यह आवश्यक है कि अर्थव्यवस्था में विद्यमान समस्त संसाधनों, भौतिक एवं मानवीय का पूर्ण एवं उत्पादक प्रयोग हो। यही विकासशील देशों की मुख्य समस्या है, क्योंकि एक बड़ा क्षेत्र अमौद्रिक होने के कारण बड़े पैमाने पर संसाधन अगतिशील बने रहते हैं। अत: कहा जा सकता है कि मुद्रा संसाधनों को गतिशीलता प्रदान करने वाला यन्त्र है। ऐसे में मुद्रा की मात्रा में वृद्धि करने से अप्रयुक्त संसाधनों का प्रयोग बढ़ता है जिससे वस्तुओं तथा सेवाओं का उत्पादन बढ़ता है जो आर्थिक संवृद्धि को गति प्रदान करता है। इस प्रकार मौद्रिक नीति आर्थिक संवृद्धि में सहायक है। परन्तु मौद्रिक नीति तब लाभकारी होगी जब उसमें निम्न विशेषताएँ हों—

मौद्रिक नीति लोचपूर्ण होनी चाहिए—मुद्रा की समग्र माँग तथा वस्तुओं की समग्र पूर्ति के बीच साम्य बनाए रखने के लिए, मौद्रिक नीति का लोचपूर्ण होना अनिवार्य है। यदि मुद्रा की समग्र माँग, वस्तुओं तथा सेवाओं की समग्र पूर्ति से अधिक है तब नियन्त्रित मौद्रिक नीति के द्वारा करेंसी तथा साख की मात्रा को कम करके स्फीतिक प्रभाव को रोका जा सकता है। इसके विपरीत स्थिति में करेंसी तथा साख की मात्रा बढ़ाकर अवस्फीति को नियन्त्रित किया जा सकता है। स्पष्ट है कि अर्थव्यवस्था में आन्तरिक साम्य स्थापित करने के लिए मौद्रिक नीति का लोचपूर्ण होना आवश्यक है।
मौद्रिक नीति में पूँजी निर्माण की क्षमता होनी चाहिए, पूँजी निर्माण आर्थिक वृद्धि की प्रमुख शर्त है। मौद्रिक नीति ऐसी होनी चाहिए जो न केवल घरेलू विनिमय बल्कि विदेशी विनियोग के लिए भी उपयुक्त वातावरण उत्पन्न करें। इसके लिए आवश्यक है कि आन्तरिक कीमत स्तर स्थिर रहे। क्योंकि इसमें अस्थिरता घरेलू तथा पूँजी निर्माण के लिए ठीक नहीं है।

TOUCH 'n PASS

आर्थिक वृद्धि मौद्रिक नीति का सर्वश्रेष्ठ उद्देश्य हो सकता है क्योंकि अन्य उद्देश्य; जैसे—पूर्ण रोजगार, विनिमय दर तथा मूल्य स्तर की स्थिरता आदि इसमें अपने आप सम्मिलित हो जाते हैं।

ऊपर आपने मौद्रिक नीति के विभिन्न उद्देश्यों का विस्तार से अध्ययन किया परन्तु कौन-सा उद्देश्य सर्वश्रेष्ठ है, यह विवाद का विषय बना हुआ है। अर्थशास्त्री काफी हद तक इस बात से सहमत हैं कि विकसित अर्थव्यवस्थाओं के लिए पूर्ण रोजगार एवं स्थिरता तथा विकासशील अर्थव्यवस्थाओं के लिए आर्थिक विकास मौद्रिक नीति का प्रमुख उद्देश्य होना चाहिए।

प्र.4. मौद्रिक नीति के यन्त्र के रूप में न्यूनतम रक्षित अनुपात तथा खुले बाजार की क्रियाओं में कौन बेहतर है? तर्क दीजिए।
Which among the Minimum Reserve Ratio and Open Market Operation is better as an instrument of Monetary Policy? Give arguments.

उत्तर

मौद्रिक नीति के मुख्य तन्त्र
(Main Instruments of Monetary Policy)

अब तक आप जान गए होंगे कि मौद्रिक नीती क्या है? तथा उसके उद्देश्य क्या हैं? अब हम यह जानने का प्रयास करेंगे कि वे कौन-से यन्त्र हैं, जिनका प्रयोग करके सरकार या केन्द्रीय बैंक अर्थव्यवस्था में मुद्रा तथा साख की मात्रा का नियमन करते हैं। हम अपनी सुविधा के लिए इन यन्त्रों को दो भागों में बाँट लेते हैं—

I. परिमाणात्मक यन्त्र (Quantitative Instruments)
II. गुणात्मक यन्त्र (Qualitative Instruments)

I. परिमाणात्मक यन्त्र (Quantitative Instruments)

वे यन्त्र जो सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था पर बिना किसी भेदभाव के प्रभाव डालते हैं, उन्हें परिमाणात्मक यन्त्र कहते हैं। ये निम्नलिखित हैं—

1. बैंक दर नीति (Bank Rate Policy)
2. खुले बाजार की क्रियाएँ (Open Market Operation)
3. नकद रक्षित अनुपात (Cash Reserve Ratio or CRR)
4. संवैधानिक तरलता अनुपात (Statutory Liquidity Ratio or SLR)

1. **बैंक दर नीति** (Bank Rate Policy)—बैंक दर वह दर है जिस पर व्यापारिक बैंक केन्द्रीय बैंक से उधार लेता है। दूसरे शब्दों में यह वह दर है जिस पर केन्द्रीय बैंक व्यापारिक बैंकों के प्रथम कोटि के व्यापारिक बिलाकें की पुनर्कटौती करता है।

आर०ए० यंग के अनुसार, "बैंक दर वह दर है जिस पर केन्द्रीय बैंक सदस्य बैंकों की प्रतिभूतियों की कटौती करता है या उन्हें उधार देता है।"

यहाँ आप यह समझ लिखिए कि बैंक दर तथा बाजार दर में भिन्नता है। बैंक दर, केन्द्रीय बैंक द्वारा व्यापारिक बैंकों से लिया जाने वाला ब्याज दर है जबकि ब्याज दर वह दर है जो व्यापारिक बैंक जनता से वसूल करती है।

बैंक दर नीति की क्रियाशीलता—केन्द्रीय बैंक साख के विस्तार अथवा संकुचन के लिए बैंक दर को एक यन्त्र के रूप में प्रयोग करता है।

साख का विस्तार—बाजार तथा व्यापारिक क्रियाकलापों को गति प्रदान करने के लिए केन्द्रीय बैंक साख का विस्तार करता है। इस उद्देश्य से वह बैंक दर को कम कर देता है, जिसके प्रभाव को इस प्रकार व्यक्त किया जा सकता है—

बैंक दर में कमी – व्यापारिक बैंकों को कम ब्याज दर ऋण की प्राप्ति – व्यापारियों को कम ब्याज पर ऋण की प्राप्ति – विनियोग में वृद्धि – उत्पादन, मूल्य, रोजगार तथा राष्ट्रीय आय में वृद्धि।

साख का संकुचन—जब केन्द्रीय बैंक यह अनुभव करता है कि बाजार में साख की मात्रा आवश्यकता से अधिक हो गई है और यह स्फीतिक दशाएँ उत्पन्न कर रही हैं, तब केन्द्रीय बैंक बैंक दर को बढ़ाकर साख की मात्रा को नियमित करने का प्रयास करता है। बैंक दर को कम करने के प्रभाव को इस प्रकार व्यक्त किया जा सकता है—

बैंक दर में वृद्धि → व्यापारिक बैंकों को अधिक ब्याज पर ऋण की प्राप्ति → व्यापारियों को महँगा ऋण → विनियाग में कमी → उत्पादन, मूल्य रोजगार तथा राष्ट्रीय आय में कमी।

TOUCH 'n' PASS

परन्तु बैंक दर तभी प्रभावशाली भूमिका अदा कर सकती है जब अन्य बातें समान रहें।

(i) अर्थव्यवस्था पूर्णतया लोचदार होनी चाहिए।
(ii) मुद्रा बाजार की अन्य ब्याज दरें बैंक दर से सम्बद्ध होनी चाहिए।
(iii) काली मुद्रा (Black Money) तथा काली अर्थव्यवस्था (Black Economy) जैसी चीजें नहीं पायी जानी चाहिए।
(iv) व्यापारिक बैंक केन्द्रीय बैंक पर निर्भर हों तथा
(v) व्यापारी वर्ग बैंकों पर निर्भर हों।

2. **खुले बाजार की क्रियाएँ** (Open Market Operation)—करेंसी तथा साख को नियमित करने के लिए इस यन्त्र का प्रयोग पहली बार प्रथम विश्वयुद्ध के बाद हुआ। संकीर्ण अर्थों में खुले बाजार की क्रियाओं से अभिप्राय केन्द्रीय बैंक द्वारा सरकारी प्रतिभूतियों के क्रय-विक्रय से है। व्यापक अर्थों में इसके अन्तर्गत योग्य प्रपत्रों तथा निजी क्षेत्रों की प्रतिभूतियों के क्रय-विक्रय से है। व्यापक अर्थों में इसके अन्तर्गत योग्य प्रपत्रों तथा निजी क्षेत्रों की प्रतिभूतियों तथा बिलों का क्रय-विक्रय भी सम्मिलित है।

साख का विस्तार—केन्द्रीय बैंक यदि अनुभव करता है कि साख का विस्तार होना चाहिए तब वह खुले बाजार में प्रतिभूतियों को क्रय करना प्रारम्भ कर देता हैं ऐसा करने पर प्रतिभूति बैंक के पास चली जाती है और नकदी जनता के पास तथा व्यापारिक बैंकों के पास पहुँच जाती है। परिणामस्वरूप व्यापारिक बैंकों की साख सृजन करने की क्षमता बढ़ जाती है।

साख का संकुचन—केन्द्रीय बैंक अर्थव्यवस्था में साख की मात्रा कम करने के लिए खुले बाजार में प्रतिभूतियों का विक्रय प्रारम्भ कर देता है, जिससे जनता तथा व्यापारिक बैंकों के पास नकदी की मात्रा कम हो जाती है और व्यापारिक बैंक भी पहले से कम साख की मात्रा का सृजन कर पाते हैं।

खुले बाजार की क्रियाएँ अर्थव्यवस्था में तब प्रभाव प्रदर्शित कर पाती हैं, जब निम्नलिखित दशाएँ विद्यमान हों—

(i) प्रतिभूतियों की माँग तथा पूर्ति सदैव एवं पर्याप्त मात्रा में विद्यमान रहनी चाहिए।
(ii) मद्रा बाजार पूर्ण विकसित होना चाहिए।
(iii) खुले बाजार की क्रियाओं से व्यापारिक बैंकों के कोष प्रभावित होने चाहिए।
(iv) व्यापारिक बैंकों की ऋण नीति अपरिवर्तित रहनी चाहिए।
(v) ऋणों की माँग यथावत रहनी चाहिए।
(vi) केन्द्रीय बैंक द्वारा प्रतिभूतियों का क्रय तथा विक्रय करने की शक्ति असीमित होनी चाहिए।

3. **नकद रक्षित अनुपात** (Cash Reserve Ratio or CRR)—मौद्रिक नीति के परिमाणात्मक यन्त्रों में यह तीसरा महत्त्वपूर्ण यन्त्र है। इसका प्रयोग सर्वप्रथम 1933 में अमेरिका के फेडरल रिजर्व सिस्टम द्वारा किया गया। प्रत्येक व्यापारिक बैंक को अपने कुल जमा का एक निश्चित प्रतिशत कानूनी तौर पर केन्द्रीय बैंक के पास नकद कोष के रूप में जमा करना पड़ता है। इसे वैधानिक न्यूनतम नकद कोष (Statutory Minimum Cash Reserve) कहा जाता है। केन्द्रीय बैंक न्यूनतम नकद कोष में परिवर्तन करके व्यापारिक बैंकों की साख सृजन क्षमता को नियोजित करता है।

साख का विस्तार—साख का विस्तार करने के लिए केन्द्रीय बैंक नकद रक्षित कोष के प्रतिशत को कम कर देता है। ऐसा करने पर व्यापारिक बैंकों की नकदी की क्षमता बढ़ जाती है तथा अब वे पहले से अधिक साख का सृजन कर सकते हैं, यानी उधार दे सकते हैं।

साख का संकुचन—अर्थव्यवस्था में साख की मात्रा को कम करने के लिए केन्द्रीय बैंक व्यापारिक बैंकों की उधार देने की क्षमता को कम कर देता है। इसके लिए वह नकद रक्षित कोष का प्रतिशत बढ़ा देता है, जिससे व्यापारिक बैंकों के पास नकदी की मात्रा घट जाती है और अब वे पहले से कम उधार देने में समर्थ होते हैं।

आपको यह बात समझातें चलें कि यह नीति तभी फलदायी होगी जब सम्पूर्ण आर्थिक क्रियाकलाप वैधानिक संरचना के अन्तर्गत सम्पन्न हों।

4. **संवैधानिक तरलता अनुपात** (Statutory Liquidity Ratio or SLR)—बैंकों की तरफ दौड़ को रोकने तथा अपनी विश्वसनीयता को बनाए रखने के लिए यह आवश्यक है कि व्यापारिक बैंक अपनी तरलता को बनाए रखे। इसी

TOUCH 'n PASS

उद्देश्य से केन्द्रीय बैंक ने यह कानून बना दिया कि प्रत्येक व्यापारिक बैंक अपने कुल जमा का एक निश्चित प्रतिशत अपने पास नकद रूप में रखेंगे। इसी प्रतिशत को संवैधानिक तरलता अनुपात कहते हैं।

केन्द्रीय बैंक जब साख का विस्तार करना चाहता है तब तरलता अनुपात को कम कर देता है, जिससे व्यापारिक बैंकों को उधार देने की क्षमता बढ़ जाती है। इसके विपरीत जब साख की मात्रा कम करनी होती है तब वैधानिक तरलता अनुपात बढ़ा दिया जाता है।

II. चयनात्मक या गुणात्मक यन्त्र (Qualitative Instruments)

अभी तब आपने उन मौद्रिक यन्त्रों के बारे में पढ़ा जो किसी भेदभाव के सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था को प्रभावित करते हैं। परन्तु व्यवहार में कभी-कभी कुछ खास क्षेत्रों को प्रभावित करने की जरूरत होती है। इसके लिए गुणात्मक यन्त्र, जिसे चयनात्मक यन्त्र भी कहते हैं, का प्रयोग किया जाता है। गुणात्मक यन्त्रों के रूप में निम्नलिखित उपाय अपनाए जाते हैं—

1. मार्जिन में परिवर्तन (Change in Margin)
2. साख की राशनिंग (Rationing of Credit)
3. सीधी कार्यवाही (Direct Action)
4. नैतिक दबाव (Moral Suasion)

1. **मार्जिन में परिवर्तन** (Change in Margin)—प्रतिभूतियों के मूल्य तथा उधार की राशि के अन्तर को सीमा कहते हैं। किसी खास क्षेत्र तथा खास मद को प्रभावित करने के लिए इसका प्रयोग किया जा सकता है। सरकार यदि चाहती है कि कृषि क्षेत्र में खासकर दलहन का उत्पादन बढ़े तो वह इसको दिए जाने वाले ऋण के लिए मार्जिन कम कर सकती है। इसी प्रकार यदि विलासिता की वस्तुओं पर व्यय रोकना चाहती है तो उनके लिए मार्जिन बढ़ा सकती है।
2. **साख की राशनिंग** (Rationing of Credit)—केन्द्रीय बैंक सर्व अधिकार प्राप्त बैंक है। वह किसी बैंक को दिए जाने वाले उधार की मात्रा निश्चित कर सकता है। किसी बैंक को उधार देने से मना कर सकता है। व्यापारिक बैंकों के लिए साख सृजन करने की अधिकतम मात्रा (कोटा) निश्चित कर सकता है। इस प्रकार वह इच्छानुसार क्षेत्र में साख की मात्रा को नियमित कर सकता है।
3. **सीधी कार्यवाही** (Direct Action)—व्यापारिक बैंकों के मनमानी करने पर तथा केन्द्रीय बैंक के नियमों का उल्लंघन करने पर केन्द्रीय बैंक व्यापारिक बैंकों के खिलाफ सीधी कार्यवाही कर सकता है। इसके अन्तर्गत वह निम्नलिखित कार्य कर सकता है।
   (i) व्यापारिक बैंकों से अर्थ दण्ड वसूलना।
   (ii) व्यापारिक बैंकों तथा किसी खास बैंक को सहयोग न करना।

   सीधी कार्यवाही की सफलता के लिए आवश्यक है कि—(i) केन्द्रीय बैंक शक्तिशाली हो, (ii) मुद्रा बाजार में उसका पूरा नियन्त्रण हो तथा (iii) अन्य बैंकों के साथ उसका सम्बन्ध सकारात्मक हो।
4. **नैतिक दबाव** (Moral Suasion)—केन्द्रीय बैंक के मुखिया की भूमिका में होने के कारण वह सबके लिए सहज स्वीकार्य है। वह बैंकों को समझा-बुझाकर, अनुरोध करके तथा नैतिक दबाव द्वारा नीतियों का पालन करने के लिए बाध्य कर सकता है। स्फीति की दशा में केन्द्रीय बैंक बैंकों को मना कर सकता है कि वे अधिक ऋण न दें तथा अवस्फीतिकाल में ऋण देने के लिए प्रेरित कर सकता है।

प्र.5. विकासशील देशों में मौद्रिक नीति की विवेचना कीजिए।

Discuss the role of monetary policy in developing countries.

उत्तर

विकासशील देशों में मौद्रिक नीति की भूमिका
(Role of Monetary Policy of Developing Countries)

विकसित तथा विकासशील देश—अविकसित वह है, जहाँ विकास की आशा ही नहीं है; जैसे—अन्टार्कटिक, आर्कटिक तथा सहारा का कुछ भाग। विकासशील वह है जहाँ विकास के पर्याप्त अवसर उपलब्ध नहीं है; जैसे—भारत, पाकिस्तान, युगाण्डा पनामा आदि। विकसित वह है जहाँ इच्छानुसार विकास की सभी सम्भावनाएँ एवं अवसर उपलब्ध हैं; जैसे—अमेरिका, जापान, ब्रिटेन तथा फांस आदि। तकनीकी रूप में विकसित तथा विकासशील देशों को उनकी कृषि पर निर्भरता, प्रति व्यक्ति आय, गरीबी का स्तर, बेरोजगारी, उद्यमशीलता, उत्पादन तथा उत्पादकता का स्तर, बचत एवं पूँजी निर्माण की दर तथा मानव विकास सूचकांक आदि के आधार पर पृथक् किया जाता है।

TOUCH n PASS

मौद्रिक नीति की भूमिका—हम जानते हैं कि विकसित तथा विकासशील देशों में आर्थिक उद्देश्य, आर्थिक संसाधन तथा आर्थिक दशाएँ अलग-अलग होती हैं। ऐसे में दोनों के लिए एक ही मौद्रिक नीति कैसी उपयोगी हो सकती है। विकासशील देशों में मौद्रिक नीति का कार्य अत्यन्त कठिन होता है क्योंकि उसे उस देश को प्राथमिक अवस्था से निकालकर आत्मस्फूर्ति की अवस्था तक ले जाना होता है। उल्लेखनीय है कि विकासशील देशों को आधारभूत समस्या गरीबी और बेरोजगारी है। इसे दूर करने के लिए मुद्रा तथा साख का विस्तार अनिवार्य है, भले ही मूल्य स्तर थोड़ा ऊँचा ही क्यों न हो जाए। इसका अभिप्राय यह है कि आर्थिक विकास कार्यक्रमों को प्रोत्साहित करने के लिए उदार मौद्रिक नीति लागू करना आवश्यक है।

अब प्रश्न यह उठता है कि विकासशील देशों में विकास केन्द्रित मौद्रिक नीति किस भूमिका में वास्तव में होना चाहिए? अर्थात् विकासशील देश में मौद्रिक नीति को किन जरूरतों को पूरा करना चाहिए। विकासशील देशों में मौद्रिक नीति को लागू करते समय मौद्रिक अधिकारियों को निम्नलिखित बिन्दुओं पर ध्यान केन्द्रित करना चाहिए—

1. **स्फीतिक प्रभाव पर नियन्त्रण**—आप जानते हैं कि अर्थव्यवस्था चाहे पूँजीवादी हो चाहे समाजवादी दोनों का ही उद्देश्य अधिकतम सामाजिक हित सुरक्षा करना है। यही कारण है कि सरकारें बड़े पैमाने पर विभिन्न विकास परियोजनाओं में एक साथ निवेश करती है। इसका परिणाम यह होता है कि कुल प्रभावपूर्ण माँग बढ़ जाती है परन्तु उसी अनुपात उपभोक्ता वस्तुओं के उत्पादन में वृद्धि नहीं होती है। इसलिए आन्तरिक कीमतों में तेजी से वृद्धि होती है। मौद्रिक नीति ऐसी होनी चाहिए जो स्फीति पर प्रभावशाली नियन्त्रण स्थापित कर सके। यदि मौद्रिक नीति ऐसा करने में असफल रहती है तब वह विकास प्रक्रिया में सहायक नहीं बन पाएगी। विकास के लिए आवश्यक है कि बचत पर्याप्त होने के साथ-साथ निवेश के बराबर भी हो। अल्पविकसित देशों में बचत की कमी को पूरा करने के लिए साख के विस्तार तथा घाटे की वित्त व्यवस्था का सहारा लिया जाता है, जो स्फीतिक प्रभावों में वृद्धि करते हैं। मौद्रिक नीति ऐसी होनी चाहिए जो जनता में बचत की प्रवृत्ति को बढ़ाए तथा विनियोग के लिए साख के विस्तार तथा घाटे की वित्त व्यवस्था पर से निर्भरता कम करे।
2. **नए क्षेत्रों का मौद्रिकीकरण**—व्यापार के आकार में वृद्धि तथा तीव्र आर्थिक विकास के लिए पर्याप्त एवं कुशल मौद्रिक क्षेत्र का होना एक अनिवार्य जरूरत है। अत: मौद्रिक नीति की प्राथमिकी जिम्मेदारी है कि वह देश के उन क्षेत्रों में, जहाँ या तो बैंकिंग सुविधाएँ नहीं हैं या तो कम हैं, बैंकिंग सुविधाओं का विस्तार करे ताकि बैंकिंग आदतों में सुधार अथवा वृद्धि हो सके। हम जानते हैं कि बड़े पैमाने पर अमौद्रिक क्षेत्र का पाया जाना ही विकासशील देशों का सबसे बड़ा लक्षण है। ऐसे क्षेत्र में ब्याज दर के परिवर्तन तथा मुद्रा की पूर्ति में परिवर्तन का आर्थिक क्रियाकलापों पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता है। क्योंकि आर्थिक लेन-देन में मुद्रा सम्मिलित नहीं रहती है और सभी सौदे वस्तु विनिमय प्रणाली द्वारा सम्पन्न होते हैं। ऐसी दशा में एक बहुत बड़ा क्षेत्र मौद्रिक नीति के नियन्त्रण से बाहर रहता हैं मौद्रिक नीति ऐसी होनी चाहिए जिससे इन क्षेत्रों में बैंकिंग सुविधाओं का विस्तार हो यह एक तरफ तो जनता की निष्क्रिय बचत तो गतिशीलता प्रदान करेगी जिससे प्राथमिक उद्योगों को निवेश हेतु पर्याप्त संसाधन उपलब्ध हो सकेंगे दूसरी तरफ मौद्रिक क्षेत्र का विस्तार होने से अधिक-से-अधिक क्षेत्र मौद्रिक नीति के नियन्त्रण में आ जाएँगे। इन सबके परिणामस्वरूप मौद्रिक नीति और भी प्रभावशाली हो जाएगी।
3. **संगठित तथा असंगठित क्षेत्र का समन्वय**—हम जानते हैं कि विकासशील देशों की अर्थव्यवस्था दो भागों में विभाजित होती है—संगठित क्षेत्र तथा असंगठित क्षेत्र। विकासशील देशों में केन्द्रीय बैंक का नियन्त्रण केवल संगठित क्षेत्र तक ही सीमित रहता है और असंगठित क्षेत्र इसकी पहुँच से बाहर रहते हैं। ऐसे में जब केन्द्रीय बैंक मुद्रा बाजार को नियन्त्रित करने का प्रयास करता है तब यह असंगठित क्षेत्र भिन्न-भिन्न प्रकार की समस्याएँ उत्पन्न करता है। आवश्यकता इस बात की है कि असंगठित क्षेत्र को बैंकिंग व्यवस्था के साथ समन्वित किया जाए। अत: मौद्रिक नीति की यह जिम्मेदारी है कि वह संगठित तथा असंगठित क्षेत्र को समन्वित करने के लिए आवश्यक कदम उठाए। हम यह भी जानते हैं कि बिल बाजार के अविकसित होने के कारण अल्पविकसित देशों में मुद्रा बाजार भी अस्पष्ट एवं अविकसित होता है। ऐसे में बिल बाजार को विकसित करने के लिए जरूरी कदम उठाना मौद्रिक नीति के लिए अपरिहार्य है।
4. **अविकसित मुद्रा बाजार**—अब तक तो आप यह समझ ही गए होंगे कि कमजोर मुद्रा बाजार अल्पविकसित देशों की विशेषता होने के साथ-साथ उनकी परेशानी का कारण भी है। मुद्रा बाजार अविकसित होने के कारण समान ब्याज दर संरचना नहीं पायी जाती है। अर्थव्यवस्था में व्याप्त विभिन्न ब्याज दरों का बैंक दर से कोई ताल-मेल नहीं पाया जाता है। बैंक दर में कोई परिवर्तन इन विभिन्न ब्याज दरों को प्रभावित नहीं कर पाता हैं परिणामस्वरूप केन्द्रीय बैंक का मौद्रिक

TOUCH 'n PASS

बाजार पर प्रभाव नियन्त्रण स्थापित नहीं हो पाता है। इसका अभिप्राय यह है कि मौद्रिक नीति को इस प्रकार होना चाहिए ताकि वह विभिन्न ब्याज दरों के बीच तालमेल स्थापित कर एक समन्वित ब्याज दर संरचना का विकास कर सके।

5. **विनियोग प्रोत्साहन**—आप जानते हैं कि विनियोग को प्रोत्साहित करने के लिए आर्थिक एवं सामाजिक उपरिसुविधाओं का पर्याप्त मात्रा में होना अनिवार्य है। यह तभी सम्भव है जब केन्द्रीय बैंक, व्यावसायिक बैंक तथा अन्य वित्तीय संस्थाओं का आपस में पूर्ण समन्वय हो। अत: मौद्रिक नीति की यह जिम्मेदारी है कि वह मुद्रा बाजार के सभी घटकों के बीच सहयोगात्मक दृष्टिकोण विकसित करें।

   ऐसा करने पर ही मौद्रिक नीति बचत को गतिशील कर विनियोग तथा उत्पादन को बढ़ाने में सकारात्मक भूमिका निभा सकती है।

प्र.6. फ्रीडमैन के मुद्रा परिमाण सिद्धान्त का आलोचनात्मक परीक्षण कीजिए।
Critically examine Friedman's Quantity Theory of Money.

उत्तर

फ्रीडमैन का मुद्रा परिमाण सिद्धान्त
(Friedman's Quantity Theory of Money)

परम्परागत मुद्रा के परिमाण सिद्धान्त के निष्कर्ष एवं समीकरण में अन्तर है। फ्रीडमैन ने इसके समीकरण को तथा पाटिन्किन ने निष्कर्ष को पुन: स्थापित किया। परम्परागत मुद्रा के परिमाण सिद्धान्त में मुद्रा की मुख्य भूमिका विनिमय के माध्यम के रूप में है। फिशर के बाद मुद्रा के संचय कार्य पर अधिक जोर दिया गया। फ्रीडमैन ने मुद्रा को सम्पत्ति के रूप में परिभाषित किया। अर्थव्यवस्था में सम्पत्ति अनेक रूपों में पायी जाती है और प्रत्येक रूप में वह कुछ-न-कुछ अंश तक संचय के उद्देश्य को पूरा करती हैं वास्तव में परम्परागत मुद्रा के परिमाण सिद्धान्त मुद्रा की माँग का सिद्धान्त है जबकि परिमाण सिद्धान्त का समीकरण, माँग का समीकरण है। यह उत्पादन, मौद्रिक आय तथा कीमत स्तर का सिद्धान्त नहीं है। इसके निर्धारण हेतु मुद्रा की माँग में कुछ अतिरिक्त चरों को सम्मिलित करना पड़ेगा।

फ्रीडमैन के अनुसार सभी प्रकार के सम्पत्तियाँ मिलकर सम्पत्ति सूची (Asset Portfolio) का निर्माण करती है जिसमें मुद्रा भी शामिल है। यही कारण है कि एक सम्पत्ति की माँग दूसरी सम्पत्ति की माँग पर भी निर्भर करता है। अत: कहा जा सकता है कि व्यवहार में बहु सम्पत्ति बाजार प्रारूप पाया जाता है, जिनमें विभिन्न प्रकार की सम्पत्तियों का व्यापार होता है।

इसी रास्ते का सहारा लेकर फ्रीडमैन ने अपनी पुस्तक "Studies in Quantity Theory of Money" में सामान्य कीमत सिद्धान्त तथा मुद्रा के सिद्धान्त को समन्वित करने का प्रयास किया।

सम्पत्ति की माँग का प्रतिपक्ष ही पूँजी की पूर्ति को व्यक्त करता है। दूसरी तरफ सम्पत्ति की पूर्ति का प्रतिपक्ष वित्तीय पूँजी की माँग को व्यक्त करता है। व्यय से अधिक आय बजटीय घाटे को व्यक्त करता है। यह घाटे का क्षेत्र पूँजी की माँग उत्पन्न करता है, दूसरे शब्दों में सम्पत्ति की पूर्ति को। अतिरेक की स्थिति में इसका ठीक उल्टा होगा।

इसलिए मुद्रा की माँग का सिद्धान्त, पूँजी सिद्धान्त का ही एक भाग बन जाता है।

मुद्रा की माँग का आधार

मुद्रा की माँग सम्पत्ति के स्वामियों द्वारा की जाती है। स्वामी अपनी सम्पत्ति का एक निश्चित भाग, जिसे सम्पत्ति सूची कहा जाता है, अपने पास रखता है। उद्यमी विभिन्न प्रकार के उत्पादन साधनों की माँग उत्पन्न करते हैं। उद्यमियों का उत्पादन फलन, मुद्रा की माँग का निर्धारण करता है। उत्पादन के अन्य साधनों की माँग की भाँति मुद्रा की माँग भी तकनीकी दशाओं पर निर्भर करती है। सम्पत्ति सूची में परिवर्तन विनिमय द्वारा होता है तथा उत्पादन साधनों की माँग में परिवर्तन उत्पादन के द्वारा होता है। मुद्रा की माँग इस परिवर्तन की प्रक्रिया को सहायता प्रदान करती है।

प्रत्येक अभिकर्त्ता का उद्देश्य अपने लाभ को अनुकूलतम करना होता है। सम्पत्ति का स्वामी अपनी 'सम्पत्ति सूची' को पुन: समायोजित करके उपयोगिता को अधिकतम करता है। उद्यमी अपने लाभ को अधिकतम करने का प्रयास करता है।

वस्तुओं की माँग की व्याख्या

वस्तुओं की माँग की व्याख्या चुनाव के सिद्धान्त के माध्यम से की जा सकती हैं अनधिमान वक्र का आकार एवं ढाल X तथा Y दो वस्तुओं के बीच सीमान्त प्रतिस्थापन की दर (व्यक्तिनिष्ठ) को व्यक्त करता है। चयनकर्त्ता अपनी वास्तविक आय तथा सापेक्षिक कीमतों को ध्यान में रखकर अपनी उपयोगिता को अधिकतम करता है। उपभोक्ता की उपयोगिता अधिकतम तब होती जब

TOUCH 'n' PASS

व्यक्तिनिष्ठ सीमान्त प्रतिस्थापन की दर (तटस्थता वक्र का ढाल) तथा वस्तुनिष्ठ सीमान्त प्रतिस्थापन की दर (कीमत रेखा का ढाल) दोनों बराबर होते हैं। यह बिन्दु तटस्थता वक्र तथा कीमत रेखा के स्पर्श बिन्दु से परिलक्षित होता है। चयन के सिद्धान्त के समान मुद्रा की माँग निम्नलिखित बातों पर निर्भर करती है—

1. सम्पत्ति की कुल मात्रा-सम्पत्ति सूची के आकार को निर्धारित करता है। सम्पत्ति का स्वामी अपनी सम्पत्ति को विभिन्न प्रकार की सम्पत्तियों में विभाजित करता है, जिसमें मुद्रा भी एक है। मान लिया सम्पत्ति का एक समूह $A_1, A_2, A_3 \ldots\ldots A_n$ है। सम्पत्ति की कुल मात्रा बजट अवरोधक का काम करती है।
2. उपभोक्ता की भाँति-सम्पत्ति का स्वामी भी मूल्य को दिया हुआ मान लेता है। सापेक्षिक कीमतें तथा विभिन्न सम्पत्तियों पर प्रतिफल की दर सम्पत्ति सूची की संरचना को निर्धारित करती है।
3. **सम्पत्ति के स्वामी**—सम्पत्ति के स्वामी का सम्पत्ति के लिए एक निश्चित अधिमान सूची होती है। सम्पत्ति के प्रति व्यक्तिनिष्ठ अधिमान सामाजिक, सांस्कृतिक तथा आर्थिक कारणों से प्रभावित होता है। यह मान लिया गया है कि सम्पत्ति के प्रति अधिमान का पैमाना समय के साथ अपरिवर्तित रहता है। अल्पकाल में केवल 'बाह्य झटके' ही अधिमान सूची को प्रभावित कर सकते हैं। इस प्रकार सम्पत्ति सूची सूची का एक निश्चित आकार एंव संरचना होती है।

परन्तु चयन के सिद्धान्त को सम्पत्ति के सन्दर्भ में ज्यों का त्यों लागू नहीं किया जा सकता है, क्योंकि सम्पत्ति के दो स्वरूप हैं— 1. स्टॉक तथा 2. प्रवाह। स्टॉक का सम्बन्ध एक समय बिन्दु से है जबकि प्रवाह का सम्बन्ध समयावधि से है। प्रत्येक सम्पत्ति अपने धारक को एक निश्चित प्रवाह की गारण्टी प्रदान करती है। इसे ही प्रतिफल की दर या सम्पत्ति की उपज कहते हैं। प्रत्येक सम्पत्ति, उपज, आकार तथा गुणवत्ता के आधार पर एक-दूसरे से भिन्न होती है। यही चुनाव की समस्या उत्पन्न करती है। परन्तु स्टॉक में प्रतिफल की दर से गुणा करके आय (प्रवाह) में परिवर्तित किया जा सकता है। इसी प्रकार आय में प्रतिफल की दर से भाग देकर पूँजीगत मूल्य ज्ञात किया जा सकता है।

आय (प्रवाह) $y = w \cdot r$

पूँजीगत मूल्य $w = y / r$

जहाँ— $y =$ Income (flow)

$w =$ Wealth (Capitalised Value)

$r =$ Rate of Return (प्रतिफल की दर)

सम्पत्ति की सापेक्षिक कीमतें सम्पत्ति के चयन का निर्देशन करती है।

मुद्रा का माँग फलन—उपर्युक्त विश्लेषण के उपरान्त हम अब इस स्थिति में पहुँच चुके हैं कि मुद्रा के माँग फलन का निर्धारण कर सकें। एक सम्पत्ति के रूप में मुद्रा की माँग के निम्नलिखित निर्धारक हैं—

सम्पत्ति का स्टॉक—सम्पत्ति की कुल मात्रा सम्पत्ति सूची के आकार को निर्धारित करती है। कुल सम्पत्ति मानवीय एवं गैर मानवीय सम्पत्ति से मिलकर बनती है। मानवीय सम्पत्ति भी जीवनकाल में आय उत्पन्न करती है। अत: सम्पत्ति मुद्रा की माँग का निर्धारण करती है। पूँजीगत मूल्य में प्रतिफल की दर से गुणा करने पर दूसरा निर्धारक आय प्राप्त होता है।

मुद्रा के सिद्धान्त में आय को स्थायी आय के रूप में स्वीकार किया गया है, यह मापित आय से भिन्न है। स्थायी आय, दीर्घकालीन आय को इंगित करता है, जिसे प्रत्याशित आय भी कहते हैं। इसके घटक निम्नलिखित हैं—

1. वर्तमान सम्पत्ति से आय
2. वार्षिक आय में अल्प उतार-चढ़ाव तथा
3. भविष्य में कमाने की क्षमता

अर्थात् स्थायी आय की अवधारणा भूतकाल, वर्तमान तथा भविष्य तीनों पर आधारित है। अत: स्थायी आय मुद्रा की माँग का प्रथम निर्धारक हैं।

1. सम्पत्ति को मानवीय तथा गैर-मानवीय दोनों रूपों में रखा जा सकता है। मान लिया गैर मानवीय पूँजी का मानवीय पूँजी से अनुपात (w) है। गैर मानवीय पूँजी का तो सीधे बाजार में व्यापार होता है परन्तु मानवीय पूँजी के बारे में ऐसा नहीं है। अत: w में परिवर्तन मुद्रा की माँग का दूसरा निर्धारक है।
2. विभिन्न परिसम्पत्तियों पर मिलने वाला प्रतिफल भी मुद्रा की माँग को प्रभावित करता है। सम्पत्ति का स्वामी उसी संयोग का चुनाव करता है जो सूची के उत्पाद को अधिकतम कर सके। उत्पादक उद्यमी सम्पत्ति को निर्गमित करके या उसे बेचकर

Touch 'n Pass

पूँजी खरीदते हैं। जब उद्यमी पूँजी खरीदता है तब उसे लागत चुकानी पड़ती है। ऐसे में लाभ तब अधिकतम होगा जब सम्पत्ति की सापेक्षित प्रतिफल दर तथा पूँजी खरीदने की लागत दोनों बराबर हों। अत: सम्पत्ति के स्वामी तथा उद्यमी दोनों की मुद्रा की माँग को एक समान चर प्रभावित करते हैं।

3. सम्पत्ति सूची की संरचना में शामिल मुद्रा, बॉण्ड, इक्वीटी तथा भौतिक वस्तुएँ, इन चारों की उपज मुद्रा की माँग को निर्धारित करते हैं। मुद्रा की उपज को क्रयशक्ति $\left(\frac{1}{P}\right)$ के रूप में व्यक्त किया जा सकता है। अत: यह मुद्रा की माँग का तीसरा निर्धारक है।
4. बॉण्ड की उपज को r_b से दर्शाया जा सकता है। बॉण्ड पर मिलने वाला ब्याज बाजार ब्याज के बराबर नहीं भी हो सकता है। अत: r_b मुद्रा की माँग का चौथा निर्धारक है।
5. इक्वीटी भी तनिक अन्तर के साथ बॉण्ड ही है। इस पर मिलने वाला प्रतिफल कीमत स्तर में परिवर्तन से सम्बद्ध रहता है। अत: इक्वीटी के प्रतिफल में तीन तत्त्व शामिल रहते हैं, मौद्रिक उपज (r_e) कीमत स्तर तथा आय का धनात्मक एवं ऋणात्मक मूल्य (I), अत: (r_e) मुद्रा की माँग का पाँचवाँ निर्धारक है। अन्त में भौतिक वस्तुओं का प्रतिफल आर्थिक एवं गैर-आर्थिक रूप में होता है। भौतिक वस्तुओं की मौद्रिक उपज पुन: $\frac{1}{P}\cdot\frac{\delta P}{\delta t}$ पर निर्भर करता हैं भौतिक वस्तुओं के पूँजीगत मूल्य में वृद्धि या कमी कीमत परिवर्तन से सम्बन्धित है। इस प्रकार $\frac{1}{P}\cdot\frac{\delta P}{\delta t}$ मुद्रा की माँग का छठवाँ निर्धारक है।
6. सम्पत्ति सूची में सम्पत्ति के स्वामी तथा उत्पादक उद्यमी के रुचि एवं अधिमान महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। अत: रुचि एवं अधिमान, जिसके लिए 'u' का प्रयोग किया जा सकता है, मुद्रा की माँग का सातवाँ निर्धारक है।

अत: मुद्रा माँग के फलन को निम्न प्रकार लिखा जा सकता है—

$$M = f\left(P, y, \frac{1}{P}\cdot\frac{\delta P}{\delta t}, r_b, r_e, w, u\right)$$

जहाँ

M = मुद्रा की कुल माँग
P = सामान्य कीमत स्तर
y = कुल आय का प्रवाह
$\frac{1}{P}\cdot\frac{\delta P}{\delta t}$ = भौतिक वस्तुओं के मौद्रिक प्रतिफल का आकार
r_b = बॉण्ड की उपज (बॉण्ड की बाजार ब्याज दर)
r_e = इक्वीटी की उपज
w = मानवीय एवं गैर मानवीय सम्पत्ति का अनुपात
u = रुचि एवं अधिमान व्यक्त करने वाला चर

आधुनिक परिमाण सिद्धान्त की आलोचना—फ्रीडमैन के दृष्टिकोण की दो आधारों पर आलोचना की जाती है।

प्रथम—फ्रीडमैन का तर्क है कि समाज में नकद शेष की माँग के निर्धारण में ब्याज दर की भूमिका बहुत महत्त्वपूर्ण नहीं रहती हैं यह स्वीकार नहीं किया जा सकता है। ब्याज दर में वृद्धि निश्चित रूप से नकद रखने की लागत को बढ़ा देगा और नकद की माँग को कम कर देगा, परिणामस्वरूप बैंकों में जमा में वृद्धि ही जाएगी। ब्याज दर कम होने पर इसके विपरीत व्यवहार देखने को मिलेगा। अत: यह मान्यता कि जमा ब्याज के प्रति बेलोचदार होती है सही नहीं है।

द्वितीय—दूसरी मान्यता यह है कि किसी समाज में मुद्रा की पूर्ति आय तथा कीमत स्तर में परिवर्तन से स्वतन्त्र होती है। बल्कि मुद्रा की पूर्ति आय एवं कीमत स्तर का निर्धारण करती है। परन्तु अनुभव पर आधारित अध्ययन यह बताते हैं कि आय तथा कीमत स्तर भी समान रूप से मुद्रा की पूर्ति को प्रभावित करते हैं।

आधुनिक सिद्धान्त की श्रेष्ठता—अनेक आलोचनाओं के बावजूद यह सिद्धान्त परम्परागत मुद्रा के परिमाण सिद्धान्त से श्रेष्ठ है। यह पूर्व सिद्धान्त की अपेक्षा अधिक बेहतर एवं व्यापक रूप से मुद्रा की माँग की व्याख्या करता है। फ्रीडमैन ने स्वयं अपने योगदान के सैद्धान्तिक स्वरूप का अनुभव के द्वारा परीक्षण किया तथा उसकी प्रामाणिकता को स्थापित किया।

TOUCH n PASS

प्र.7. मुद्रा के परिमाण सिद्धान्त की आलोचनामक व्याख्या कीजिए।
Critically explain the Quantity Theory of Money.

उत्तर

मुद्रा का परिमाण सिद्धान्त
(Quantity Theory of Money)

प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों (जिसका प्रयोग मार्क्स ने रिकार्डो तथा उसके समवर्ती अर्थशास्त्रियों के लिए किया) ने मुद्रा का परिमाण सिद्धान्त वणिकवादी विचारक डेविड ह्यूम की पुस्तक 'Political Discourse' से प्राप्त किया। सिद्धान्त का सर्वप्रचलित रूप 1911 में इरविंग फिशर ने अपनी कृति 'Purchasing Power of Money' में दिया। मुद्रा मूल्य का निर्धारण मुद्रा की माँग और मुद्रा की पूर्ति से होता है। मुद्रा का परिमाण सिद्धान्त यह मान लेता है कि मुद्रा की माँग स्थिर रहती है और मुद्रा की पूर्ति तथा मुद्रा के मूल्य में विपरीत एवं आनुपातिक सम्बन्ध पाया जाता हैं **जॉन लॉक** के अनुसार मुद्रा के विनिमय मूल्य और उपयोग मूल्य होते हैं। **केन्टीलान** ने इस ओर संकेत किया कि मुद्रा की कुल पूर्ति जानने के लिए मुद्रा की तीव्रता पर विचार करना आवश्यक है। संक्षेप में कहा जा सकता है कि मुद्रा का परिमाण सिद्धान्त ह्यूम, लॉक, केन्टीलान तथा फिशर एवं अन्य अर्थशास्त्रियों के सामूहिक प्रयास का फल है।

मुद्रा के परिमाण सिद्धान्त का कथन

फिशर के अनुसार, "अन्य बातें स्थिर रहने पर जब चलन में मुद्रा का परिमाण बढ़ता है तो कीमत स्तर भी प्रत्यक्ष अनुपात में बढ़ता है तथा मुद्रा का मूल्य कम हो जाता है।"

टार्जिंग के अनुसार, "अन्य बातें समान रहने पर मुद्रा की मात्रा दोगुनी कर देने से कीमतें पहले से दोगुनी तथा मूल्य आधा रह जाएगा। अन्य बातें समान रहने पर मुद्रा की मात्रा आधी कर देने पर मुद्रा का मूल्य पहले से दोगुना तथा कीमतें आधी हो जाएँगी।"

उपर्युक्त परिभाषाओं से परिमाण सिद्धान्त के बारे में दो बातें स्पष्ट होती हैं—

1. मुद्रा की मात्रा और सामान्य कीमत स्तर में प्रत्यक्ष आनुपातिक सम्बन्ध पाया जाता है।
2. मुद्रा की मात्रा तथा मुद्रा के मूल्य में विपरीत आनुपातिक सम्बन्ध पाया जाता है।

इस तथ्य को एक तालिका द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है—

क्रम	मुद्रा की मात्रा (M)	वस्तु एवं सेवा की मात्रा (T)	सामान्य कीमत स्तर (P)	मुद्रा का मूल्य $\left(\frac{1}{P}\right)$
1.	20	20	$\frac{M}{T}=\frac{20}{20}=1$	$\frac{1}{P}=\frac{1}{1}=1$
2.	40 (दोगुना)	20	$\frac{M}{T}=\frac{40}{20}=2$ (दोगुना)	$\frac{1}{P}=\frac{1}{2}=0.5$ (आधा)
3.	10 (आधा)	20	$\frac{M}{T}=\frac{10}{20}=0.5$ (आधा)	$\frac{1}{P}=\frac{1}{0.5}=2$ (दोगुना)

उपर्युक्त तालिका से स्पष्ट है कि मुद्रा की मात्रा दोगुनी करने पर सामान्य कीमत स्तर दोगुना तथा मुद्रा का मूल्य आधा रह जाता है तथा इसके विपरीत भी।

मुद्रा का परिमाण सिद्धान्त—परिमाण सिद्धान्त को समझने के लिए मुद्रा की माँग और पूर्ति को समझना आवश्यक है।

मुद्रा की माँग—वस्तुओं तथा सेवाओं को प्राप्त करने के लिए मुद्रा की माँग की जाती है। अत: किसी समय विशेष पर मुद्रा की माँग विनिमय की मात्रा पर निर्भर करती है। यदि कुल सौदों की मात्रा T तथा सामान्य कीमत पर P है तो कुल मुद्रा की माँग ज्ञात की जा सकती है—

$$\text{कुल माँग } (D) = P \text{ (सामान्य कीमत स्तर पर)} * T \text{ (कुल सौदे)}$$

मुद्रा की पूर्ति—प्रचलन में विद्यमान मुद्रा (m) प्रचलित मुद्रा का संचलन वेग (v) साख मुद्रा (m^1) तथा साख मुद्रा का संचलन वेग मिलकर मुद्रा की पूर्ति का निर्धारण करते हैं।

माँग और पूर्ति की उपर्युक्त धारणाओं का ही प्रयोग करके फिशर ने मुद्रा के परिमाण सिद्धान्त का समीकरण दिया।

TOUCH 'n' PASS

मुद्रा परिमाण सिद्धान्त अर्थात् नकद सौदा समीकरण—

मुद्रा की माँग = मुद्रा की पूर्ति

$$P * T = m * v$$

फ्रिशर का संशोधित समीकरण—

मुद्रा की माँग = मुद्रा की पूर्ति

$$P * T = m * v + m^1 * v^1 \qquad \text{या} \qquad P = \frac{mv + m^1 v^1}{T}$$

या $$\frac{1}{P}(\text{value of money}) = \frac{T}{mv + m^1 v^1}$$

जहाँ m = प्रचलन में मुद्रा या करेंसी की मात्रा

v = प्रचलित मुद्रा या करेंसी का प्रचलन वेग

(प्रचलन वेग से अभिप्राय मुद्रा या साख की एक इकाई के प्रयोग की आवृत्ति से है। यदि 1 रुपये के नोट को दिए हुए समय में 10 बार क्रय-विक्रय के लिए प्रयोग किया जाता है तो उसका संचलन वेग 10 होगा।)

m^1 = बैंक मुद्रा या साख मुद्रा की मात्रा

v^1 = साख मुद्रा की चलन गति

P = कीमत स्तर

$\frac{1}{P}$ = मुद्रा का मूल्य

रेखाचित्र द्वारा स्पष्टीकरण—फिशर के समीकरण को रेखाचित्र द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है—

संलग्न चित्र के पहले (ऊपर वाले) भाग में,

1. X अक्षर पर मुद्रा की मात्रा तथा Y अक्ष कीमत स्तर प्रदर्शित है।
2. मुद्रा की मात्रा OM से OM^1 (दोगुना) करने पर कीमत स्तर OP से बढ़कर OP^1 (दोगुना) हो जाता है।
3. ON रेखा मुद्रा की मात्रा तथा कीमत स्तर के आनुपातिक सम्बन्ध को व्यक्त करती है।

संलग्न चित्र के दूसरे (नीचे वाले) भाग में,

1. X अक्षर पर मुद्रा की मात्रा तथा Y अक्ष पर मुद्रा का मूल्य ($1/P$) व्यक्त है।
2. मुद्रा की मात्रा OM से बढ़ाकर OM^1 (दोगुना) करने पर मुद्रा का मूल्य $1/P$ से घटकर $1/2P$ (आधा) हो जाता है।
3. VV^1 मुद्रा की मात्रा तथा मुद्रा के मूल्य के बीच विपरीत आनुपातिक सम्बन्ध की व्याख्या करता है।

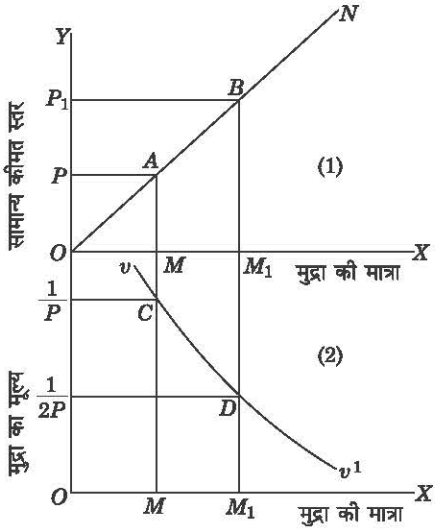

फिशर के समीकरण की मान्यताएँ

1. चलन मुद्रा तथा साख मुद्रा का अनुपात स्थिर रहता है।
2. चलन मुद्रा तथा साख मुद्रा का प्रचलन वेग स्थिर रहता है।
3. मूल्य स्तर निष्क्रिय रहता है अर्थात् डए ड1ए अए अ1 तथा ज् को प्रभावित नहीं करता है।
4. अर्थव्यवस्था में पूर्ण रोजगार पाया जाता है और ज् की मात्रा स्थिर रहती है।
5. यह सिद्धान्त दीर्घकाल की मान्यता पर आधारित है अर्थात् दीर्घकाल में मुद्रा की मात्रा तथा सामान्य कीमत स्तर में समन्वय स्थापित हो जाता है।

TOUCH 'n' PASS

नकद सौदा समीकरण की आलोचनाएँ—

1. यह सिद्धान्त अवास्तविक मान्यताओं, जिनकी व्याख्या ऊपर की गई है, पर आधारित है। ए मान्यताएँ सिद्धान्त की व्यावहारिकता पर प्रश्न चिह्न लगा देती है।
2. यह सिद्धान्त अल्पकाल की उपेक्षा करता है जबकि अर्थव्यवस्था की अल्पकालीन समस्याएँ अधिक महत्त्वपूर्ण होती हैं और उनका विश्लेषण अधिक उपयोगी हुआ करता है।
3. अन्य वस्तुओं तथा सेवाओं की भाँति मुद्रा का मूल्य भी मूल्य के सामान्य सिद्धान्त द्वारा निर्धारित हो सकता है। पृथक् सिद्धान्त की आवश्यकता नहीं है। यह सिद्धान्त मौद्रिक तथा वास्तविक क्षेत्र को अलग कर देता है।
4. यह एक पक्षीय सिद्धान्त है, क्योंकि पूर्ति पक्ष पर अधिक बल देता है।
5. मुद्रा की मात्रा में परिवर्तन, मूल्य को किस प्रकार प्रभावित करता है, इस प्रक्रिया की व्याख्या नहीं करता है।
6. यह ब्याज दर की उपेक्षा करता है जबकि हाट्रे, हायक तथा कींस का मानना है कि मुद्रा की मात्रा तथा कीमत स्तर के बीच का सम्बन्ध ब्याज द्वारा नियमित होता है।
7. व्यवहार में बहुत सौदे वस्तु विनिमय तथा साख के द्वारा किए जाते हैं। जबकि यह सिद्धान्त नकद लेन-देन के स्तर द्वारा ही मुद्रा की क्रयशक्ति को मापता है। अतः क्रयशक्ति का सही माप प्रस्तुत नहीं करता है।
8. मुद्रा की मात्रा में परिवर्तन का मूल्य पर प्रभाव कुछ समय बाद पड़ता है, जबकि फिशर का समीकरण इस समय विलम्बता पर ध्यान नहीं देता है।
9. यह सिद्धान्त संचित मुद्रा पर ध्यान नहीं देता है।
10. व्यापार चक्र की व्याख्या करने में असफल है। इस सिद्धान्त के अनुसार यदि मूल्य गिरते हैं तो मुद्रा की मात्रा बढ़ाकर मूल्य बढ़ाया जा सकता है परन्तु 1929 की विश्वव्यापी मन्दी के दौरान अनुभव बताते हैं कि ऐसा हो नहीं पाया।

मुद्रा का प्रचलन या चलन गति—यदि 10 रुपये का नोट दिन में 10 बार विनिमय के माध्यम के रूप में प्रयोग होता है तो उसका दैनिक प्रचलन वेग 10 होगा। मुद्रा की कुल मात्रा में इसको सम्मिलित करते हैं। किसी देश में मुद्रा का चलन गति निकालने के लिए एक वर्ष के कुल राष्ट्रीय उत्पादन में मुद्रा की चलन मात्रा से भाग दे दिया जाता है।

$$\text{प्रचलन गति } (V) = \frac{\text{कुल राष्ट्रीय उत्पाद } (GNP)}{\text{प्रचलन में मुद्रा}}$$

चलन गति को निर्धारित करने वाले तत्त्व—

1. मुद्रा की मात्रा यदि कम है तो चलन गति अधिक होगी, क्योंकि वह बार-बार प्रयोग में लायी जाएगी।
2. यदि क्रय में उधार लेन-देन का प्रचलन है, तब चलन वेग कम होगा।
3. यदि जनता में बचत की आदत कम है तब चलन गति अधिक होगी।
4. यदि जनता तथा व्यापारियों में तरलता पसंदगी अधिक है तब चलन वेग कम होगा।
5. यदि मजदूरी भुगतान देर से होता है तो लोग अपने पर अधिक नकद रखेंगे और चलन गति कम होगी।
6. यदि यातायात तथा संदेश वाहन पूर्ण विकसित अवस्था में है तो व्यापार का आकार बढ़ेगा परिणामस्वरूप चलन वेग भी बढ़ेगा।

प्र.8. नकद शेष समीकरण का आलोचनात्मक परीक्षण कीजिए।
Critically examine the Cash Balance Equation.

उत्तर

नकद शेष समीकरण
(Cash Balance Equation)

कैम्ब्रिज स्कूल के अर्थशास्त्रियों (मार्शल, पीगू तथा राबर्टसन) ने स्पष्ट किया कि सामान्य कीमत स्तर मुद्रा की कुल मात्रा पर निर्भर नहीं करता, बल्कि मुद्रा की उस मात्रा पर निर्भर करता है जिसे लोग अपने पास नकद रखते हैं। यही कारण है कि इस दृष्टिकोण को 'नकद शेष दृष्टिकोण' के नाम से जाना जाता है। मार्शल तथा राबर्ट्सन ने मुद्रा के मूल्य के सिद्धान्त को मूल्य के सामान्य सिद्धान्त की ही एक दशा माना। यह सिद्धान्त मुद्रा की पूर्ति की अपेक्षा मुद्रा की माँग पर अधिक बल देता है, इसलिए इसे मुद्रा की माँग का सिद्धान्त भी कहा जाता है।

TOUCH 'n' PASS

सिद्धान्त की मुख्य बातें—नकद शेष दृष्टिकोण की मुख्य बातें निम्नलिखित हैं—

1. **मुद्रा की पूर्ति**—निश्चित समय बिन्दु पर जनता के पास उपलब्ध नोट, सिक्के तथा बैंकों में माँग जमा के योग को मुद्रा की पूर्ति कहते हैं।
   फिशर के समीकरण में समय अवधि का प्रयोग किया गया है, इसलिए वहाँ चलन गति की भूमिका महत्त्वपूर्ण है। परन्तु समय के बिन्दु पर चलन गति का प्रभाव नहीं पड़ता है।
2. **मुद्रा की माँग**—कैम्ब्रिज समीकरण में मुद्रा की माँग लेन-देन करने के लिए नहीं (फिशर समीकरण) बल्कि संचय के लिए करते हैं ताकि जरूरत पड़ने पर लेन-देन कर सकें।
   इस प्रकार अर्थव्यवस्था में सभी लोग अपनी वास्तविक आय का जितना हिस्सा नकद रूप में रखना चाहते हैं, उसे ही मुद्रा की माँग कहा गया है।
   मुद्रा की माँग में वृद्धि → लेन देन में व्यय कम → वस्तुओं के मूल्य में कमी → मुद्रा के मूल्य में वृद्धि
   मुद्रा की माँग में कमी → लेन-देन में व्यय अधिक → वस्तुओं के मूल्य में वृद्धि → मुद्रा के मूल्य में कमी

विभिन्न नकद समीकरण (Different Cash Balance Equations)—

मार्शल का समीकरण - मार्शल के मतानुसार, मुद्रा की माँग मौद्रिक आय का फलन है।

$$M = KY$$

चूँकि मौद्रिक आय (Y), कुल उत्पादन (O) तथा कीमत स्तर (P) का गुणनफल होता है। अत:

$$Y = P \times O \quad \text{or} \quad M = K \times P \times O$$

or
$$P = \frac{M}{KO}$$

जहाँ,

M = मुद्रा की माँग

K = व्यावहारिक स्थिरांक (आय का वह भाग जो नकद रूप में रखा जा सकता है। यह आय का 1/5, 1/10 अथवा 1/20) कुछ भी हो सकता है।

उदाहरण द्वारा स्पष्टीकरण—

मान लिया $K = 1/4$, $O = 1000$ इकाइयाँ तथा $m = ₹\ 2000$ तो उत्पादन की एक इकाई का मूल्य—

$$P = \frac{M}{KO} = \frac{2000}{\frac{1}{4} \times 1000} = \frac{2000}{250} = ₹\ 8$$

मार्शल के अनुसार यदि मुद्रा की पूर्ति स्थिर रहने पर भी यदि K में परिवर्तन हो जाए तो कीमत स्तर में महत्त्वपूर्ण परिवर्तन हो जाएगा। मान लिया k, 1/4 से बढ़कर 1/2 हो जाता है, तब मूल्य—

$$P = \frac{M}{KO} = \frac{2000}{\frac{1}{2} \times 1000} = \frac{2000}{500} = ₹\ 4$$

अत: यदि नकद रखने की इच्छा बढ़ जाती है तब मूल्य स्तर कम हो जाएगा।

पीगू का समीकरण (Pigou's Equations)—

मार्शल के नकद शेष समीकरण को संशोधित करके पीगू ने नया समीकरण प्रस्तुत किया। इसमें मौद्रिक आय के स्थान पर वास्तविक आय को वरीयता प्रदान की गई। समीकरण इस प्रकार है—

$$P = \frac{KR}{M}$$

यहाँ,

P = मुद्रा का मूल्य

K = वास्तविक आय का वह भाग जो नकद के रूप में माँगा जाता है।

TOUCH 'n PASS

R = कुल वास्तविक आय (वस्तुओं तथा सेवाओं के रूप में)

M = मुद्रा की कुल मात्रा

चूँकि लोग अपनी आय का नकद अंश केवल विधि ग्राह्य मुद्रा (करेंसी) के रूप में नहीं रखते बल्कि बैंक जमा के रूप में भी संग्रह करते हैं।

इसलिए पीगू ने अपने समीकरण में संशोधन कर दिया।

1. मुद्रा की एक इकाई का मूल्य—

$$P = \frac{KR}{M}[c + h(1-c)]$$

2. वस्तु की इकाई का मूल्य—

$$M = \frac{KR}{P}[c + h(1-c)]$$

यहाँ c जनता के पास नकदी,

c = बैंक जमा

$1-c$ = बैंक जमा का वह भाग जो बैंक अपने पास नकद रखते हैं। जिसे नकद रक्षित अनुपात कहते हैं।

उदाहरण द्वारा स्पष्टीकरण—

मान लिया

$K = \frac{1}{10}, c = \frac{1}{3}, h = \frac{1}{10}, R = 4000$ क्विंटन चावल

$$P = \frac{K.R.}{M}[c + h(1-c)]$$

$$= \frac{\frac{1}{10} \times 4000}{2000}\left[\frac{1}{3} + \frac{1}{10}\left(1 - \frac{1}{3}\right)\right] = \frac{\frac{1}{10} \times 4000}{2000}\left[\frac{1}{3} + \frac{1}{10}\left(1 - \frac{1}{3}\right)\right]$$

$$= \frac{400}{2000}\left[\frac{1}{3} + \frac{1}{10} \times \frac{2}{3}\right] = \frac{1}{5}\left[\frac{1}{3} + \frac{1}{15}\right] = \frac{1}{5} \times \frac{2}{5}$$

$P = \frac{2}{25}$ क्विंटन चाल

राबर्टसन का समीकरण (Robertson's Equations)—

कैम्ब्रिज समुदाय में राबर्टसन का समीकरण सर्वश्रेष्ठ माना जाता है। राबर्टसन ने निम्नलिखित समीकरण प्रदान किया—

$$M = PKT$$

जहाँ, M = मुद्रा की मात्रा

P = सामान्य मूल्य स्तर

K = मुद्रा की वह मात्रा जो निश्चित समय में T के एक अंश के लिए माँगी जाती है।

T = एक निश्चित समय पर वस्तुओं तथा सेवाओं का कुल व्यापार

अत: $P = \frac{M}{KT}$ या $\frac{1}{KT} \times M$

अत: K और T स्थिर रहें तो P तथा M में आनुपातिक सम्बन्ध पाया जाएगा। राबर्टसन ने आनुपातिकता के नियम में अपना विश्वास प्रदर्शित किया।

कींस का समीकरण (Keynes' Equations)—

कींस ने अपनी पुस्तक 'A tract on Monetary Reforms' में यह समीकरण दिया। उनके अनुसार लोग केवल उपभोक्ता वस्तुओं को खरीदने के लिए मुद्रा रखते हैं।

$$n = p(K + rK^1)$$

TOUCH 'n' PASS

जहाँ, N = समाज में चलन में विद्यमान विधि ग्राह्य मुद्रा

P = उपभोग इकाई की वस्तु का मूल्य

K = उपभोग की उन इकाइयों की मात्रा जिन्हें लोग अपने पास नकद रूप में संचित करते हैं।

R = बैंकों के पास नकद धन

K^1 = वस्तुओं व सेवाओं की वह मात्रा जिसे पाने के लिए लोग धन को नकद जमा के रूप में रखते हैं।

इस स्थिति में मुद्रा की एक इकाई का मूल्य—

$$P = \frac{n}{K + rK^1}$$

अत: स्पष्ट है कि K, r, K^1 के स्थिर रहने पर n में परिवर्तन से P में परिवर्तन होगा। जनता तथा बैंकों द्वारा अधिक नकदी रखने पर K का मूल्य कम तथा K^1 का मूल्य अधिक होता है।

कैम्ब्रिज समीकरण की आलोचना—

1. यह सिद्धान्त प्रावैगिक संसार की जटिल आर्थिक समस्याओं की व्याख्या करने में असमर्थ है।
2. सट्टा उद्देश्य के लिए माँगी जाने वाली मुद्रा की उपेक्षा करता है, अत: अपूर्ण सिद्धान्त है।
3. अन्य समीकरणों की भाँति इसमें भी K तथा T को स्थिर मान लिया गया जो कि अनुचित है।
4. जमा की विभिन्न श्रेणियों (चालू, बचत तथा स्थायी) के प्रभाव की उपेक्षा की गई है।
5. डॉन पाटिंकिन के अनुसार कैम्ब्रिज समीकरण ब्याज दर की भूमिका की उपेक्षा करता है, जो अनुचित है।
6. यह सिद्धान्त नकदी की माँग पर केवल वर्तमान आय के प्रभाव की व्याख्या करता है जबकि अन्य तत्त्व; जैसे—कीमत स्तर, मौद्रिक आदतें तथा व्यावसायिक ढाँचा आदि का भी प्रभाव पड़ता है।
7. इस सिद्धान्त के अनुसार मुद्रा के मूल्य में परिवर्तन उसी अनुपात में होता है, जिस अनुपात में मुद्रा की मात्रा में परिवर्तन होता है। अर्थात् मुद्रा की माँग की लोच इकाई के बराबर होती है परन्तु अर्थव्यवस्था में निरन्तर होने वाले परिवर्तनों के कारण माँग की लोच इकाई के बराबर नहीं रहने पाती है।

प्र.9. कीन्सोत्तर अर्थशास्त्र पर विस्तृत टिप्पणी कीजिए।

Write a detailed note on post-keynes Economics.

उत्तर

कीन्सोत्तर अर्थशास्त्र
(Post-Keynes Economics)

कीन्सोत्तर अर्थशास्त्र का प्रमुख उद्देश्य वास्तविक आर्थिक समस्याओं को आर्थिक विश्लेषण से सम्बद्ध करते हुए कैसे अर्थव्यवस्था कार्य करती है, की स्पष्ट समझ उपलब्ध कराना है। इसका प्रमुख उद्देश्य 'सामान्य सिद्धान्त' को सामान्यीकृत (Eichner and Kregel, 1975, Robinson, 1956) करने हेतु अपूर्ण कीन्सीयन क्रांति को पूर्ण करना है। जैसा कि हम जानते हैं कि प्रभावपूर्ण माँग का सिद्धान्त कीन्स के 'सामान्य सिद्धान्त' का आधार है उसी तरह कीन्सोत्तर अर्थशास्त्र का आधार भी प्रभावपूर्ण माँग का सिद्धान्त है। कीन्सोत्तर अर्थशास्त्र में प्रभावपूर्ण माँग से आशय संसाधनों की दुर्लभता के बजाय माँग की दुर्लभता से है जिसका सामना आधुनिक अर्थशास्त्र को करना पड़ता है, जिसमें उत्पादन सामान्तया प्रभावपूर्ण माँग द्वारा सीमित होता है यद्यपि यह स्वीकार किया जाता है कि वर्तमान पूँजीवादी अर्थव्यवस्था में आपूर्ति में विभिन्न प्रकार के अवरोध मौजूद हैं। नव-प्रतिष्ठित मुख्यधारा (Neo-classical main stream economics) के अर्थशास्त्र की स्पष्ट एवं अस्पष्ट आलोचना इसका एक महत्त्वपूर्ण पक्ष है।

वे आर्थिक विचार जो कीन्सोत्तर के रूप में वर्गीकृत किए जाते हैं उनका एक लम्बा इतिहास रहा है और यह जितना कीन्स तथा केलेकी की विचारधाराओं को प्रदर्शित करता है उतना ही प्रतिष्ठित अर्थशास्त्री मार्क्स की विचारधारा को भी। कीन्सोत्तर अर्थशास्त्र की तीन अलग परम्पराओं को देखा जा सकता है।

प्रथम परम्परा मार्शल से आरम्भ होती है और इसकी जड़े कीन्स के Treatise on Money में सन्निहित है। यह अनिश्चितता पर जोर देती है। डेविडसन (1978), मिन्सकी (1975), कान्ह (1978), डेविडसन (1992), विनट्राब (1958), टार्सिस (1939, 1947), कीन्स (1936) से सम्बद्ध है। इस परम्परा में समग्र माँग को नियन्त्रित करने की आर्थिक नीतियों में साथ-ही-साथ, आय नीतियाँ इस दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है कि मुद्रा मजदूरी का कीमतों के निर्धारण में महत्त्व है।

TOUCH 'n' PASS

दूसरी परम्परा जॉन राबिन्सन एवं उनके अनुयायियों विशेष रूप से केलेकियन के योगदान को स्वीकार करती है। यह निवेश माँग को प्रभावपूर्ण होने के साथ ही प्रभावपूर्ण माँग की असफलता पर जोर देती है। समग्र माँग का नियन्त्रण तथा संगठन जिसमें निवेश पर जोर दिया जाता है इस प्रत्यागम का महत्त्वपूर्ण नीति निदान है।

तीसरी वेबलेन की संस्थागत परम्परा है। यह प्रक्रिया एवं उद्‌भव आधारित है और यह आर्थिक व्यवस्था में प्रावैगिक एवं शक्ति/वर्गीय ढाँचे पर जोर देती है। ये संस्थागत तथा संगठनात्मक ढाँचे मूलभूत कार्यविधि को बताते हैं जहाँ संसाधनों का आवंटन होता है। आर्थिक व्यवहार के निर्धारण में संस्थाओं और सभ्यताओं की महत्त्वपूर्ण भूमिका कीन्सोत्तर विशेषता है।

यद्यपि इन तीनों परम्पराओं में विभिन्नताएँ हैं, साथ-ही-साथ कुछ निश्चित विशेषताएँ हैं जो इन सबमें है और आर्थिक विश्लेषण की वास्तविक आर्थिक समस्याओं से संगतता एवं संसार को सामान्य पुरुषों एवं महिलाओं के रहने के लिए एक अच्छा स्थान बनाने एवं अधिक न्याययुक्त एवं समतामूलक समाज को बनाने पर जोर देती है। (To make the world a better place for ordinary men and women to produce a more just and equitable society, Harcourt-1992) वर्ग, शक्ति तथा आय एवं सम्पत्ति के वितरण के मुद्‌दे इसके विश्लेषण के केन्द्र में हैं।

वास्तव में कीन्सोत्तर अर्थशास्त्र वास्तविक आर्थिक समस्याओं द्वारा समयोपरि में सृजन करके, उत्पादन करके, वितरण करके एवं अवशेष सामाजिक अतिरेक का उपयोग करके उत्पादन के विस्तार के अध्ययन से सम्बद्ध हैं विस्तार पथ असमान होते हैं और आर्थिक व्यवस्थाओं की प्रकृति के अनुसार अप्रत्याशित तरीके से परिवर्तित हो जाते हैं। जिससे आर्थिक प्रक्रियाएँ अस्थिर हो जाती हैं और चक्रीय एवं संचयी कारणों के रूप में प्रतिबिम्बित होती है। कीन्सोत्तर अर्थशास्त्र विश्लेषण 'साम्यहीन अर्थशास्त्र' से जुड़ा हुआ है। कीन्सोत्तर विश्लेषण प्रविधि 'विवेचन वास्तविकता' है। इसकी तर्क या निर्णय प्रविधि न तो आगमन है और न ही निगमन है। वरन् Retroduction है।

कीन्सोत्तर अर्थशास्त्र एक आर्थिक सम्प्रदाय है जिसकी जड़े जॉन मेनार्ड कीन्स के सामान्य सिद्धान्त में हैं। यद्यपि इसमें उत्तरवर्ती एवं महत्त्वपूर्ण विकास बहुत सीमा तक माइकेल केलेकी, जॉन राबिन्सन, निकोलस काल्डर तथा पाल डेविडसन द्वारा प्रभावित हुआ। कीन्स के जीवनी पर लॉर्ड स्कीडेल्सकी ने लिखा है कि कीन्सोत्तर सम्प्रदाय कीन्स के कार्यों में सन्निहित उद्‌देश्य भाव से निकट रूप से, विशेष रूप से प्रचलित मौद्रिक सिद्धान्त और मुद्रा की तटस्थता को अस्वीकार करने से जुड़ा हुआ है।

कीन्सोत्तर अर्थशास्त्रियों का मानना है कि दो अन्य प्रमुख कीन्सियन सम्प्रदायों—नव-कीन्सवादी जो 1950 तथा 1960 के दशकों में प्रचलित, प्रभावपूर्ण तथा स्वीकार्य था, जो नव-प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों के वैचारिक धागों से बँधकर 1980 के दशक से मुख्यधारा के समष्टि अर्थशास्त्र के रूप में प्रभावी बना हुआ है। कीन्सोत्तर अर्थशास्त्र को कीन्स के विचारों एवं अन्तर्दृष्टि के प्रकाश में आर्थिक सिद्धान्तों के पुनर्निर्माण के रूप में देखा जा सकता है। ऐसा होते हुए भी शुरुआती दिनों में, 1940 के दशक के उत्तरार्द्ध में नव-कीन्सवादियों जैसे जॉन राबिन्सन ने स्वयं को कीन्स से दूर करने का प्रयास किया। कुछ कीन्सोत्तर अर्थशास्त्रियों ने कीन्स से भी ज्यादा मजदूर स्नेही नीतियों एवं पुनर्वितरण पर प्रगतिगामी विचार व्यक्त किए।

प्रभावपूर्ण माँग का सिद्धान्त कीन्सोत्तर अर्थशास्त्र की एक विशेषता है और माँग दीर्घकाल एवं अल्पकाल दोनों में महत्त्वपूर्ण स्थान रखती है। जिससे एक प्रतियोगी बाजार अर्थव्यवस्था में पूर्ण रोजगार की प्राकृतिक या स्वचालित प्रवृत्ति नहीं पायी जाती हैं कीन्सोत्तर अर्थशास्त्र का सकारात्मक योगदान यह है कि यह केवल समग्र रोजगार के सिद्धान्त तक ही सीमित नहीं रहता है वरन् उससे आगे बढ़कर आय वितरण, वृद्धि, व्यापार और विकास जिसमें माँग महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती है, को भी समाहित करता है जबकि नव-प्रतिष्ठित अर्थशास्त्र में ये सब केवल आपूर्ति पक्ष द्वारा ही निर्धारित होते हैं। कीन्सोत्तर अर्थशास्त्री प्रथम है जिन्होंने इस मुद्‌दे को जोरदार तरीके से उठाया कि मुद्रा की आपूर्ति, बैंक साख की माँग का प्रत्युत्तर है। जिससे केन्द्रीय बैंक एक समय में या तो मुद्रा की मात्रा को या ब्याज दर को, लेकिन दोनों का एक साथ चुनाव नहीं कर सकती है। इस विचार को मौद्रिक नीतियों में तेजी से सम्मिलित किया गया, जिसमें मुद्रा की मात्रा के बजाय ब्याज दर को लक्षित किया गया। वित्त के क्षेत्र में हिम्न मिन्सकी ने वित्तीय अस्थिरता/भंगुरता के आधार पर वित्तीय संकट का सिद्धान्त प्रस्तुत किया। जिसने वर्तमान समय में लोगों का ध्यान आकर्षित किया है।

प्र.10. क्रय-विक्रय के उद्‌देश्य से माँग का विश्लेषण कीजिए तथा एहतियाती मुद्रा के माँग सिद्धान्त की व्याख्या कीजिए।

Analyse the demand for the purpose of buying and selling and examine the Precautionary Demand Theory of Money.

उत्तर

क्रय-विक्रय के उद्‌देश्य से माँग का विश्लेषण
(Analysis of Demand for the Purpose of Buying and Selling)

बामोल एक ऐसे व्यक्ति के क्रय-विक्रय के उद्‌देश्य से मुद्रा को माँग का विश्लेषण करते हैं जिसे प्रत्येक माह (निश्चित अन्तराल पर) आय प्राप्त होती है तथा उसे वह एक स्थिर दर से खर्च करता है। रेखाचित्र 1 द्वारा प्रदर्शित किया गया है—

माना व्यक्ति को प्रत्येक माह के प्रथम दिन ₹ 12000 वेतन चेक प्राप्त होता है तथा प्रथम दिन ही नकद करा लेता है तथा उसे धीरे-धीरे सम्पूर्ण माह ₹ 400 प्रतिदिन व्यय करता है। यह सरलतापूर्वक देखा जा सकता है कि माह में उसका औसत मुद्रा संचय 12000/2 = ₹ 6000 होगा। (एक माह की 15वीं तिथि के पूर्व उसके पास ₹ 6000 से अधिक तथा 15वीं तिथि के बाद ₹ 6000 से) जो ₹ 6000 के समान औसत मुद्रा संचय बिन्दु-रेखा द्वारा प्रदर्शित है। अत: प्रश्न यह उठता है कि क्या यह मुद्रा के प्रबन्ध करने की अनुकूलतम रणनीति है। सरल रूप में उत्तर नकारात्मक है। इसका कारण यह है कि व्यक्ति को उस ब्याज की हानि हो रही है जो वह अर्जित करने वाली बचत-जमाओं में जमा किए होता है। वह अपने मौद्रिक शेषों का इस प्रकार प्रबन्ध कर सकता है जिससे कि कुछ ब्याज आय भी प्राप्त हो सकें। माना कि माह के प्रथम दिन अपना सम्पूर्ण वेतन निकालने के स्थान पर वह केवल आधा वेतन निकालता है (अर्थात् ₹ 6000 नकद निकाल लेता है तथा शेष ₹ 6000 उस बचत खाते में जमा कर देता है) जिससे उसे 5 प्रतिशत ब्याज प्राप्त होता है तथा उसका व्यय प्रतिदिन ₹ 400 स्थिर बना रहता है। इसे रेखाचित्र 2 द्वारा प्रदर्शित किया गया है—

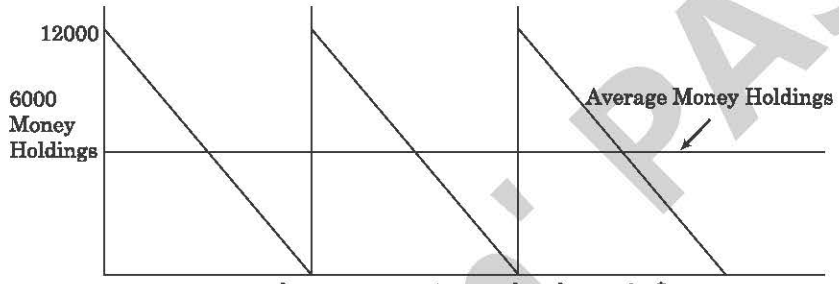

नकद भुगतान के प्रवाह तथा क्रय-विक्रय उद्देश्य से मुद्रा की माँग

रेखाचित्र-1

यह देखा जा सकता है कि प्रत्येक माह के 15वें दिन के अन्त में उसका ₹ 6000 का मुद्रा संचय कम होते-होते शून्य हो जाएगा। अब वह प्रत्येक माह की 16वीं तिथि की सुबह ₹ 6000 निकाल सकता है और उसके बाद उसे ₹ 400 प्रतिदिन के हिसाब से 15 दिनों तक खर्च करता है। यह कोषों को प्रबंध करने की श्रेष्ठ विधि है, क्योंकि वह प्रत्येक माह 15 दिन ₹ 6000 पर ब्याज अर्जित करेगा। इस मौद्रिक प्रबंध योजना में औसत मुद्रा संचय 6000/2 = ₹ 3000 होता है।

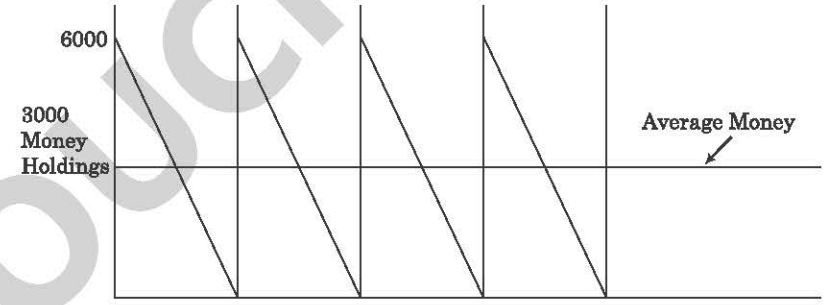

क्रय-विक्रय के उद्देश्य से मुद्रा की माँग तथा नकद भुगतान प्रवाह

रेखाचित्र-2

बामोल ने यह तर्क दिया है कि मुद्रा संचय की अनुकूलतम धनराशि परित्यान की गयी ब्याज-आय तथा दलाली शुल्क की लागत को न्यूनतम करके निर्धारित की जाती है। बामोल ने इस बात की स्पष्ट व्याख्या इस प्रकार की है—माना कि वेतन चेक की राशि को C व्यक्ति के बैंक जाने पर प्रत्येक बार उसके द्वारा निकाली गई औसत धनराशि को ब् नकद निकालने के लिए बैंक तक जाने की बारम्बारता को ज् बैंक तक प्रत्येक बार उसके आवागमन में उसके द्वारा सहन की जाने वाली शुल्क को b से प्रदर्शित किया जाता है। जिसे $C = \sqrt{2}/r$

इसका अभिप्राय यह है कि लागत को न्यूनतम करने वाली नकद निकालने की औसत धनराशि दलाली शुल्क के दोगुने तथा व्यक्ति की आय के गुणनफल को ब्याज दर से विभाजित करने से प्राप्त मूल्य का वर्गमूल होता है। इन मॉडलों के विस्तार का सारांश पाया जा सकता है Barro और Fischer 1976 और Cuthbertson और Barlow 1991, Roley 1985।

TOUCH 'n' PASS

एहतियाती मुद्रा का माँग सिद्धान्त
(Precautionary Demand Theory of Money)

मुद्रा की एहतियाती माँग उत्पन्न होती है क्योंकि आय के बारे में अनिश्चित होता है जो उसे प्राप्त होनी चाहिए अथवा जो मुद्रा उसके पास है "बामोल"। इस तरह अधिक मुद्रा जो एक व्यक्ति रखता है तो उसे मुद्रा पर लागत भी उठानी पड़ती है लेकिन काई व्यक्ति अधिकतम मुद्रा अपने पास रखता है तो उसे अधिकतम ब्याज की हानि सहन करनी पड़ती है। इसलिए व्यक्ति एहतियाती मुद्रा अपने पास इस तरह रखना चाहता है कि उसे ब्याज की हानि भी न हो और नकद मुद्रा भी पर्याप्त मात्रा में रख सकें। "Dornbusch and fischer"।

एहतियाती मुद्रा का सिद्धान्त का विक्रय भण्डार सिद्धान्त के सुधार के रूप में हुआ है जो यह कहता है कि आय एवं व्यय में एक निश्तिता होती है। यद्यपि ऐसा माना जाता है कि आय एवं व्यय के वितरण की जो सम्भावना है वह ज्ञात होती है। उदाहरण के लिए "Miller nad Orr" ने "आय एवं वितरण के प्रवाह को अनियमित मानते हुए भण्डार सिद्धान्त का एक ढाँचा तैयार किया।" Patinkin के अनुसार नियमित अन्तराल पर एक आर्थिक इकाई दी गई राशि के कुल व्यय का सामना करती है लेकिन इस समयावधि में नकद के आवागमन का समय अनिश्चित होता है।

Barro and Fischer, 1976 and Cuthdertron and Barlow 1991 इन लोगों ने विभिन्न सिद्धान्तों के अध्ययन से एहतियाती मुद्रा के माँग सिद्धान्त का सार प्रस्तुत किया। Akerlof and Milbourne 1980, Milbrurne 1983 and Buckholtz and wason 1953, इन लोगों ने एहतियाती मुद्रा के माँग सिद्धान्त का एक नवीन मॉडल प्रस्तुत किया।

मुद्रा के भण्डार के महत्त्व की वजह से मुद्रा के परिसम्पत्ति मानते हुए कई सारे सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया गया। परिसम्पत्ति या पोर्टफोलियो प्रारूप वाले स्कूल से सम्बन्धित है जो मुद्रा की माँग को पोर्टफोलियों के चुनाव की समस्या के सन्दर्भ में देखता है। परिसम्पत्तियों को पोर्टफोलियों को धन के वितरण के समस्या के रूप में मुद्रा की माँग का विस्तृत वर्णन किया गया है। इस सिद्धान्त में इस बात पर बल दिया गया है परिसम्पत्ति के जोखिम और अनुमानित प्रतिफल पर। आर्थिक उपज, प्रतिपादन तरलता और सुरक्षा के अलावा लेन-देन को आसान बनाने के रूप में ऐसी सेवाओं में शामिल है। ये प्रारूप ब्याज दरों और वास्तविक मुद्रा के माँग के बीच के सम्बन्ध को प्रदर्शित करने के लिए विकसित किया गया है। वे मुद्रा और मुद्रा की माँग की निर्धारण करने में महत्त्वपूर्ण कारक के रूप में तरलता के महत्त्व को दर्शाते हैं।

केन्ज के मूल तरलता वरीयता अनुसूची के वैकल्पिक व्याख्या के रूप में भविष्य में ब्याज दरों में अन्तर को प्रदर्शित करता है, टोबिन ने बताया कि व्यक्तियों के जोखिम से बचने के व्यवहार का सिद्धान्त तरलता वरीयता और मुद्रा के माँग तथा ब्याज के बीच एक ऋणात्मक सम्बन्ध को प्रदर्शित करता है। दरअसल यह सिद्धान्त जोखिम से बचने के पोर्टफोलियों प्रबंध के सरल सिद्धान्त पर आधारित है। इस ढाँचे में विभिन्न परिसम्पत्तियों का जोखिम/लाभ व्यक्ति के स्वभाव द्वारा निर्धारित इष्टतम पोर्टफोलियों संरचना और जो उपयोगिता के अनुरूप उपलब्ध अवसरों को स्वीकार करने से प्राप्त भी है।

टोबिन (1958) का मानना है कि एक निवेशकर्त्ता के समक्ष यह समस्या होती है कि वह अपने वित्तीय परिसम्पत्तियों के पोर्टफोलियों में कितना अनुपात मुद्रा के रूप में तथा कितना ब्याज वाले ऋणपत्रों के रूप में रखें। व्यक्तियों के पोर्टफोलियों में शेयर जैसे अधिक जोखिमपूर्ण परिसम्पत्तियाँ भी हो सकती हैं। इस सम्बन्ध में टोबिन ने तर्क दिया कि एक व्यक्ति का विवेकपूर्ण व्यवहार यह होता है कि वे अपनी परिसम्पत्तियों का वह पोर्टफोलियों रखें जिसमें ऋणपत्र तथा मुद्रा दोनों का ही एक सन्तुलित संयोग हो। यदि परिसम्पत्ति धारक अपनी पोर्टफोलियों में ऋणपत्रों जैसी जोखिमपूर्ण परिसम्पत्तियों को अपेक्षाकृत अधिक अनुपात में रखता है तो उसे अधिक औसत प्रतिफल भी प्राप्त होगा किन्तु वह अपेक्षाकृत अधिक जोखिम भी सहन करेगा। टोबिन का विचार है कि एक जोखिम से दूर रहने वाला व्यक्ति उस पोर्टफोलियों का चुनाव नहीं करेगा जिसमें सभी जोखिमपूर्ण ऋणपत्र हो या उसका अधिक अनुपात हो।

प्र.11. मुद्रा की माँग (तरलता अधिमान) पर टिप्पणी लिखिए।
Write a note on Demand for Money (Liquidity Preference).

उत्तर

मुद्रा की माँग (तरलता-अधिमान)
(Demand for Money (Liquidity Preference)

प्रो० कीन्स के अनुसार मुद्रा की माँग का अर्थ है मुद्रा को नकद (तरल) रूप में रखने की माँग। कीन्स ने मुद्रा की माँग को तरलता-अधिमान कहा है। तरलता से आशय धन को नकद या ऐसे रूप में रखने से है जिसे व्यक्ति तुरन्त नकद के रूप में

परिवर्तित करा सके। कीन्स ने बताया है कि प्रत्येक व्यक्ति को आय मिलने के पश्चात् अपनी आय के सम्बन्ध में दो निर्णय लेने पड़ते हैं कि वह आय का कितना भाग व्यय करे तथा कितना भाग भविष्य के लिए बचत करके रखे। इसके साथ ही उसे यह भी निर्णय लेना पड़ता है कि वह भविष्य के लिए रखे जाने वाली बजत को किस रूप में रखे। एक तरीका यह है कि वह अपनी बचत को नकद रूप में रखे या दूसरा तरीका यह है कि वह इस बचत से अन्य व्यक्ति को उधार दे दें। उधार देने पर उसे तरलता का त्याग करना पड़ेगा। सामान्यत: सभी व्यक्ति अपने धन को नकद अर्थात् तरल रूप में रखना पसन्द करते हैं। इसलिए वह तब तक तरलता का त्याग नहीं करेंगे जब तक उन्हें ब्याज के रूप में कोई पुरस्कार न दिया जाए। इस प्रकार, ब्याज तरलता के त्याग का पुरस्कार है।

तरलता-अधिमान के कारण—प्रो० कीन्स के अनुसार लोग मुद्रा को सदैव नकद रूप में रखना चाहते हैं। इसके निम्नलिखित कारण हैं—

1. **लेन-देन सम्बन्धी उद्देश्य**—लोगों को आय एक निश्चित अवधि में मिलती है जबकि उनको भुगतान की आवश्यकता निरन्तर रहती है। अत: अपने प्रतिदिन के लेन-देन सम्बन्धी कार्य करने के लिए लोगों को अपनी आय का कुछ अंश नकद रूप में रखना होता है। लेन-देन सम्बन्धी उद्देश्य के दो पक्ष हैं—
   (i) **उपभोक्ता की दृष्टि से आय पक्ष**—एक उपभोक्ता अपने प्रतिदिन के कार्य सम्पादित करने हेतु कितनी मात्रा में नकद धन रखेगा, यह उसकी आय के आकार और आय प्राप्ति की समयावधि पर निर्भर करेगा। इसे आय पक्ष कहा जाता है।
   (ii) **व्यवसायियों या साहसियों की दृष्टि से व्यवसायिक पक्ष**—एक उत्पादक को कच्चा माल खरीदने, मजदूरी देने आदि कार्यों हेतु कितनी मात्रा में नकद धन रखना होगा, यह उसके टर्नओवर पर निर्भर करेगा। इसे व्यवसाय पक्ष कहा जाता है।
2. **दूरदर्शिता उद्देश्य**—प्रत्येक व्यक्ति को बीमारी, दुर्घटना आदि आकस्मिकताओं, अप्रत्याशित आवश्यकताओं अथवा संकटों का सामना करने के लिए कुछ मुद्रा नकद या तरल रूप में रखनी पड़ती है। इसे दूरदर्शिता उद्देश्य कहा जाता है। इसमें कितनी मात्रा में मुद्रा नकद रूप में रखी जाएगी, यह व्यक्ति के आय-स्तर पर निर्भर करता है। सामान्यत: यह ब्याज की दर से प्रभावित नहीं होती।
3. **सट्टा उद्देश्य**—अनेक व्यक्ति (विशेषकर सट्टेबाज) भविष्य में बाजार में होने वाले ब्याज की दर में परिवर्तनों से लाभ उठाने के लिए भी धन को नकद रूप में अपने पास रखना चाहते हैं। जो व्यक्ति वर्तमान ब्याज दर को नीचा समझते हैं, वे अधिक मात्रा में धन को नकद रूप में रखना चाहेंगे जिससे भविष्य में ब्याज दर बढ़ने पर वे नकद उधार देकर अधिक लाभ कमा सकें अर्थात् ब्याज की दर ऊँची होने की सम्भावना होगी तो नकदी की माँग बढ़ जाएगी। परन्तु जो व्यक्ति वर्तमान ब्याज दर को ऊँचा समझते हैं, वे कम मात्रा में धन को नकद रूप में रखेंगे, क्योंकि उन्हें भविष्य में ब्याज दर कम हो जाने पर उधार देने से कम लाभ मिलने की आशा होगी अर्थात् भविष्य में ब्याज की दर में कमी की सम्भावना होने पर नकदी की माँग कम हो जाएगी। इस प्रकार, सट्टा उद्देश्य के अन्तर्गत नकदी की माँग और ब्याज दर में विपरीत सम्बन्ध होता है तथा सट्टा उद्देश्य से की गई नकदी की माँग ब्याज की वर्तमान दर की अपेक्षा भविष्य में सम्भावित दर से अधिक प्रभावित होती है।

कीन्स के मत में, उपरोक्त में से लेन-देन सम्बन्धी उद्देश्य एवं दूरदर्शिता उद्देश्य दोनों पर्याप्त रूप से स्थायी रहते हैं और प्रमुखत: आय-स्तर के अनुसार परिवर्तित होते हैं तथा ब्याज दर का इन पर प्रभाव नहीं पड़ता है। परन्तु, सट्टा उद्देश्य से हुई नकदी की माँग मुख्यत: ब्याज दर पर ही निर्भर करती है।

लेन-देन सम्बन्धी उद्देश्य एवं दूरदर्शिता उद्देश्य के लिए मुद्रा की मात्रा (M_1) की माँग (L_1) आय (Y) का फलन है। अर्थात्

$$M_1 = L_1(Y)$$

इसका अर्थ है कि L_1 आय पर निर्भर करता है। आय में परिवर्तन होने पर L_1 भी परिवर्तित हो जाता है।

दूसरी ओर, सट्टा उद्देश्य के लिए मुद्रा की मात्रा (M_2) की माँग (L_2) ब्याज दर (r) का फलन है। अर्थात्

$$M_2 = L_2(r)$$

इसका अर्थ है कि L_2 ब्याज दर पर निर्भर करता है। ब्याज दर में परिवर्तन होने पर L_2 भी परिवर्तित हो जाता है।

TOUCH 'n' PASS

इस प्रकार, मुद्रा की कुल मात्रा (M) की नकदी के रूप में माँग (L) ब्याज दर तथा आय-स्तर दोनों पर निर्भर करती है अर्थात्

$$M = L(rY)$$

आय और नकदी की माँग में धनात्मक सह-सम्बन्ध होता है अर्थात् आय बढ़ने पर नकदी की माँग भी बढ़ जाती हैं। ब्याज दर और नकदी की माँग में ऋणात्मक सह-सम्बन्ध होता है अर्थात् ब्याज दर बढ़ने पर नकदी की माँग कम हो जाती है।

चित्र संख्या 1 में मुद्रा की माँग एवं ब्याज की दर में विपरीत सम्बन्ध को दर्शाया गया है। ब्याज की दर कम होने पर नकदी की माँग (तरलता-अधिमान) रेखा नीचे की ओर गिरती जाती है। इसका अर्थ है कि नकदी की माँग बढ़ रही है। चित्र से एक और विशेषता का पता चलता है कि तरलता-अधिमान रेखा का अन्तिम भाग X अक्ष के समानान्तर होने की प्रवृत्ति रखता है, जिससे प्रदर्शित होता है कि ब्याज की न्यूनतम दर पर लोग समस्त मुद्रा को नकद (तरल) रूप में रखेंगे और उधार नहीं देंगे। ऐसी स्थिति को कीन्स ने तरलता जाल की संज्ञा दी है। ऐसी स्थिति में ब्याज की दर कम होने पर उधार देने में जोखिम अधिक होता है।

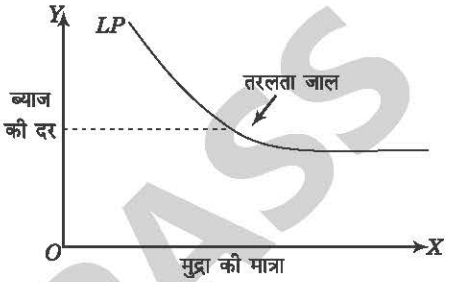

चित्र 1

ब्याज दर का निर्धारण (Determination of Rate of Interest)

ब्याज की दर का निर्धारण उस बिन्दु पर होता है जहाँ पर नकद-मुद्रा की माँग रेखा अर्थात् तरलता-अधिमान (LP) एवं मुद्रा की पूर्ति रेखा (MM) एक-दूसरे को काटती है। कीन्स ने मुद्रा की पूर्ति रेखा को स्थिर मान लिया है। मुद्रा की पूर्ति स्थिर रहने पर नकद-मुद्रा की माँग अर्थात् तरलता-अधिमान बढ़ जाने पर ब्याज दर में वृद्धि हो जाती है और घट जाने पर ब्याज की दर में कमी हो जाती है। इस प्रकार, तरलता-अधिमान (LP) वह परिवर्तनशील तत्त्व है जिस पर ब्याज की दर निर्भर करती है।

चित्र संख्या 2 में OX अक्ष पर मुद्रा की मात्रा तथा OY अक्ष पर ब्याज की दर को दर्शाया गया है। नकद-मुद्रा की माँग अथवा तरलता-अधिमान को LP वक्र से व्यक्त किया गया है जो विभिन्न ब्याज दरों पर नकद-मुद्रा की माँग को बताती है। यह नीचे की ओर गिरती हुई है, क्योंकि ब्याज की दर और सट्टा उद्देश्य के लिए नकदी की माँग (L_2) में विपरीत सम्बन्ध होता है। L_1 इस रेखा के ढाल को प्रभावित नहीं करता है क्योंकि यह आय के स्तर पर निर्भर करता है। मुद्रा की पूर्ति को MM रेखा द्वारा व्यक्त किया गया है। मुद्रा की पूर्ति स्थिर होने के कारण MM एक खड़ी रेखा के रूप में है।

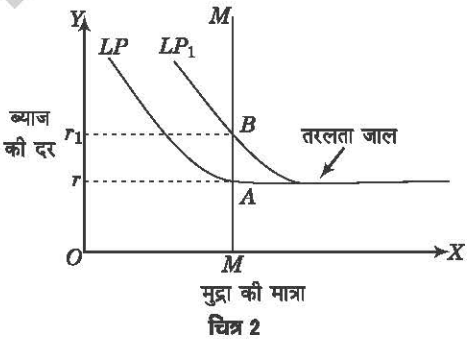

चित्र 2

चित्र में मुद्रा की पूर्ति OM है। बिन्दु पर नकद-मुद्रा की माँग अथवा तरलता-अधिमान (LP) एवं पूर्ति (MM) एक दूसरे को काटते हैं, अत: ब्याज दर Or के बराबर निर्धारित होती है। अब यदि आय के स्तर में वृद्धि हो जाए तो इससे तरलता-अधिमान में भी वृद्धि हो जाएगी। इस प्रकार, तरलता-अधिमान का नया वक्र दाएँ ओर खिसककर LP_1 होगा। मुद्रा की मात्रा के OM पर स्थिर रहने पर LP_1 वक्र MM रेखा को बिन्दु B पर काटता है। इसके कारण ब्याज दर बढ़कर Or_1 हो जाती है।

एक ऐसी स्थिति जिसमें ब्याज की दर बहुत नीची हो जाए (उदाहरण के लिए, चित्र 2 के अनुसार यदि ब्याज दर Or पर न्यूनतम हो जाए)। तो लोगों को उधार देने में अधिक जोखिम रहता है। अत: वे समस्त मुद्रा को नकद रूप में अपने पास रखना चाहिए। इस कारण से LP रेखा का अन्तिम भाग X अक्ष के समानान्तर रहेगा जिससे प्रदर्शित होता है कि ब्याज की न्यूनतम दर पर लोग समस्त मुद्रा को नकद (तरल) रूप में रखेंगे और उधार बन्द की नीति अपनाएँगे। इस स्थिति को कीन्स ने तरलता-जाल की संज्ञा दी है। तरलता-अधिमान की इस विशेषता के कारण ब्याज की दर कभी शून्य नहीं हो सकती है। ब्याज की दर के न्यूनतम बिन्दु पर नकदी की माँग अनन्त हो जाती है जिससे ब्याज की दर और नीचे नहीं जाती है।

बहुविकल्पीय प्रश्न

प्र.1. मुद्रा को प्रमाणित किया जाता है—

(a) विशिष्ट रूप द्वारा (b) सरकारी मुहर द्वारा (c) धातुओं द्वारा (d) इनमें से कोई नहीं

उत्तर (b) सरकारी मुहर द्वारा

TOUCH 'n' PASS

प्र.2. ''सिक्के धातु के ऐसे टुकड़े हैं जिनकी तौल व शुद्धता उन पर अंकित मुहर द्वारा प्रमाणित होती है'' यह कथन किसका है?
(a) मार्शल (b) प्रो० के० विक्सेल (c) जेवन्स (d) प्रो० लर्नर
उत्तर (c) जेवन्स

प्र.3. प्रमाणित सिक्के प्रायः बने होते हैं—
(a) सोने के (b) चाँदी के (c) (a) और (b) दोनों के (d) इनमें से कोई नहीं
उत्तर (c) (a) और (b) दोनों के

प्र.4. भारतीय मौद्रिक पद्धति पर कार्य करने के लिए किस समिति का गठन किया गया?
(a) चक्रवर्ती समिति (b) राज समिति (c) प्रकाश समिति (d) सत्यसाची समिति
उत्तर (a) चक्रवर्ती समिति

प्र.5. जो मुद्रा विनिमय के माध्यम का कार्य करती है, कहलाती है—
(a) लेखे की इकाई (b) चलन की इकाई (c) (a) और (b) दोनों (d) इनमें से कोई नहीं
उत्तर (b) चलन की इकाई

प्र.6. प्रकृति के आधार पर मुद्रा को कितने भागों में बाँटा जाता है?
(a) तीन (b) दो (c) चार (d) पाँच
उत्तर (b) दो

प्र.7. वैधानिकता के आधार पर मुद्रा के कितने भेद हैं?
(a) दो (b) तीन (c) चार (d) आठ
उत्तर (a) दो

प्र.8. वह मुद्रा, जो एक देश की राजनीतिक सीमाओं के भीतर सबके द्वारा स्वीकार की जाती है, कहलाती है—
(a) सीमित विधिग्राह्य मुद्रा (b) विधिग्राह्य मुद्रा (c) असीमित विधिग्राह्य मुद्रा (d) ऐच्छिक मुद्रा
उत्तर (b) विधिग्राह्य मुद्रा

प्र.9. वह मुद्रा जिसे स्वीकार करना कानूनन अनिवार्य नहीं होता है, कहलाती है—
(a) असीमित विधिग्राह्य मुद्रा (b) ऐच्छिक मुद्रा
(c) सीमित विधिग्राह्य मुद्रा (d) इनमें से कोई नहीं
उत्तर (b) ऐच्छिक मुद्रा

प्र.10. भारत में किस वर्ष पत्र-मुद्रा जारी की गई?
(a) 1806 (b) 1807 (c) 1808 (d) 1809
उत्तर (a) 1806

प्र.11. किस बैंक द्वारा सर्वप्रथम पत्र-मुद्रा जारी की गई थी?
(a) बैंक ऑफ बड़ौदा (b) बैंक ऑफ बंगाल (c) पंजाब नेशनल बैंक (d) इनमें से कोई नहीं
उत्तर (b) बैंक ऑफ बंगाल

प्र.12. देश की प्रधान मुद्रा होती है—
(a) सांकेतिक मुद्रा (b) प्रामाणिक मुद्रा (c) ऐच्छिक मुद्रा (d) इनमें से कोई नहीं
उत्तर (b) प्रामाणिक मुद्रा

प्र.13. सहायक मुद्रा के रूप में किस मुद्रा का उपयोग किया जाता है?
(a) प्रामाणिक मुद्रा (b) ऐच्छिक मुद्रा
(c) सांकेतिक मुद्रा (d) इनमें से कोई नहीं
उत्तर (c) सांकेतिक मुद्रा

TOUCH 'n' PASS

प्र.14. ''मौद्रिक नीति, स्पष्ट रूप से निर्धारित पूर्व रोजगार के उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए प्रचलन में मुद्रा की मात्रा का विस्तार एवं संकुचन करने के प्रबन्ध का नाम है'' यह कथन किसका है?

(a) आर०पी० कैन्ट (b) प्रो० कीन्स (c) प्रो० ग्राह्म (d) इनमें से कोई नहीं

उत्तर (a) आर०पी० कैन्ट

प्र.15. 'जनरल थ्योरी ऑफ इम्प्लायमेण्ट, इन्टरेस्ट एण्ड मनी' पुस्तक किसके द्वारा लिखी गई?

(a) प्रो० कीन्स (b) प्रो० ग्राह्म (c) केन्ट (d) इनमें से कोई नहीं

उत्तर (a) प्रो० कीन्स

प्र.16. कीन्स के अर्थशास्त्र में आय का समीकरण है—

(a) $I = Y + C$ (b) $Y = I + C$ (c) $C = Y + I$ (d) इनमें से कोई नहीं

उत्तर (b) $Y = I + C$

प्र.17. अर्थव्यवस्था में आन्तरिक साम्य स्थापित करने के लिए मौद्रिक नीति का कैसा होना आवश्यक है?

(a) नियन्त्रित (b) स्थिर
(c) लोचपूर्ण (d) इनमें से कोई नहीं

उत्तर (c) लोचपूर्ण

प्र.18. ''बैंक वह दर है जिस पर केन्द्रीय बैंक सदस्य बैंकों की प्रतिभूतियों की कटौती करता है'' यह कथन किसका है?

(a) जी०एन० हॉम (b) कीन्स
(c) आर०ए० यंग (d) इनमें से कोई नहीं

उत्तर (c) आर०ए० यंग

प्र.19. निम्न में कौन-सा ऐच्छिक मुद्रा के अन्तर्गत नहीं आता है?

(a) चेक (b) ड्राफ्ट
(c) सिक्के (d) विनिमय-पत्र

उत्तर (c) सिक्के

प्र.20. निम्न में कौन-सा युग्म सही नहीं है?

(a) सहायक सिक्के—इनका प्रयोग बड़े भुगतानों में किया जाता है
(b) असीमित विधिग्राह्य—भुगतान किसी भी मात्रा में स्वीकार्य
(c) प्रधान मुद्रा—वस्तुओं और सेवाओं का मूल्य इनमें व्यक्त
(d) सीमित मुद्रा ढलाई—इन सिक्कों की ढलाई स्वतन्त्र नहीं होती

उत्तर (a) सहायक सिक्के—इनका प्रयोग बड़े भुगतानों में किया जाता है

प्र.21. निम्न में कौन-सा धातु मुद्रा का गुण नहीं है?

(a) टिकाऊपन (b) मुद्रा प्रसार से सुरक्षा
(c) खर्चीली मुद्रा (d) विमुद्रीकरण में कम हानि

उत्तर (c) खर्चीली मुद्रा

प्र.22. धातु मुद्रा का कौन-सा दोष नहीं है?

(a) मुद्रा संकुचन का भय (b) संचय करना कठिन
(c) समय एवं शक्ति का अपव्यय (d) पुनः प्रयोग सम्भव

उत्तर (d) पुनः प्रयोग सम्भव

प्र.23. विकासशील देशों में कुल साख की मात्रा का एक बड़ा भाग किसके द्वारा पूरा किया जाता है?

(a) साहूकारों (b) जमींदारों (c) सूदखोरों (d) ये सभी

उत्तर (d) ये सभी

TOUCH 'n' PASS

प्र.24. भारत में योजनाकाल के दौरान मौद्रिक नीति का कौन-सा उद्देश्य रहा है?
(a) बचतों को गतिशील बनाना (b) विनियोग को प्रोत्साहन देना
(c) स्फीति को रोकना (d) ये सभी
उत्तर (d) ये सभी

प्र.25. यह कथन किसका है "व्यक्ति मुद्रा का संचय उसके द्वारा प्रदान की जाने वाली सेवाओं के लिए करते हैं।"
(a) पीगू (b) मार्शल (c) रिकार्डो (d) फ्रीडमैन
उत्तर (d) फ्रीडमैन

प्र.26. कीन्स के ब्याज सिद्धान्त की आलोचना में कौन-सा कथन सही है?
1. यह केवल मुद्रा की माँग पर जोर देता है
2. मुद्रा की पूर्ति पर कोई ध्यान नहीं देता
3. यह अविकसित देशों हेतु उपयुक्त है
4. ब्याज दर का दर मुद्रा की माँग एक पूर्ति के द्वारा होता है
(a) 1, 4, 2 (b) 1, 2, 4 (c) 1, 3, 4 (d) 1, 2, 3,4
उत्तर (b) 1, 2, 4

प्र.27. निम्न में किस अर्थशास्त्री ने मुद्रा के आकस्मिक कार्यों का वर्णन किया है?
(a) रिकार्डो (b) कीन्स (c) किनले (d) पीगू
उत्तर (c) किनले

प्र.28. मुद्रा के गौण कार्य में कौन-सा शामिल है?
(a) भावी भुगतान का स्तर (b) मूल्य का भण्डार (c) मूल्य का हस्तान्तरण (d) ये सभी
उत्तर (d) ये सभी

प्र.29. निम्न में कौन-सा साख का आधार है?
(a) चेक (b) हुण्डी (c) विनिमय-पत्र (d) ये सभी
उत्तर (d) ये सभी

प्र.30. यह कथन किसका है "मुद्रा पूँजी को तरलता प्रदान करती है। आज मुद्रा के रूप में उपलब्ध पूँजी को किसी भी रूप में प्रयुक्त किया जा सकता है।"
(a) पीगू (b) कीन्स (c) कैन्ट (d) मार्शल
उत्तर (b) कीन्स

प्र.31. निम्न में किसने वास्तविक मुद्रा को चलन की इकाई तथा हिसाब की मुद्रा को लेखे की इकाई कहा है—
(a) कीन्स (b) पीगू (c) कैन्ट (d) बेन्हम
उत्तर (d) बेन्हम

प्र.32. पत्र-मुद्रा चार प्रकार की होती है, निम्न में कौन-सा सही है?
(a) प्रतिनिधि पत्र-मुद्रा (b) परिवर्तनीय पत्र-मुद्रा
(c) अपरिवर्तनीय पत्र-मुद्रा (d) ये सभी
उत्तर (d) ये सभी

प्र.33. यह कथन किसका है, "मौद्रिक नीति के अन्तर्गत वे सभी मौद्रिक निर्णय एवं उपाय सम्मिलित हैं, जिनके उद्देश्य चाहे मौद्रिक हैं या अमौद्रिक तथा वे सभी अमौद्रिक निर्णय एवं उपाय सम्मिलित हैं जिनके उद्देश्य मौद्रिक हैं।"
(a) कीन्स (b) कैन्ट
(c) पीगू (d) एच०जी० जानसन
उत्तर (d) एच०जी० जानसन

TOUCH 'n' PASS

प्र.34. अन्तर्राष्ट्रीय परिदृश्य के कारण मौद्रिक नीति का कौन-सा उद्देश्य स्वीकार किया गया है?
(a) विनिमय दर स्थिरता (b) पूर्ण रोजगार
(c) आर्थिक वृद्धि (d) ये सभी

उत्तर (d) ये सभी

प्र.35. किसके निर्यात को नियन्त्रित करके विनिमय दर को स्थिर बनाये रखा जाता है?
(a) पेट्रोल (b) सूती वस्त्र (c) चाँदी (d) सोना

उत्तर (d) सोना

प्र.36. निम्न में कौन-सा परिमाणात्मक यन्त्र है—
(a) बैंक दर नीति (b) खुले बाजार की क्रियाएँ
(c) नकद रक्षित अनुपात (d) ये सभी

उत्तर (d) ये सभी

प्र.37. बैंक दर में वृद्धि से कौन-सा प्रभाव नहीं होता?
(a) राष्ट्रीय आय में वृद्धि (b) व्यापारियों को महँगा ऋण
(c) व्यापारिक बैंकों को अधिक ब्याज पर ऋण प्राप्ति (d) विनियोग में कमी

उत्तर (a) राष्ट्रीय आय में वृद्धि

प्र.38. नकद रक्षित अनुपात (Cash Reserve Ratio) का प्रयोग सर्वप्रथम अमेरिका के फेडरल रिजर्व सिस्टम ने कब किया?
(a) 1931 (b) 1932 (c) 1933 (d) 1934

उत्तर (c) 1933

प्र.39. निम्न में कौन निवेश माँग को प्रभावपूर्ण होने के साथ ही प्रभावपूर्ण माँग की असफलता पर जोर देता है?
(a) जॉन राबिन्सन (b) कीन्स (c) मार्शल (d) डेविडसन

उत्तर (a) जॉन राबिन्सन

प्र.40. किसने अपनी पुस्तक 'A tract on Monetary Reforms' में यह समीकरण दिया। उसके अनुसार लोग केवल उपभोक्ता वस्तुओं को खरीदने के लिए मुद्रा रखते हैं—

$$n = p(K + rK^1)$$

(a) राबर्ट्सन (b) पीगू (c) मार्शल (d) कीन्स

उत्तर (d) कीन्स

❑

TOUCH 'n' PASS

UNIT-II

मुद्रा की आपूर्ति
Supply of Money

खण्ड-अ अतिलघु उत्तरीय प्रश्न

प्र.1. मुद्रा पूर्ति को परिभाषित कीजिए।
Define Money Supply.

उत्तर मुद्रा की पूर्ति के अन्य पर्याय है—मुद्रा स्टॉक, मुद्रा का परिमाण आदि शब्द हैं। किसी भी समय पर मुद्रा की पूर्ति का अर्थ है—अर्थव्यवस्था में विद्यमान मुद्रा का कुल परिमाण। सामान्य शब्दों में कहा जा सकता है कि मुद्रा की पूर्ति मुद्रा की वह मात्रा है जिसे एक देश की जनता वस्तुओं एवं सेवाओं को खरीदने के लिए अपने पास रखती है।

प्र.2. भारत में मुद्रा पूर्ति के मापक बताइए।
Write the measures of Money Supply in India.

उत्तर मुद्रा पूर्ति की द्वितीय कार्यकारी दल की सिफारिशों के आधार पर भारतीय रिजर्व बैंक भारत में मुद्रा की पूर्ति का आकलन चार संघटकों की सहायता से करता है—

M_1 = जनता के पास मुद्रा (करेन्सी नोट, सिक्के) + बैंक की माँग जमा, चालू तथा बचत बैंक खाते पर
$M_2 = M_1$ + डाकखाने की बचत बैंक जमा
$M_3 = M_2$ + बैंकों की सावधि जमा
$M_4 = M_3$ + डाकखानों की सम्पूर्ण जमा

M_1 से M_4 की ओर बढ़ने पर मुद्रा के इन चार रूपों की तरलता क्रमशः घटती जाती है।

प्र.3. मुद्रा का आय प्रचलन वेग को समझाइए।
Explain Income Prevelant Velocity of Money.

उत्तर जब मुद्रा के प्रचलन वेग को राष्ट्रीय आय के साथ सम्बन्धित किया जाता है तो उसे मुद्रा का आय प्रचलन वेग कहा जाता है। ऐसे में मुद्रा के प्रयोग को केवल उन्हीं वस्तुओं व सेवाओं के क्रय-विक्रय में देखा जाता है जो किसी निश्चित अवधि में राष्ट्र की कुल वास्तविक आय में सम्मिलित होती है। मुद्रा का आय प्रचलन वेग किसी वर्ष में मुद्रा की पूर्ति का उस वर्ष की राष्ट्रीय आय के साथ सम्बन्ध स्थापित करता है। यह उस औसत संख्या को व्यक्त करता है, जितनी बार मुद्रा की इकाई एक निश्चित अवधि (एक वर्ष सामान्य रूप में) अन्तिम आय-प्राप्तकर्ताओं के नकद शेषों में प्रविष्टि होती है अथवा इनसे बाहर निकलती है। इसे मुद्रा का चक्रीय प्रचलन वेग भी कहा गया है।

खण्ड-ब लघु उत्तरीय प्रश्न

प्र.1. मुद्रा पूर्ति के परम्परावादी दृष्टिकोण एवं शिकागो दृष्टिकोण का उल्लेख कीजिए।
Mention the Traditional Approach and Chicago Approach of Money Supply.

उत्तर

परम्परावादी दृष्टिकोण
(Traditional Approach)

प्रथम मत अत्यधिक प्रचलित मत माना जाता है जिसका सम्बन्ध परम्परागत एवं केन्द्रीय विचारधारा से है। इस मत के ही अनुसार मुद्रा विनिमय के माध्यम का कार्य करती है। अतः मुद्रा की पूर्ति से आशय उस करेन्सी से है जो जनता के पास तथा कॉमर्शियल

TOUCH 'n' PASS

बैंकों में माँग जमा के रूप में विद्यमान है। इन्हें चलन मुद्रा भी कहते हैं। यह मुद्रा की पूर्ति की वैधानिक स्थिति है। इसके साथ ही बैंकों की माँग जमाएँ चैक के माध्यम से ही चलन मुद्रा की भाँति उपयोग में लायी जाती है। अत: ये जमाएँ भी मुद्रा की कुल पूर्ति में सम्मिलित की जाती हैं।

मुद्रा की पूर्ति = करेन्सी + बैंकों की कुल जमा

Money Supply = Currency + Demand Deposit

परन्तु मौद्रिक नीति की दृष्टि से यह दृष्टिकोण बहुत संकुचित दृष्टिकोण है क्योंकि यह M मात्र विनिमय का माध्यम है।

शिकागो या मौद्रिक सम्प्रदाय का दृष्टिकोण
(Chicago or Monetary Denomination Approach)

अमेरिका के शिकागो विश्वविद्यालय के महान अर्थशास्त्री फ्रीडमैन ने मुद्रा की कुल पूर्ति के सम्बन्ध में व्यापक विचारधारा का समर्थन किया। इसे मौद्रिक सम्प्रदाय भी कहते हैं।

मुद्रा की पूर्ति पर **फ्रीडमैन** ने प्रस्तुत परिभाषा दी "शब्दश: वे डालर जिन्हें लोग अपनी जेबों में लिए घूमते हैं अथवा जो उनके खातों में बैंकों में माँग जमा के रूप में और कॉमर्शियल बैंकों की सावधि जमाओं के रूप में भी विद्यमान हैं।"

ऊपर दी गयी परिभाषा परम्परावादी परिभाषा से ज्यादा व्यापक है क्योंकि इसमें करेन्सी एवं माँग जमा के साथ-साथ सावधि जमा को भी सम्मिलित किया गया है।

मुद्रा की पूर्ति = करेन्सी + माँग जमा + सावधि जमा

Money Supply = Currency + Demand Deposit + Time Deposit

इसे भारत में M_3 से दर्शाया जाता है।

इस दृष्टिकोण को मौद्रिक दृष्टि से अधिक उपयुक्त समझा जाता है परन्तु इसमें समय जमाएँ मुद्रा का पूर्ण तरल रूप नहीं हैं।

प्र.2. गर्ली, शॉ और केन्द्रीय बैंकिंग अवधारणाओं को संक्षेप में लिखिए।

Write briefly the concepts of Gurly, Shaw and Central Banking.

उत्तर

गर्ली तथा शॉ का दृष्टिकाण
(Gurly and Shaw Approach)

अपनी पुस्तक **'Money in Theory of Finance'** मुद्रा की पूर्ति का अपना दृष्टिकोण प्रस्तुत किया। उनके अनुसार मुद्रा की पूर्ति में उन सब वस्तुओं को शामिल किया जाना चाहिए जो उसके निकट प्रतिस्थापित हैं; जैसे समय जमा, बचत बैंक जमा, साख पत्र, शेयर, बॉण्ड आदि।

इस दृष्टिकोण के अनुसार

मुद्रा की पूर्ति = करेन्सी + माँग जमा + सावधि जमा + बचत बैंक जमा + बॉण्ड्स + ...

Money supply = Currency + Demand Deposit + Time Deposit + Saving Bank + Share + Bonds + ...

इस दृष्टिकोण की यह कमी है कि ये न तो मुद्रा के विनिमय माध्यम का कार्य पूरा करता है और न ही इतना विस्तृत क्षेत्र केन्द्रीय बैंक के नियन्त्रण में होता है।

केन्द्रीय बैंकिंग या रेडक्लिफ दृष्टिकोण
(Central Banking or Redcliffe Approach)

मौद्रिक प्रणाली की परीक्षा हेतु नियुक्त 1959 में रेडक्लिफ समिति द्वारा प्रस्तुत रिपोर्ट में मुद्रा की पूर्ति के सम्बन्ध में अत्यन्त व्यापक दृष्टिकोण प्रस्तुत किया।

इस दृष्टिकोण के अनुसार "मुद्रा से अभिप्राय विभिन्न साधनों द्वारा दी गयी साख है।" *(Money is the credit extended by a wide variety of sources)*

मुद्रा की पूर्ति = करेन्सी + माँग जमा + समय जमा + बचत खाता जमा + शेयर + बॉण्ड्स + प्रतिभूतियाँ + असंगठित क्षेत्र से साख।

TOUCH 'n PASS

Money supply = Currency + Demand Deposit + Time deposits + Credit from + Share + Bonds + Duplicates + unorganized sector.

उचित दृष्टिकोण—

ऊपर दिये गये विभिन्न दृष्टिकोणों का अध्ययन करने के पश्चात् यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि अत्यधिक विस्तृत क्षेत्र की अपेक्षा सामान्य रूप से करेन्सी तथा माँग जमा को ही शामिल तथा माँग पत्र जमा को ही शामिल किया जाना चाहिए और बचतों तथा जमाओं को सम्मिलित नहीं किया जाना चाहिए।

मुद्रा की पूर्ति = करेन्सी + सिक्के + नोट + माँग जमा

Money supply = Currency + Coins + Notes + Demand Deposits

प्र.3. निम्न पर टिप्पणी कीजिए–

Write notes on the following :

(i) मुद्रा की प्रभावकारी पूर्ति (Effective Supply of Money)

(ii) मुद्रा का प्रचलन वेग (Prevelant Velocity of Money)

उत्तर

(i) मुद्रा की प्रभावकारी पूर्ति
(Effective Supply of Money)

मुद्रा की प्रभावकारी पूर्ति से अभिप्राय मुद्रा की उस मात्रा से है जो किसी समय परिचलन में रहती है। मुद्रा की कुल पूर्ति को अपने कार्य अथवा प्रभाव के आधार पर दो मुख्य भागों में बाँटा गया है। एक भाग वह जो केन्द्रीय सरकार के खजाने, केन्द्रीय बैंक तथा वाणिज्य बैंकों के पास "आधार" अथवा "आरक्षित मुद्रा" के रूप में रखा जाता है। यह परिचलन में प्रयुक्त नहीं किया जाता बल्कि कोषों में रखा जाता है। दूसरा भाग अधिक विस्तृत है जो परिचलन में रहता है। इसको विनिमय सम्बन्धी तथा अन्य भुगतानों के माध्यम के रूप में प्रयोग किये जाने के लिए जनता को उपलब्ध होती है।

मुद्रा की प्रभावकारी पूर्ति से आशय मुद्रा की कुल मात्रा के दूसरे भाग से है जो व्यय करने योग्य रूप में जनता को किसी समय प्राप्त होती है। मुद्रा के मूल्य निर्धारक तत्त्व के रूप में मुद्रा के प्रभावकारी पूर्ति ही अधिक महत्त्वपूर्ण होती है।

(ii) मुद्रा का प्रचलन वेग
(Prevelant Velocity of Money)

मुद्रा स्टॉक होने के साथ-साथ उसका एक गुण यह भी है कि उसमें प्रवाह रहता है। मुद्रा की विभिन्न इकाइयाँ विनिमय की क्रिया में कई हाथों से बराबर गुजरती हैं और हर बार मुद्रा का कार्य करती हैं।

एक निश्चित अवधि में मुद्रा की एक इकाई औसतन जितने बार भुगतान करने के लिए प्रयोग की जाती है, उसे मुद्रा का प्रचलन वेग कहते हैं।

किसी निश्चित अवधि में मुद्रा की प्रभावकारी पूर्ति = प्रचलन में मुद्रा की मात्रा व मुद्रा का प्रचलन वेग।

मुद्रा के प्रचलन वेग को ज्ञात इस उदाहरण से किया जा सकता है—यदि एक निश्चित अवधि में एक रुपये का नोट एक के बाद दूसरे हाथों में जाता है और हर बार विनिमय माध्यम का कार्य करता है तो उसका प्रचलन वेग 10 हुआ, इस अवधि में मुद्रा की प्रभावकारी पूर्ति = $1 \times 10 = ₹ 10$ होगी।

खण्ड-स विस्तृत उत्तरीय प्रश्न

प्र.1. मुद्रा पूर्ति के निर्धारक तत्त्वों का वर्णन कीजिए।

Mention the determining factors of Money Supply.

उत्तर

मुद्रा पूर्ति के निर्धारक तत्त्व
(Determing Factors of Money Supply)

मुद्रा पूर्ति के निर्धारण के सम्बन्ध में दो सिद्धान्त हैं। पहले सिद्धान्त के अनुसार मुद्रा पूर्ति को बैंक बहिर्जात रूप से निर्धारित करता है और दूसरे सिद्धान्त के अनुसार आर्थिक क्रिया में होने वाले परिवर्तन अन्तर्जात रूप से मुद्रा पूर्ति को निर्धारित करते हैं जो लोगों की जमा की सापेक्षता में करेन्सी धारण करने की इच्छा, ब्याज की दर इत्यादि को प्रभावित करती है।

TOUCH 'n' PASS

अत: मुद्रा की पूर्ति निर्धारक बहिर्जात भी हैं और अन्तर्जात भी। यह प्रमुख निर्धारक तत्त्व निम्नलिखित हैं—

1. आवश्यक रिजर्व अनुपात।
2. बैंक कोषों का स्तर।
3. जनता की करेन्सी तथा जमाएँ रखने की इच्छा।
4. उच्च स्तरीय मुद्रा।

आवश्यक रिजर्व अनुपात (Required Reserve Ratio)

यह मुद्रा पूर्ति का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण निर्धारक तत्त्व है—

1. चालू तथा सावधि जमा देयताओं से नकदी का अनुपात (RR) कानून द्वारा निर्धारित किया जाता है। प्रत्येक बैंक को इन देयताओं का कुछ प्रतिशत देश के केन्द्रीय बैंक के पास जमा के रूप में रखना पड़ता है।
2. आवश्यक कोष अनुपात में वृद्धि होने पर व्यापारिक बैंकों के पास मुद्रा की पूर्ति घट जाती है और जब आवश्यक कोष अनुपात घट जाता है तो मुद्रा की पूर्ति में वृद्धि हो जाती है।
3. भारत में मुद्रा पूर्ति निर्धारित करने के लिए कानून द्वारा एक अतिरिक्त कदम के रूप में वैधानिक रिजर्व अनुपात निश्चित किया गया है। यदि इसे बढ़ा दिया जाये तो इससे कॉमर्शियल बैंकों को उधार देने के लिए मुद्रा पूर्ति कम हो जाती है। यदि इसको कम कर दिया जाये तो बैंकों को उधार देने के लिए मुद्रा की पूर्ति बढ़ जाती है।

बैंक कोषों का स्तर (Level of Bank Reserves)

बैंक कोषों के अन्तर्गत दो तत्त्व सम्मिलित रहते हैं—

1. व्यापारिक बैंक की केन्द्रीय बैंक के पास जमाएँ।
2. व्यापारिक बैंकों की तिजोरियों में विद्यमान करेन्सी, नोट अथवा नकदी। इसे तरल कोषानुपात भी कहते हैं।

किसी देश का केन्द्रीय बैंक ही मुद्रा पूर्ति निर्धारित करने के लिए व्यापारिक बैंक की कोषों या तरल कोषानुपात को प्रभावित करते हैं। केन्द्रीय बैंक सभी व्यापारिक बैंकों के लिए यह आवश्यक कर देता है कि वे अपनी सावधि एवं माँग जमाओं दोनों का एक निश्चित प्रतिशत भाग आरक्षित के रूप में रखें। यही कानूनी, न्यूनतम अथवा आवश्यक रिजर्व है।

आवश्यक रिजर्व अनुपात (RR) एवं जमाओं के स्तर (D) द्वारा आवश्यक रिजर्व निर्धारित होते हैं।

$$RRr = RR \times D$$

रिजर्व जितना अधिक होगा बैंक को उतने ही अधिक आवश्यक रिजर्व रखना होगा। परन्तु यह भी स्पष्ट है कि मुद्रा पूर्ति निर्धारित करने के लिए अतिरिक्त रिजर्व ही अधिक महत्त्वपूर्ण है।

$$ER = TR\text{-}RR \text{ (अतिरिक्त रिजर्व = कुल रिजर्व – आवश्यक रिजर्व)}$$

व्यापारिक बैंकों के अतिरिक्त रिजर्व ही उसकी जमा देयताओं के आकार को प्रभावित करते हैं। बैंक अपने अतिरिक्त रिजर्व के बराबर ही कर्ज देते हैं और अतिरिक्त रिजर्व मुद्रा पूर्ति का आवश्यक अंग है। किसी व्यापारिक बैंक की मुद्रा पूर्ति निर्धारित करने के लिए केन्द्रीय बैंक खुले बाजार परिचालन और बट्टा दर नीति अपनाकर उसके रिजर्वों को प्रभावित करता है।

व्यापारिक बैंकों की आरक्षतियों पर महत्त्वपूर्ण प्रभाव केवल तभी पड़ता है जब खुले बाजार परिचालन तथा बट्टा दर नीति एक दूसरे के पूरक हों।

जनता की करेन्सी तथा जमाएँ रखने की इच्छा (Public's Desire to Hold Currency and Deposits)

यदि लोगों की यह आदत बनी हुई है कि वे अधिक जमा करते हैं एवं कम नकदी अपने पास रखते हैं तो मुद्रा पूर्ति में वृद्धि हो जाएगी। कारण यह है कि अधिक जमा का प्रयोग मुद्रा के निर्माण में प्रयुक्त हो जाता है। परन्तु यदि लोगों में बैंक में जमा करने की प्रवृत्ति नहीं है तो वे अपनी बचतों को अपने पास ही नकदी के रूप में रखना उचित समझते हैं तो बैंकों द्वारा साख निर्माण अपेक्षाकृत कम होगा और मुद्रा की पूर्ति का स्तर भी नीचे होगा।

उच्च शक्ति मुद्रा (High Powered Money)

उच्च शक्ति मुद्रा वह मुद्रा है जो व्यापारिक बैंकों के पास आरक्षितों और जनता के पास नोटों तथा सिक्कों के रूप में विद्यमान रहती है।

TOUCH 'n' PASS

$$H = C + RR + ER$$

H = उच्च शक्ति मुद्रा
C = करेन्सी
RR = आवश्यक रिजर्व
ER = अतिरिक्त रिजर्व

उच्च शक्ति मुद्रा बैंक जमाओं के विस्तार और मुद्रा पूर्ति के निर्माण का आधार है। यह बैंक जमा के विस्तार और मुद्रा पूर्ति के निर्माण का आधार है। मुद्रा पूर्ति मौद्रिक आधार में परिवर्तन के साथ प्रत्यक्ष रूप से करेन्सी और रिजर्व अनुपातों के साथ विपरीत परिवर्तित होती है।

अन्य कारक (Other Factors)

मुद्रा पूर्ति मौद्रिक अधिकारियों द्वारा निर्धारित केवल उच्चस्तरीय मुद्रा का ही फलन नहीं है, बल्कि ब्याज दरों, आय और अन्य कारकों का भी फलन है। व्यावसायिक क्रिया में परिवर्तन जनता और बैंकों के व्यवहार को परिवर्तित कर सकते हैं। अत: मुद्रापूर्ति केवल बहिर्जात नियन्त्रण मद ही नहीं बल्कि अन्तर्जात निर्धारित मद भी है।

मुद्रा पूर्ति एवं बैंक साख एक दूसरे के साथ परोक्ष रूप से सम्बन्धित हैं। जब मुद्रा की पूर्ति में वृद्धि होती है तो उसका एक भाग जमाकर्ता की बचत प्रवृत्ति पर निर्भर करते हुए बैंकों में जमा कर दिया जाता है। यही बचतें बैंकों की जमाएँ बन जाती हैं। इसे आगे कानूनी रिजर्व आवश्यकताओं को पूरा करने के बाद उधार देने में प्रयुक्त किया जाता है।

इस प्रकार मुद्रा पूर्ति में प्रत्येक वृद्धि के साथ बैंक साख बढ़ती है।

बहुविकल्पीय प्रश्न

प्र.1. भारतीय रिजर्व बैंक भारत में मुद्रा की पूर्ति का आकलन कितने संघटकों की सहायता से करता है?

(a) 1 (b) 2 (c) 3 (d) 4

उत्तर (d) 4

प्र.2. भारतीय रिजर्व बैंक मुद्रा की पूर्ति का आकलन निम्न में किस संघटक की सहायता से करता है—

(a) जनता के पास करेन्सी नोट + सिक्के (b) बैंक की माँग जमा, चालू
(c) बचत बैंक खाते पर (d) ये सभी

उत्तर (d) ये सभी

प्र.3. मुद्रा का आय प्रचलन वेग है—

(a) किसी वर्ष में मुद्रा की पूर्ति का उस वर्ष की राष्ट्रीय आय से सम्बन्ध
(b) औसत संख्या, जो रिजर्व बैंक निर्धारित करता है
(c) रोजगार के अवसरों की संख्या
(d) उपरोक्त में से कोई नहीं

उत्तर (a) किसी वर्ष में मुद्रा की पूर्ति का उस वर्ष की राष्ट्रीय आय से सम्बन्ध

प्र.4. यह कथन किसका है ''शब्दश: वे डॉलर जिन्हें लोग अपनी जेबों में लिए घूमते हैं अथवा जो उनके खातों में बैंकों में माँग जमा के रूप में और कामर्शियल बैंकों की सावधि जमाओं के रूप में भी विद्यमान हैं।''

(a) पीगू (b) राबर्ट्सन
(c) मार्शल (d) फ्रीडमैन

उत्तर (d) फ्रीडमैन

प्र.5. गर्ली तथा शॉ के अनुसार किसे मुद्रा की पूर्ति में शामिल किया जाना चाहिए?

(a) जमा (b) साख पत्र
(c) बचत बैंक जमा (d) ये सभी

उत्तर (d) ये सभी

TOUCH 'n PASS

प्र.6. रेडक्लिफ समिति की रिपोर्ट कब प्रस्तुत की गई?
(a) 1958 (b) 1959 (c) 1960 (d) 1961
उत्तर (b) 1959

प्र.7. मुद्रा की प्रभावकारी पूर्ति है—
(a) मुद्रा का मूल्य
(b) मुद्रा की गति
(c) मुद्रा की मात्रा जो किसी समय प्रचलन में रहती है
(d) उपरोक्त में से कोई नहीं
उत्तर (c) मुद्रा की मात्रा जो किसी समय प्रचलन में रहती है

प्र.8. एक निश्चित अवधि में मुद्रा की एक इकाई औसतन जितनी बार भुगतान करने के लिए प्रयोग की जाती है, उसे क्या कहते हैं?
(a) मुद्रा की मात्रा (b) मुद्रा का प्रचलन वेग (c) मुद्रा का आधार (d) ये सभी
उत्तर (b) मुद्रा का प्रचलन वेग

प्र.9. मुद्रा का प्रमुख निर्धारक तत्त्व कौन-सा है?
(a) आवश्यक रिजर्व अनुपात (b) बैंक कोषों का स्तर
(c) जनता की करेन्सी तथा जमाएँ रखने की इच्छा (d) ये सभी
उत्तर (d) ये सभी

प्र.10. आवश्यक रिजर्व अनुपात के सन्दर्भ में कौन-सा कथन सही है—
(a) प्रत्येक बैंक को इन देयताओं का कुछ प्रतिशत केन्द्रीय बैंक के पास जमा के रूप में रखना पड़ता है
(b) आवश्यक कोष अनुपात में वृद्धि होने पर व्यापारिक बैंकों के पास मुद्रा की पूर्ति घट जाती है
(c) आवश्यक कोष अनुपात घटने पर मुद्रा की पूर्ति में वृद्धि हो जाती है
(d) उपरोक्त सभी
उत्तर (d) उपरोक्त सभी

प्र.11. फ्रीडमैन किस विश्वविद्यालय के महान अर्थशास्त्री हैं?
(a) कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय (b) ऑक्सफोर्ड विश्वविद्यालय
(c) शिकागो विश्वविद्यालय (d) लंदन विश्वविद्यालय
उत्तर (c) शिकागो विश्वविद्यालय

प्र.12. मुद्रा पूर्ति मौद्रिक अधिकारियों द्वारा निर्धारित केवल उच्च स्तरीय मुद्रा का फलन ही नहीं वरन् निम्न में किस कारक का फलन भी है?
(a) ब्याज दरों (b) आय (c) अन्य कारकों (d) ये सभी
उत्तर (d) ये सभी

प्र.13. वह मुद्रा जो व्यापारिक बैंकों के पास आरक्षितों और जनता के पास नोटों तथा सिक्कों के रूप में विद्यमान रहती है, कहलाती है—
(a) निम्न मुद्रा शक्ति (b) उच्च मुद्रा शक्ति (c) (a) और (b) दोनों (d) इनमें से कोई नहीं
उत्तर (b) उच्च मुद्रा शक्ति

TOUCH 'n PASS

UNIT-III

वाणिज्यिक अधिकोषण
Commercial Banking

खण्ड-अ अतिलघु उत्तरीय प्रश्न

प्र.1. राष्ट्रीयकरण को परिभाषित कीजिए।
Define Nationalism.

उत्तर निजी क्षेत्र की या प्राइवेट क्षेत्र के बैंकों के अधिकार एवं स्थायित्व को सरकार को सौंपना ही राष्ट्रीयकरण कहलाता है।

प्र.2. क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक का क्या कार्य है?
What is the work of Commercial Bank.

उत्तर वे ग्रामीण बैंक जिनका कार्यक्षेत्र एक विशेष ग्रामीण क्षेत्र ही होता है उसी दायरे में वे कार्य करते हैं।

प्र.3. नकद कोष अनुपात क्या है?
What is Cash Fund Ratio?

उत्तर वाणिज्यिक बैंकों को नकद राशि का एक निश्चित अनुपात भारतीय रिजर्व बैंक के पास रखना होता है। भारतीय रिजर्व बैंक द्वारा यह अनुपात घटाया या बढ़ाया जा सकता है जिससे इन बैंकों की साख सृजन की क्षमता प्रभावित होती है।

प्र.4. वैधानिक तरलता अनुपात को समझाइए।
Explain Statutory Liquidity Ratio.

उत्तर वाणिज्यिक बैंकों को अपनी कुल जमाओं का एक निश्चित अनुपात अपने पास नकद रूप में रखना होता है। इसका निर्धारण भी भारतीय रिजर्व बैंक द्वारा किया जाता है।

प्र.5. व्युत्पन्न जमा किसे कहते हैं?
What is Derivative Deposit?

उत्तर जब ऋणदाता बैंक ऋण लेने वाले के नकद साख खाते में कुछ रकम लिख देता है तो यह रकम व्युत्पन्न जमा कहलाती है।

प्र.6. बेचान को समझाइए।
Explain Endorsement.

उत्तर चेक का हस्तान्तरण करने हेतु उसकी पीठ पर हस्ताक्षर सहित जो शब्द लिखे जाते हैं, उसे चेक का बेचान कहते हैं।

खण्ड-ब लघु उत्तरीय प्रश्न

प्र.1. स्वतन्त्रता से पूर्व वाणिज्यिक बैंकों के विकास का उल्लेख कीजिए।
Mention the development of Commercial banks before independence.

उत्तर यद्यपि भारत में बैंकिंग विकास का इतिहास काफी पुराना है लेकिन हम वाणिज्यिक बैंकों के विकास के सन्दर्भ में एक सीमित दायरे में ही इसका अध्ययन कर सकेंगे जिसे निम्न रूप में रखा जा सकता है—स्वतन्त्रता से पूर्व बैंकिंग विकास तथा स्वतन्त्रता के बाद का बैंकिंग विकास।

TOUCH 'n' PASS

स्वतन्त्रता से पूर्व वाणिज्यिक बैंकों का विकास
(Development of Commercial Banks before Independence)

भारत में ब्रिटिश शासन के प्रारम्भ से ही 17वीं सदी में आधुनिक बैंकिंग प्रणाली का विकास हुआ। 1970 में भारत में प्रथम बैंक कोलकाता में 'बैंक ऑफ हिन्दुस्तान' स्थापित किया गया किन्तु विभिन्न कारणों से यह बैंक सफल संचालन नहीं कर सका। देश में निजी तथा सरकारी प्रयासों से तीन प्रेसीडेन्सी बैंक स्थापित किये गये। सन् 1806 में बैंक ऑफ मद्रास, 1840 में बैंक ऑफ बॉम्बे तथा 1843 में सरकार का शेयर होने के कारण सरकार का इन बैंकों पर नियन्त्रण था। सन् 1912 में तीनों बैंकों को मिलाकर इम्पीरियल बैंक ऑफ इण्डिया स्थापित किया गया जिसका जुलाई 1955 को राष्ट्रीयकरण कर दिया गया तथा इसका नाम बदलकर 'स्टेट बैंक ऑफ इण्डिया' कर दिया गया।

सन् 1860 से 1913 ई० तक की समय अवधि में संयुक्त पूँजी वाले बैंकों का विकास हुआ। इस समयावधि में अनेक वाणिज्यिक बैंकों की स्थापना हुई जैसे—इलाहाबाद बैंक (1906), पंजाब नेशनल बैंक (1894), बैंक ऑफ इण्डिया (1906), बैंक ऑफ बड़ौदा (1908), सेन्ट्रल बैंक ऑफ इण्डिया (1911) तथा अन्य। वर्ष 1913 से 1939 के मध्य प्रथम विश्व युद्ध तथा अन्य कारणों से देश में वाणिज्यिक बैंकों का विकास रुक गया, लेकिन बैंकों के विकास की गति को मजबूत बनाये रखने के लिए 1930 में केन्द्रीय बैंकिंग जाँच समिति गठित की गयी जिसकी सिफारिशों पर RBI अधिनियम 1934 के आधार पर 1 अप्रैल 1935 को भारतीय रिजर्व बैंक स्थापित किया गया जिसके परिणामस्वरूप भारत में वाणिज्यिक बैंकों के विस्तार एवं विकास को बल मिला तथा इस दिशा में नये कदम उठाने के प्रयास हुए। इसी क्रम में सन् 1945 में भारतीय बैंकिंग अधिनियम पारित किया गया जो भारत में वाणिज्यिक बैंकों के विकास के लिए एक कारगर उपाय सिद्ध हुआ।

विश्व युद्धों के समय में बढ़ती हुई आर्थिक समृद्धि का लाभ उठाने के उद्देश्य से पुराने बैंकों द्वारा नयी शाखाएँ खोली गयी तथा नये-नये बैंकों को भी स्थापित किया गया।

प्र.2. वाणिज्यिक बैंकों की समस्याओं को संक्षेप में समझाइए।
Briefly explain the problems of commercial banks.

उत्तर

वाणिज्यिक बैंकों की समस्याएँ
(Problems of Commercial Banks)

वाणिज्यिक बैंकों के कार्य सम्पादन में आने वाली प्रमुख समस्याओं को निम्न रूप में समझा जा सकता है—

1. **जनसंख्या का बढ़ता भार**—यद्यपि वाणिज्यिक बैंकों की शाखाओं में लगातार वृद्धि हो रही है फिर भी जनसंख्या के बढ़ते भार तथा क्रियाकलापों में वृद्धि के कारण बैंकिंग प्रणाली सफलतापूर्वक कार्य करने में पीछे रहती है। बैंकों में अत्यधिक भीड़ तथा ओवर लोड की समस्या बनी रहती है।
2. **ऋण वापसी की समस्या**—वाणिज्यिक बैंकों द्वारा यद्यपि ऋण स्वीकृत करने तथा उपलब्ध कराने में ग्राहक की साख तथा अन्य पक्षों की पूर्ण जानकारी प्राप्त कर ली जाती है फिर भी बैंकों की गैर-निष्पादित परिसम्पत्तियाँ बैंकों के सामने समस्या पैदा करती हैं इससे बैंकों की साख सृजन क्षमता तथा कार्य प्रणाली प्रतिकूल रूप से प्रभावित होती हैं।
3. **फर्जीवाड़े की समस्या**—बैंकों के सामने धोखाधड़ी तथा फर्जीवाड़ा जैसे अनेक समस्याएँ सामने आती रहती हैं। फर्जी हस्ताक्षर से धनराशि निकालना, ए०टी०एम० कार्ड का नम्बर चुराना, फर्जी दस्तावेज प्रस्तुत करना, ऋण का दुरूपयोग करना आदि कार्य बैंकिंग प्रणाली की कार्यकुशलता में बाधक हैं।
4. **अशिक्षित ग्राहकों सम्बन्धी समस्या**—ग्रामीण तथा शहरी मलिन बस्तियों में बैंक ग्राहकों की निरक्षरता तथा अशिक्षा भी बैंकों के सामने एक समस्या है। बैंकिंग योजनाओं का पूर्ण प्रचार नहीं हो पाता है। सरकारी योजनाओं के बारे में अधिक धनराशि पर हस्ताक्षर या अँगूठा निशान लगाकर कम धनराशि देना एवं बैंक नियमों की अवहेलना करना इस प्रकार की अनेक समस्याएँ हैं।
5. **कर्मचारियों के व्यवहार सम्बन्धी समस्या**—दूर-दराज ग्रामीण क्षेत्रों में समान रूप से सरकारी कार्य करते हैं जिसके परिणामस्वरूप वह अपने ग्राहकों के साथ उचित व्यवहार नहीं करता है एवं बैंकिंग सुविधाओं, कार्यक्रमों पर अधिक जोड़ नहीं देता है जिसके आधार पर वह शहरी क्षेत्रों की ओर ट्रांसफर कराना चाहता है।

TOUCH 'n' PASS

प्र.3. गुणात्मक नियन्त्रण पर टिप्पणी कीजिए।
Comment on Qualitative Control.

उत्तर

गुणात्मक नियन्त्रण
(Qualitative Control)

1. **प्रवृत्य साख नियन्त्रण** (Selective Credit Controls)—परिमाणात्मक नियन्त्रण के विपरीत यह विधि साख के प्रयोग को नियन्त्रित करती है। यह समूची अर्थव्यवस्था को न करके मात्र उसके कुछ विशेष क्षेत्रों की वित्तीय एवं आर्थिक गतिविधियों को ही प्रभावित करती है।
   (अ) **ऋण की सीमा में परिवर्तन** (Change in Loan Limit)—कभी-कभी भविष्य में मुनाफा कमाने के लालच में व्यापारियों द्वारा किसी वस्तु विशेष का स्टॉक बढ़ा लिया जाता है। इस स्टॉक को बढ़ाने हेतु वह बैंक से ऋण लेते हैं। स्टॉक की गयी वस्तु का बाजार में कृत्रिम अभाव उत्पन्न हो जाता है। ऐसी स्थिति से बचने के लिए धरोहर के रूप में रखे गये माल की कीमत तथा ऋण की राशि में अन्तर की सीमाओं (margin requirements) को बढ़ा दिया जाता है। इस कारण उतने ही माल पर अब जितनी अन्तर की सीमा बढ़ायी गयी है उतना कम ऋण प्राप्त होता है।
   (ब) **ब्याज अथवा कटौती दर में भिन्नता** (Difference in Interest or Cut Rate)—जिन क्षेत्रों को प्रोत्साहन दिया जाना है उन क्षेत्रों के बिलों की कटौती दर कम निर्धारित की जाती है एवं जिन क्षेत्रों को हतोत्साहित करना हो उनके बिलों की कटौती दर बढ़ा दी जाती है।
   (स) **ऋणों की प्राप्ति पर नियन्त्रण** (Control over Loan Receipt)—कुछ चुने हुए क्षेत्रों में यदि साख को सीमित करना होता है तो उन क्षेत्रों को ऋण दिये जाने पर सीमा प्रतिबन्ध लगा दिये जाते हैं। इन सीमित ऋणों को प्राप्त करने हेतु भी केन्द्रीय बैंकों की पूर्वानुमति आवश्यक होती है।
2. **साख की राशनिंग** (Credit Rationing)—केन्द्रीय बैंक वाणिज्यिक बैंकों की साख को तय कर देता है। वह ये सुनिश्चित कर देता है कि किस बैंक को कितनी साख क्षमता दी जाएगी। यह निम्न तरीकों से किया जाता है—
   (अ) किसी बैंक की पुन: भुनाने (Rediscounting) की सुविधा को समाप्त करके।
   (ब) सभी बैंकों के लिए इस सुविधा को सीमित करके अथवा उनके लिए साख का कोटा (quota) निश्चित करके।
   (स) विभिन्न बैंकों द्वारा अलग-अलग उद्योगों या व्यवसायों को दिये जाने वाले ऋण की सीमा या कोटा निश्चित करके।
3. **प्रत्यक्ष कार्यवाही** (Direct Action)—केन्द्रीय बैंक के आदेशों का पालन न करने वाले बैंकों के विरुद्ध केन्द्रीय बैंक सीधी या प्रत्यक्ष कार्यवाही करता है। वह उनकी पुन: कटौती की सुविधा को बन्द कर देता है अथवा उनकी दर को बढ़ा देता है।
4. **प्रचार** (Advertisement)—केन्द्रीय बैंक समय-समय पर मुद्रा बाजार की स्थिति तथा बैंकिंग व्यवस्था की समस्याओं, उद्योग, व्यवसाय, व्यापार तथा आयात-निर्यात आदि के सम्बन्ध में आँकड़े व विवरण प्रकाशित करता है जिससे अर्थव्यवस्था के सभी गणक सचेत व जागरूक रहकर व्यापारिक अनुमान की गणना करने में सक्षम होते हैं।

खण्ड-स विस्तृत उत्तरीय प्रश्न

प्र.1. वाणिज्यिक बैंकिंग के अर्थ एवं वर्गीकरण को विस्तार से लिखिए।
Explain in detail the meaning and classification of Commercial Banking.

उत्तर

वाणिज्यिक बैंकिंग : अर्थ एवं वर्गीकरण
(Commercial Banking : Meaning and Classification)

सामान्य रूप से वाणिज्यिक बैंकिंग के अन्तर्गत बैंक शामिल किये जाते हैं, जो जनता की बचतें एकत्रित करते हैं तथा उन्हें बड़ी तथा छोटी औद्योगिक एवं व्यापारिक इकाइयों को उधार लेकर अपेक्षाकृत अधिक ब्याज पर व्यावसायिक लोगों को उधार देते हैं तथा लाभ कमाते हैं। वर्तमान में वाणिज्यिक बैंक व्यावसायिक व्यापारिक कार्यों के साथ गैर-व्यापारिक कार्यों में भी संलग्न हैं तथा विकासात्मक कार्यों में रुचि प्रकट कर रहे हैं। सारांश रूप में वाणिज्यिक बैंकिंग का मूल आधार लाभ कमाना है।

TOUCH 'n' PASS

प्रो० चैण्डलर के अनुसार इन बैंकों को वाणिज्यिक बैंक के नाम से न पुकारकर अन्य नाम से पुकारा जाना चाहिए। इन्होंने इन बैंकों को वाणिज्यिक बैंक कहना अनुचित तथा भ्रामक बताया। इन बैंकों के पास सामान्यत: अल्पकालीन राशियाँ ही जमा होती हैं, इसीलिए ये अल्पकाल के लिए ही ऋण देने में समर्थ होती हैं। वाणिज्यिक बैंक कहलाने वाली बैंकिंग संस्थाओं के कार्यों का विस्तार हुआ है। वर्तमान में इन वाणिज्यिक बैंकों द्वारा केवल व्यापारिक कार्यों के लिए ही ऋण नहीं दिया जाता बल्कि कृषि तथा औद्योगिक विकास के लिए भी ऋण उपलब्ध कराती है। इसके अतिरिक्त ये बैंक चैकों के भुगतान, बचत को प्रोत्साहन तथा अनेक प्रकार के कार्यों द्वारा अपने ग्राहकों की सेवा करते हैं। इन वाणिज्यिक बैंकों द्वारा साख सृजन एक महत्त्वपूर्ण कार्य है जो इनकी प्राथमिक जमाओं पर निर्भर करता है। इन बैंकों द्वारा सृजित साख विनिमय माध्यम का कार्य करती है। ये बैंक नये नोट नहीं छापती है और न ही सिक्के ढालती है। इसीलिए चैण्डलर ने इन बैंकों को चैक जमा बैंक कहना उचित समझा। लेकिन व्यापारिक या वाणिज्यिक बैंक नाम अधिक प्रचलित हुआ है। सामान्य रूप से जनता द्वारा कहा जाने वाला बैंक का अभिप्राय ही वाणिज्यिक बैंक है। भारत में वाणिज्यिक बैंकों का वर्गीकरण निम्न रूप में किया गया है।

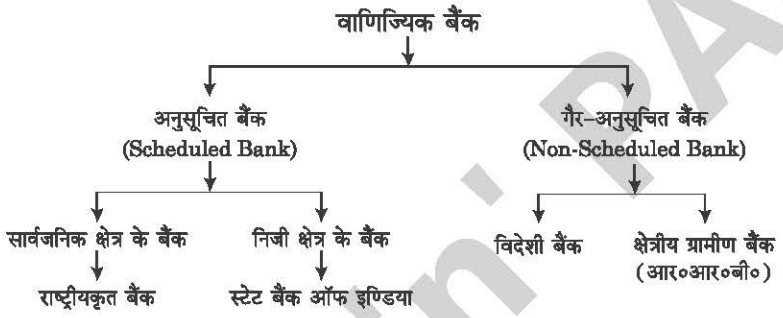

अनुसूचित वाणिज्यिक बैंक—भारतीय रिजर्व बैंक अधिनियम के अधीन वाणिज्यिक बैंकों को दूसरी अनुसूची में शामिल किया गया है। उन्हें अनुसूचित वाणिज्यिक बैंक कहा जाता है। इन बैंकों की प्रदत्त पूँजी तथा संचित राशि ₹ 5 लाख से कम नहीं होनी चाहिए तथा इन बैंकों द्वारा भारतीय रिजर्व बैंकों को इस बारे में सन्तुष्ट करना होता है कि इनका कार्यकलाप जमा कर्ताओं के हितों के अनुरूप किया जा रहा है। इन बैंकों की स्थापना संयुक्त पूँजी कम्पनी के रूप में होती है न कि एकल व्यापारी साझा फर्म के रूप में। इन अनुसूचित वाणिज्यिक बैंकों को अपनी जमा का एक निश्चित अंश भारतीय रिजर्व बैंक के पास नकद रूप में रखना होता है तथा इनको भारतीय रिजर्व बैंकों के पास समय-समय पर बैंकिंग अधिनियम, 1949 के अन्तर्गत विवरण-पत्र भी भेजना होता है।

गैर-अनुसूचित बैंक—गैर-अनुसूचित बैंकों से हमारा तात्पर्य ऐसे बैंकों से जिन्हें भारतीय रिजर्व बैंकों अधिनियम 1934 की दूसरी अनुसूची में सम्मिलित नहीं किये गये हैं तथा ये बैंकों वैधानिक नगद आरक्षण आवश्यकताओं के अधीन हैं गैर-अनुसूचित बैंकों को भारतीय रिजर्व बैंकों के पास एक निश्चित राशि नहीं रखनी होती है। ये बैंक अपने पास ही नगद राशि रखते हैं। इन बैंकों को भारतीय रिजर्व बैंक से उधार लेने तथा रियायती प्रेषण की सुविधा प्राप्त नहीं है।

क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक—क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों की स्थापना दूर-दराज के ग्रामीण क्षेत्रों में बैंकिंग सेवाएँ पहुँचाने के लिए की गयी थी जहाँ पहले से बैंकिंग सेवाएँ उपलब्ध नहीं थी। प्रारम्भ में वर्ष 1975 में 5 क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों की स्थापना की गयी थी जो मुरादाबाद, गोरखपुर (उत्तर प्रदेश), भिवानी (हरियाणा), जयपुर (राजस्थान) तथा मालदा (पश्चिमी बंगाल) में स्थापित की गयी। इनकी स्थापना देश में वैयक्तिक राष्ट्रीयकृत वाणिज्यिक बैंकों के प्रायोजन पर की गयी। इन बैंकों का उद्देश्य छोटे तथा उपेक्षित किसानों, कृषि मजदूरों, दस्तकारों और छोटे उद्यमियों को ऋण उपलब्ध कराना था ताकि ग्रामीण क्षेत्रों में उत्पादन सम्बन्धी क्रियाकलापों को बढ़ावा मिल सके तथा ग्रामीणों को स्थानीय स्तर पर रोजगार सृजित हो सके। इन बैंकों की स्थापना ऐसी संकल्पना पर की गयी थी जिसमें सहकारी और वाणिज्यिक दोनों प्रकार की विशेषताएँ विद्यमान हो सकें।

अप्रैल 1997 से प्राथमिक क्षेत्र को ऋण देने का कार्य भी इन क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों को सौंप दिया गया। कुछ स्थितियों के साथ क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों को रुपयों में अनिवासी खाते खोलने और रखने की स्वीकृति दी गयी। इन बैंकों को और अधिक सुदृढ़ बनाने के लिए सितम्बर 2005 में इन बैंकों को और अधिक सुदृढ़ बनाने के लिए सितम्बर 2005 में इन बैंकों का चरणबद्ध तरीके से आपसी विलय करने की प्रक्रिया को प्रारम्भ किया गया। 31 मार्च, 2010 में इन बैंकों की संख्या 82 थी जिसमें 46 विलयीकृत तथा 36 पृथक बैंक शामिल थीं। क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक सिक्किम और गोवा के अलावा सभी राज्यों में कार्यरत हैं। 1987 के बाद कोई क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक नहीं खोला गया है।

क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक की कार्यप्रणाली में सुधार हेतु सरकार द्वारा अनेक समितियाँ गठित की गयी जिनका संक्षिप्त विवरण निम्न प्रकार से दिया जा सकता है।

दान्तेवाला समिति का गठन 1977 में किया गया था। इस समिति ने क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक के संगठनात्मक ढाँचे में सुधार एवं कार्यों में संशोधन करके इनकी संरचना को और अधिक सुदृढ़ करने का सुझाव प्रस्तुत किया। इसी क्रम में 1979 में क्रेफिकार्ड समिति का गठन किया गया। इस समिति ने ग्रामीण साख को सुदृढ़ करने में क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों के महत्त्व को रेखांकित किया। इस समिति के अनुसार ग्रामीण क्षेत्रों में बहुउद्देशीय एजेन्सी के रूप में ग्रामीण बैंकों की भूमिका को बढ़ाया जिससे क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों का क्षेत्र व्यापक हो सका। क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों की कार्यप्रणाली को और अधिक महत्त्वपूर्ण बनाने के लिए 1989 में खुसरो समिति का गठन किया गया। इस समिति के आधार पर बैंकिंग सेवाओं को ग्रामीण क्षेत्रों में दूर-दराज तक ले जाने का उल्लेखनीय कार्य किया।

उदारीकरण तथा वैश्वीकरण के दौर में इन बैंकों को और अधिक उपयोगी बनाये जाना आवश्यक समझा गया। इस सन्दर्भ में वर्ष 2004 में केलकर समिति का गठन किया गया। इस समिति ने क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों के उद्देश्यों की पुन: समीक्षा की तथा अपनी सिफारिशों में प्रत्येक क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक के पूँजी आधार को बढ़ाने का सुझाव दिया गया। वर्तमान में देश के ग्रामीण क्षेत्रों के विकास हेतु ये बैंक बढ़-चढ़ कर कार्य कर रहे हैं।

प्र.2. वाणिज्यिक बैंकों के कार्यों का वर्णन कीजिए।
Mention the works of Commercial Banks.

उत्तर

वाणिज्यिक बैंकों के कार्य
(Works of Commercial Banks)

वाणिज्यिक बैंकों द्वारा सम्पादित किये जाने वाले कार्यों को निम्नलिखित रूप में स्पष्ट किया जा सकता है—

1. **बैंक जमा**—वाणिज्यिक बैंक सीधे तौर पर जनता या ग्राहकों के सम्पर्क में रहते हैं। इसीलिए लोगों की बचत या अन्य स्रोतों से प्राप्त रुपये को जमा करते हैं। ये बैंक खाता प्रणाली के अन्तर्गत ही लोगों के रुपयों को अपने यहाँ जमा करते हैं। वाणिज्यिक बैंक तीन प्रकार की जमाएँ करते हैं—1. बचत जमा, 2. चालू जमा तथा 3. मियादी जमा।

   प्रथम प्रकार की जमा करने के लिए उस व्यक्ति के नाम बैंक में बचत खाता खोला जाता है तथा इस खाते में ही वह व्यक्ति अपनी बचतों को जमा करता रहता है। आवश्यकता पड़ने पर इस बचत जमा को निकालकर अपने कार्य सम्पादित करता है। इस प्रकार की जमा धनराशि पर बैंक ग्राहक को एक निर्धारित ब्याज भी देता है। इस खाते से सप्ताह में केवल दो बार रुपया निकाला जा सकता है।

   द्वितीय प्रकार के अन्तर्गत बैंकों द्वारा जनता तथा व्यापारियों से चालू जमा प्राप्त करती हैं। इस प्रकार की जमाओं को कुछ ही समय बाद निकाला जा सकता है। इस प्रकार की जमाएँ वाणिज्यिक या व्यापारिक कार्यों के लिए की जाती है। इस प्रकार की जमाओं पर बैंक द्वारा बहुत कम ब्याज दिया जाता है।

   तीसरे प्रकार से वाणिज्यिक बैंक मियादी जमा प्राप्त करती हैं। मियादी जमाएँ दीर्घकाल के लिए पूर्व निर्धारित समयावधि के लिए ली जाती है। इस समयावधि से पूर्ण जमा राशि को निकाला नहीं जाता है। आवश्यकता पड़ने पर इस मियादी जमा पर ऋण उपलब्ध कराया जाता है। इसीलिए इस प्रकार की जमाओं पर अपेक्षाकृत अधिक ब्याज दिया जाता है। यह मियादी जमा बैंकिंग साख-सृजन तथा माँग की पूर्ति के लिए अत्यधिक उपयोगी होती है।
2. **बैंक उधार**—वाणिज्यिक बैंकों का दूसरा महत्त्वपूर्ण कार्य ऋण देना है। ये बैंक सामान्य स्तर पर व्यापारिक क्रिया-कलापों के उद्देश्य हेतु ऋण देती हैं लेकिन यह ऋण अल्पकालीन होता है; जैसे—तीन माह, छ: माह या एक वर्ष के लिए। जब किसी व्यक्ति या व्यापारी को रुपये की आवश्यकता होती है तब वह बैंक में सम्पर्क करता है, बैंक को यह पूर्ण विश्वास हो जाए कि बैंक की शर्तों पर ऋण की वापसी हो जाएगी तथा ऋण का प्रयोग उद्देश्यपूर्ण होगा तो बैंक उसे ऋण प्रदान करती है। बैंक इस ऋण पर सामान्यत: जमा ब्याज से अधिक ब्याज वसूल करती है। बैंक इस उधार देने वाली राशि के बदले में जमानत लेता है; जैसे—जमीन, मकान तथा अन्य परिसम्पत्ति से सम्बन्धित कागजात आदि।
3. **वस्तुओं की सुरक्षा सम्बन्धित कार्य**—बचत जमा तथा ऋण उपलब्धता के अलावा वाणिज्यिक बैंक जनता की मूल्यवान वस्तुओं की भी सुरक्षा करता है। वाणिज्यिक बैंकों में लॉकर्स की व्यवस्था की गयी है जिसमें लोगों के सोने-चाँदी के गहने व दूसरी अन्य मूल्यवान वस्तुएँ रखी जाती हैं। बैंक इन लोगों से वस्तुओं की सुरक्षा हेतु कुछ किराया

TOUCH 'n' PASS

स्वरूप धनराशि भी वसूलता है। लॉकर्स की एक चाभी ग्राहक के पास तथा एक चाभी बैंक के पास रहती है। व्यक्तियों को उनकी समस्याओं से खोने, रख-रखाव तथा चोरी जैसी समस्याओं से छुटकारा मिल जाता है।

4. **विकासात्मक कार्यों में सहयोग**—वर्तमान में वाणिज्यिक बैंकों द्वारा विकासात्मक कार्यों में अत्यधिक सहयोग किया जा रहा है। सरकारी योजनाओं के क्रियान्वयन में वित्तीय समावेशन बड़े स्तर पर किया जा रहा है। विकास सम्बन्धी योजनाओं को सीधे तौर पर वाणिज्यिक बैंकों से जोड़ा गया है तथा इन विकास योजनाओं में वित्तीय गड़बड़ी रोकने के लिए बैंकों का सहयोग लिया जा रहा है तथा बैंकों द्वारा अर्थव्यवस्था पर नियन्त्रण करने का प्रयास किया गया है। सरकार कर्मचारियों का वेतन वितरण, धन का शीघ्र हस्तान्तरण, सरकारी कार्यों तथा अन्य प्रपत्रों की बिक्री का कार्य वाणिज्यिक बैंकों द्वारा किया जा रहा है। इसके साथ बीमा किस्तों का भुगतान, चालान जमा करना, सरकारी बॉण्ड खरीदना तथा उनके आदेशानुसार बेचना आदि कार्यों में वाणिज्यिक बैंकों की सहभागिता बढ़ी है।
5. **हामीदारी**—वाणिज्यिक बैंकों द्वारा हामीदारी भी की जाती है। ये बैंक नये हिस्सों, विशेषकर ऋण-पत्रों तथा अधिमान हिस्सों की हामीदारी करते हैं इसके लिए वाणिज्यिक बैंकों द्वारा व्यापारी बैंकिंग स्थापित किये हैं। ये भारतीय औद्योगिक घरानों और विदेशी फर्मों के बीच स्थगित भुगतान समझौते कराने का कार्य करते हैं। वाणिज्यिक बैंक अनुषंगी कम्पनियों द्वारा एक बड़े ग्राहक समूह को बहुत-सी सेवाएँ उपलब्ध कराती हैं।
6. **खुदरा बैंकिंग**—वाणिज्यिक बैंक द्वारा खुदरा बैंकिंग का कार्य भी किया जा रहा है। खुदरा बैंकिंग से हमारा तात्पर्य गृह-ऋण, चिर स्थायी उपयोग ऋण जैसे टेलीविजन, शिक्षा ऋणों से है। ये ऋण दीर्घकालीन भी होते हैं। वर्तमान में खुदरा बैंकिंग का तेजी से विकास हुआ है। नवीन तकनीकी तथा यान्त्रिक स्वचालन के कारण इस प्रणाली को अत्यधिक बल मिला है।
7. **आढ़त क्रियाएँ**—वाणिज्यिक बैंकों द्वारा आढ़त क्रियाएँ भी सम्पन्न की जाती हैं। यह एक नवीन सेवा है। इस क्रिया के अन्तर्गत बैंक अपने बही खाता ऋणों को शीघ्र प्राप्त कर लेते हैं और खाते में प्राप्त होने वाली राशि किसी अनुषंगी कम्पनी को बेच देती है, जिसे आढ़तियाँ कहा जाता है। भारतीय रिजर्व बैंक द्वारा वाणिज्यिक बैंकों को अनुषंगी कम्पनी कायम करने की स्वीकृति दे रखी है। इन बैंकों ने अपनी क्रियाओं का विविधीकरण अनुषंगी कम्पनियाँ कायम करके बहुत-सी वित्तीय सेवाओं में कर लिया है। भारतीय स्टेट बैंक तथा केनरा बैंकों द्वारा आढ़त क्रियाओं के लिए अपनी अनुषंगी कम्पनियाँ स्थापित की हैं।

प्र.3. स्वतन्त्रता के बाद भारत में वाणिज्यिक बैंकों के विकास को विस्तार से लिखिए।
Write in detail the development of commercial banks in India after independence.

उत्तर

स्वतन्त्रता के बाद वाणिज्यिक बैंकों का विकास
(Development of Commercial Banks after Independence.)

स्वतन्त्रता के बाद भारतीय समाज की आवश्यकताओं के अनुरूप कार्य करने के योग्य बनाया जाये इसी दिशा में मार्च 1949 को भारतीय बैंकिंग अधिनियम पारित किया गया जिसके अन्तर्गत वाणिज्यिक बैंकों के निरीक्षण का अधिकार भारतीय रिजर्व बैंक को दिया गया। इसके बाद वाणिज्यिक बैंक समाज के लिए अत्यधिक उपयोगी हो गये। बैंक प्रणाली को अत्यधिक सबल बनाने के लिए भारतीय रिजर्व बैंक द्वारा छोटे बैंकों के बड़े बैंकों के साथ विलयन की नीति अपनायी गयी जिसके परिणामस्वरूप 1950-51 के बाद देश में वाणिज्यिक बैंकों की संख्या में लगातार कमी दर्ज की गई 1950-51 से 1970-71 समयावधि में वाणिज्यिक बैंकों की संख्या 430 से कम होकर केवल 87 रह गयी। 1960-61 में अनुसूचित बैंकों की संख्या 256 थी जो नवम्बर 1980 में केवल 4 रह गयी। 1950 के बाद बैंक जमाओं में भी निरन्तर वृद्धि हुई।

1 जुलाई, 1955 को इम्पीरियल बैंक ऑफ इण्डिया का राष्ट्रीयकरण किया गया तथा इसका नाम बदलकर स्टेट बैंक ऑफ इण्डिया कर दिया गया। इसके साथ 8 अन्य बैंकों को सहायक बैंकों के रूप में बदलकर 'स्टेट बैंक समूह' गठित किया गया।

स्टेट बैंक ऑफ बीकानेर, स्टेट बैंक ऑफ जयपुर, स्टेट बैंक ऑफ हैदराबाद, स्टेट बैंक ऑफ इन्दौर, स्टेट बैंक ऑफ मैसूर, स्टेट बैंक ऑफ सौराष्ट्र, बैंक ऑफ पटियाला, स्टेट बैंक ऑफ ट्रावनकोर, जुलाई 2008 में स्टेट बैंक ऑफ सौराष्ट्र तथा जून 2009 को स्टेट बैंक ऑफ इन्दौर का स्टेट बैंक ऑफ इण्डिया में विलय के परिणामस्वरूप SBI समूह में बैंकों की संख्या वर्तमान में केवल 5 रह गयी है। 19 जुलाई, 1969 को 14 बड़े वाणिज्यिक बैंकों का राष्ट्रीयकरण कर दिया गया।

TOUCH 'n' PASS

सेन्ट्रल बैंक ऑफ इण्डिया, बैंक ऑफ इण्डिया, पंजाब नेशनल बैंक, केनरा बैंक, यूनाइटेड कॉमर्शियल बैंक, सिंडीकेट बैंक, बैंक ऑफ बड़ौदा, यूनाइटेड बैंक ऑफ इण्डिया, यूनियन बैंक ऑफ इण्डिया, देना बैंक, इलाहाबाद बैंक, इण्डिया बैंक, इण्डियन ओवरसीज बैंक, बैंक ऑफ महाराष्ट्र, पुन: 15 अप्रैल, 1980 को निजी क्षेत्र के 6 बैंकों का राष्ट्रीयकरण किया गया। आन्ध्रा बैंक, पंजाब एण्ड सिंध बैंक, न्यू बैंक ऑफ इण्डिया, विजया बैंक, कॉर्पोरेशन बैंक, ओरिएंटल बैंक ऑफ कॉमर्स। 4 सितम्बर, 1993 को भारत सरकार द्वारा न्यू बैंक ऑफ इण्डिया का विलय पंजाब नेशनल बैंक में कर दिया गया। इससे देश में राष्ट्रीयकृत वाणिज्यिक बैंकों की संख्या 20 से घटकर 19 रह गयी लेकिन अब (2023) में केवल 12 राष्ट्रीयकृत बैंक हैं।

भारत में वाणिज्यिक बैंकों का वर्गीकरण संवैधानिकता के आधार पर किया गया है जो इन बैंकों के विकास में भी सहायक रहा है।

1. अनुसूचित वाणिज्यिक बैंक
2. गैर-अनुसूचित वाणिज्यिक बैंक

वर्ष 1990-91 में अनुसूचित वाणिज्यिक बैंकों की संख्या 271 थी जो वर्ष 2000-2001 में बढ़कर 297 हो गयी। वर्ष 2008-09 में इन बैंकों की संख्या घटकर 165 रह गयी। इन अनुसूचित वाणिज्यिक बैंकों 82 क्षेत्रीय बैंक (आर०आर०बी०), 19 राष्ट्रीयकृत बैंक, भारतीय स्टेट बैंक समूह के 5 बैंक, 1 आई०डी०बी०आई० बैंक, 32 विदेशी बैंक तथा 26 निजी बैंक शामिल हैं। अनुसूचित वाणिज्यिक बैंकों की संख्या तथा जमा उधार के विकास को निम्न तालिका द्वारा आसानी से समझा जा सकता है—

अनुसूचित वाणिज्यिक बैंकों का विकास
(Development of Scheduled Commercial Banks)

वर्ष	बैंक संख्या	बैंक जमा (करोड़ रु०)	बैंक उधार (करोड़)
1950-51	430	820	580
1970-71	73	5910	4690
1990-91	271	192541	116300
2000-01	297	962610	511430
2007-08	172	3196941	2361916
2008-09	165	3834110	2775549
2011-12	–	5909082	4611852

स्रोत—1. RBI-Report on currency and finance 2000-01
2. Hand book statistics on Indian economy (2009-2010)

देश में मात्र 4 गैर-अनुसूचित वाणिज्यिक बैंकों का ही विकास हो सका है। गैर-अनुसूचित वाणिज्यिक बैंकों को भारतीय रिजर्व बैंक से रियायती प्रेषण तथा उधार लेने की सुविधा प्राप्त नहीं होती है, क्योंकि इन गैर अनुसूचित वाणिज्यिक बैंकों को निश्चित राशि भारतीय रिजर्व बैंक के पास न रखकर अपने पास रखने का अधिकार है।

भारत में वाणिज्यिक बैंकों के विकास का अनुमान इस बात से भी लगाया जा सकता है कि भारतीय बैंक विदेशों में कार्य कर रहे हैं। 30 जून, 2010 को 52 देशों में भारतीय बैंक कार्य कर रहे थे जिनमें सार्वजनिक तथा निजी क्षेत्र के बैंक भी शामिल थे। विदेशों में सार्वजनिक क्षेत्र के 16 तथा निजी क्षेत्र के 6 भारतीय बैंक अपनी सुविधाएँ प्रदान कर रहे हैं। इन भारतीय बैंकों के विदेशों में 232 शाखाएँ तथा 55 प्रतिनिधि कार्यालय संचालित थे। 30 जून, 2010 को विदेशों में कार्यरत सार्वजनिक क्षेत्र के बैंक में निम्न बैंक शामिल थे—भारतीय बैंक, बैंक ऑफ बड़ौदा, बैंक ऑफ इण्डिया, सिंडिकेट बैंक तथा यूको बैंक।

28 देशों में भारतीय स्टेट बैंक के 42 शाखा कार्यालय, 5 सहायक संगठन, 4 संयुक्त उद्यम तथा 8 प्रतिनिधि कार्यालय हैं। बैंक ऑफ बड़ौदा के 46 शाखा कार्यालय, 8 सहायक बैंक, 1 संयुक्त उपक्रम बैंक तथा 3 प्रतिनिधि कार्यालय हैं। बैंक ऑफ इण्डिया की 14 देशों में 24 शाखाएँ हैं, 3 सहायक संगठन, 1 संयुक्त उद्यम तथा 5 प्रतिनिधि कार्यालय हैं। भारतीय बैंकों के इंग्लैण्ड में सबसे अधिक शाखा कार्यालय हैं, यहाँ पर 18 शाखा कार्यालय हैं। हांगकांग, फिजी तथा मॉरीशस में 7-7 शाखाएँ हैं। बहरीन, मॉरीशस केमैन द्वीप समूह और बहामास में विदेशी बैंकिंग इकाइयाँ स्थापित हैं।

विदेशी बैंक—भारत में विदेशी वाणिज्यिक बैंक भी संचालित हैं। सिटी बैंक की तरह, एचएसवीसी, स्टैण्डर्ड बैंक आदि विदेशी बैंकों की शाखाएँ संचालित हैं जिन्हें विदेशों में निगमित किया गया है। विदेशी बैंकों की शाखाएँ भारत में स्थानीय बैंकों की तरह ही

TOUCH 'n PASS

वित्तीय सुविधाएँ प्रदान करती हैं। भारत में शाखाओं की संख्या सीमित होने के कारण इनका उद्देश्य भारतीय वाणिज्यिक बैंकों से अलग प्रतीत होता है। ये बैंक नई प्रौद्योगिकी लाने का कार्य करते हैं तथा अन्तर्राष्ट्रीय उत्पादों को घरेलू बाजार में परिचित कराने के साथ उनका समावेशन कराने का कार्य करते हैं। ये विदेशी बैंक भारत में स्थानीय बैंकिंग उद्योग के साथ वित्तीय केन्द्रों में विदेशों में होने वाले विकास के साथ तालमेल पूँजी बाजार में पहुँच जाने में भी सहायक हैं। भारत सरकार द्वारा जनता को बैंकिंग सुविधाएँ अधिक तथा सुलभ बनाने एवं वैश्वीकरण की प्रक्रिया के तहत विदेशी बैंकों की संख्या बढ़ाने पर जोर दिया गया है।

बैंकिंग नियमन अधिनियम, 1949 के द्वारा भारत में विदेशी बैंकों पर अनेक प्रकार के प्रतिबन्ध लगाये जाते हैं। अधिनियम की धारा 11(12) के अनुसार प्रत्येक विदेशी बैंक को भारत में कार्यालय रखने के लिए चुकता पूँजी तथा आरक्षित कोष के रूप में न्यूनतम 15 लाख की राशि रिजर्व बैंक के पास रखनी होगी। विदेशी बैंक के फेल होने पर चुकता पूँजी या आरक्षित कोष पर अधिकार प्रथमत: भारतीय जमाकर्ताओं का होगा। इसके साथ कुल जमा राशि का न्यूनतम 75 प्रतिशत भाग भारत में ही रखना होगा या निवेश करना होगा। प्रत्येक विदेशी बैंक को भारतीय रिजर्व बैंक से लाइसेन्स लेना आवश्यक है। इन बैंकों की अपनी अंकेषण रिपोर्ट सहित कारोबार का विवरण भारतीय रिजर्व बैंक को भेजना होता है। भारतीय रिजर्व बैंक को किसी भी विदेशी बैंक का निरीक्षण करने का अधिकार है। अधिनियम संशोधन, 1962 के अनुसार इन बैंकों को भी न्यूनतम नकद कोषानुपात भारतीय रिजर्व बैंक के पास रखना होता है। विदेशी बैंक द्वारा उपार्जित शुद्ध लाभ का 20 प्रतिशत भाग भारत में ही रखा जाएगा तथा इसे हिसाब में दिखाया जाएगा। इन विदेशी बैंकों पर सामाजिक नियन्त्रण भी रखा जाता है। बैंकों का पूँजीगत आधार सुदृढ़ करने के उद्देश्य से विदेशी बैंकों के लिए 8 प्रतिशत पूँजी पर्याप्तता का मानदण्ड निर्धारित किया गया जिन्होंने 31 मार्च, 1994 तक प्राप्त कर लिया था। मार्च 2003 के अन्त में कुल अनुसूचित वाणिज्यिक बैंकों की कुल आस्तियों में विदेशी बैंकों का हिस्सा 6.7 प्रतिशत था। इनके अग्रिमों के सम्बन्ध में अनर्जक परिसम्पत्तियों का अनुपात 5.2 प्रतिशत था।

प्र.4. साख की परिभाषाएँ, महत्त्व और कार्यों का वर्णन कीजिए।
Mention the definitions, importance and works of credit.

उत्तर

साख की परिभाषाएँ और महत्त्व
(Definitions and Importance of Credit)

परिभाषाएँ—विभिन्न अर्थशास्त्रियों एवं विद्वानों द्वारा साख को निम्न शब्दों में परिभाषित किया गया है।

जेवान्स (Jevons) के अनुसार, "साख शब्द का अर्थ भुगतान को स्थगित करना है।"

थॉमस (Thomas) ने इसे परिभाषित करते हुए कहा है, "साख वह विश्वास है जिसके आधार पर एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति को अपनी बहुमूल्य वस्तुएँ एवं सेवाएँ देता है, भले ही यह वस्तुएँ, मुद्रा, सेवा तथा साख मुद्रा क्यों न हों और आशा करता है कि वह व्यक्ति इनको वापस लौटा देगा।"

जीड (Gide) के शब्दों में, "साख एक ऐसा विनिमय कार्य है जो एक निश्चित अवधि के उपरान्त भुगतान करने पर पूर्ण होता है।"

उपरोक्त परिभाषाओं में साख को विश्वास पर आधारित स्थगित भुगतान माना गया है किन्तु साख को व्यक्ति के उधार प्राप्त करने की योग्यता की तरह **किन्ले** (Kinley) ने साख को निम्नवत् परिभाषित किया है। "साख से हमारा अभिप्राय किसी भी व्यक्ति की उस शक्ति से होता है जिसके द्वारा वह अन्य किसी व्यक्ति को भविष्य में भुगतान की प्रतिज्ञा पर अपनी आर्थिक वस्तुएँ समर्पित करने के लिए प्रेरित करता है। अत: साख ऋणी का एक गुण अथवा शक्ति है।"

इसे अधिकार की सीमा में लाते हुए **केन्ट** (Kent) ने कहा है, "साख की परिभाषा वस्तुओं के तात्कालिक हस्तान्तरण के कारण, माँग पर अथवा भविष्य में किसी समय पर भुगतान पाने के अधिकार अथवा भुगतान करने के दायित्व के रूप में की जा सकती है।"

महत्त्व—वर्तमान आर्थिक परिदृश्य में साख को व्यावसायिक संगठनों की प्राण-वायु कहा जाता है। हौट्रे तथा विलिस (R.G. Hawtrey and H.P. Willis) ने साख को वर्तमान आर्थिक प्रणाली की आधारशिला कहा है।

साख के महत्त्व को साख से प्राप्त होने वाले लाभों द्वारा समझा जा सकता है जो कि निम्न प्रकार है—

1. **पूँजी की उत्पादन शक्ति में वृद्धि**—जैसा कि मिल (J.S. Mill) ने कहा है कि यद्यपि साख मुद्रा द्वारा पूँजी का एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति को हस्तान्तरण करना होता है किन्तु यह हस्तान्तरण उन व्यक्तियों को किया जाता है जो पूँजी का उत्पादक उपयोग कर सकते हैं। ब्याज पर उद्यम कर्ताओं को पूँजी उधार मिल जाने से इसका उत्पादन में वृद्धि के उद्देश्य से उपयोग करना सम्भव हो जाता है। यद्यपि साख मुद्रा का व्यापक प्रयोग होने से समस्त पूँजी की मात्रा में कोई परिवर्तन नहीं होता है। परन्तु उत्पादन क्षमता का उपयोग होने पर अभीष्टतम उत्पादन सम्भव हो जाता है।

2. **सरल भुगतान**—साख के कारण बैंकों आदि संस्थाओं का जन्म हुआ है जिनके माध्यम से भुगतान करना सरल हो गया है। साख-पत्रों के प्रयोग से न केवल देशी और विदेशी भुगतान सरलता से तथा सुरक्षापूर्ण तरीके से किये जा सकते हैं वरन् विनिमय के माध्यम से आकार में वृद्धि होती है जिससे आर्थिक/व्यावसायिक सुगमता की उपलब्धि होती है।
3. **उपयोग में वृद्धि**—बहुत-सी व्यापारिक संस्थाएँ किश्तों पर माल उधार देती हैं। इससे उपभोक्ता साख का निर्माण होता है, वस्तुओं की माँग बढ़ती है जिसके कारण उत्पादन में वृद्धि होती है तथा जीवन स्तर में सुधार के साथ समाज का उन्नयन होता है।
4. **व्यापार की उन्नति**—साख के कारण घरेलू तथा विदेश व्यापार में वृद्धि होती है, क्योंकि व्यापारिक आदान-प्रदान प्राय: साख तथा बैंकों के माध्यम से ही किया जाता है।
5. **बचत का प्रोत्साहन**—जनता की बचत जो कि अन्यथा निष्क्रिय ही रह जाती उसे ब्याज के लोभ में जनता बैंक में जमा करती है। इसके परिणामस्वरूप देश में पूँजी की मात्रा में वृद्धि होती है।
6. **कीमतों में स्थिरता**—कीमतों में वृद्धि होने पर केन्द्रीय बैंक द्वारा साख संकुचन कर उन पर नियन्त्रण किया जा सकता है और कीमतों के गिर जाने पर साख का प्रसार कर कीमतों को बढ़ाया जा सकता है।
7. **मुद्रा प्रणाली में लोच**—मुद्रा की मात्रा में तात्कालिक बदलाव करना सम्भव नहीं है। बैंक देश में व्यापार तथा उद्योगों की मौद्रिक जरूरतों के अनुसार साख की मात्रा का विस्तार अथवा संकुचन करते हैं जिससे देश की मुद्रा प्रणाली में लचक बनी रहती है।
8. **आर्थिक विकास में सहायक**—साख के प्रयोग के द्वारा ही सरकारें अपनी आय तथा व्यय के मध्य के घाटे को पूरा करती हैं। हीनार्थ प्रबन्धन (Deficit Financing) एवं सार्वजनिक ऋणों द्वारा सरकार विकास के व्यय का एक बड़ा भाग प्राप्त करती है।
9. **आर्थिक संकट से मुक्ति**—युद्ध और अन्य बड़ी आपदाओं से उत्पन्न स्थिति से उबरने के लिए सरकार ऋण द्वारा अपने साधनों में वृद्धि कर सकती है।
10. **अर्थव्यवस्था पर नियन्त्रण**—केन्द्रीय बैंक वाणिज्यिक बैंकों को दी जाने वाली साख की मात्रा तथा दिशा में नियमित तरीके से परिवर्तन करके इसे आर्थिक विकास की जरूरतों के अनुकूल कर सकता है।

साख के प्रकार (Types of Credit)

साख अनेक प्रकार के होते हैं। इसके विभिन्न रूपों का वर्गीकरण कई आधारों पर किया जा सकता है—

1. **स्रोत आधारित** (Source Based)—साख की प्राप्ति के स्रोत (अथवा ऋणदाता) के आधार पर साख तीन प्रकार की होती है—
   (अ) **व्यक्तिगत अथवा गैर-संस्थागत साख**—जिसे उन व्यक्तियों से प्राप्त किया जाता है जो ऋणों के लेन-देन का व्यवसाय करते हैं परन्तु साथ ही कुछ अन्य व्यवसाय भी करते हैं।
   (ब) **संस्थागत साख**—जिसे बैंकों तथा अन्य ऐसी वित्तीय संस्थाओं से प्राप्त किया जाता है जिनका व्यवसाय ऋणों का लेन-देन करना ही है।
   (स) **व्यापारिक साख**—जो व्यापारियों द्वारा वस्तुओं की उधार बिक्री के रूप में प्राप्त की जाती है।
2. **प्रयोग आधारित** (Use Based)—साख का प्रयोग उपभोक्ता, व्यवसाय, उद्योग तथा सरकार द्वारा किया जाता है। इस प्रकार उपभोक्ताओं द्वारा अपनी उपभोग सम्बन्धी आवश्यकताओं की प्राप्ति के लिए प्राप्त किये गये ऋण उपभोक्ता साख कहलाते हैं। ऐसे ऋण जिनका उपयोग उत्पादन के लिए किया जाता है, उत्पादन साख कहलाते हैं।
   विभिन्न व्यवसायियों द्वारा लिये गये ऋण व्यावसायिक साख कहे जाते हैं। औद्योगिक साख का प्रयोग उद्योगपतियों द्वारा तथा कृषि साख का प्रयोग किसानों द्वारा उत्पादन में वृद्धि के लिए किया जाता है। उत्पादन के लिए प्रयोग किये गये ऋणों से लाभ यह होता है कि इनका भुगतान करने में ऋणियों को कोई परेशानी नही होती क्योंकि उनकी आय तथा भुगतान करने की क्षमता में साख के प्रयोग से वृद्धि होती है। सार्वजनिक साख के रूप में सरकार द्वारा भी जनता तथा बैंकों से ऋण लिये जाते हैं जिसका प्रयोग सरकार द्वारा अपने आय तथा व्यय के घाटे की पूर्ति के लिए किया जाता है।
3. **अवधि आधारित** (Time Based)—यदि साख थोड़े समय के लिए दी जाए तो इसे अल्पकालीन साख कहते हैं। इसकी अवधि प्राय: एक वर्ष की होती है। किसी भी समय माँग पर देय होने पर इसे माँग साख (Demand Credit)

TOUCH 'n' PASS

कहते हैं। 1 से 5 वर्ष तक की अवधि के लिए माध्यमकालीन साख तथा इससे अधिक अवधि के ऋण दीर्घकालीन साख कहलाते हैं।

4. **धरोहर आधारित** (Security Based)—धरोहर अथवा जमानत (Security) के अनुसार जिन ऋणों के पीछे यथेष्ट मूल्य की सम्पत्ति जमानत के रूप में रखी रहती है, उन्हें पूर्ण सुरक्षित साख (Fully Secured Credit) कहते हैं। ऋणों के पीछे कोई जमानत न रखकर केवल ऋणी की व्यक्तिगत जमानत पर दी गयी साख असुरक्षित साख (Unsecured Credit) कहलाती है। इन दोनों प्रकार के साख के बीच एक प्रकार की साख ऐसी भी होती है जिसके पीछे साख के मूल्य के कम की सम्पत्ति धरोहर के रूप में रखी जाती है, इसे अंशत: सुरक्षित साख (Partially Secured Credit) कहते हैं।

प्र.5. साख निर्माण को समझाइए तथा बैंकों द्वारा साख निर्माण की विवेचना कीजिए।
Explain Credit Creation and describe creation of credit by banks.

उत्तर

साख निर्माण
(Credit Creation)

बैंक केवल मुद्रा का लेन-देन ही नहीं करते बल्कि साख का व्यवहार भी करते हैं। यही कारण है कि बैंक को साख का सृजनकर्ता भी कहा जाता है। बैंक देश की बिखरी और सुप्त सम्पत्ति को इकट्ठा करके देश में उत्पादन के कार्यों में लगाते हैं जिससे पूँजी निर्माण को प्रोत्साहन मिलता है और उत्पादन की प्रगति में सहायता मिलती है। निम्नलिखित दो शीर्षकों में हम यह ज्ञात कर पाएँगे कि साख निर्माण कितना अर्थपूर्ण है।

बैंकों द्वारा साख निर्माण
(Creation of Credit by Banks)

वर्तमान अर्थव्यवस्था में साख के महत्त्व की व्याख्या करने के पश्चात् यह आवश्यक हो जाता है कि हम देखें कि साख का निर्माण किस प्रकार होता है तथा उसकी सीमाएँ क्या हैं?

सेयर्स के अनुसार, "बैंक केवल मुद्रा जुटाने वाली संस्था नहीं है, अपितु एक महत्त्वपूर्ण अर्थ में वे मुद्रा के निर्माता भी है।" अधिकांश मुद्राशास्त्री—हार्टले विदर्स, केन्स, सेयर्स, हाम आदि यह स्वीकार करते हैं कि बैंक का महत्त्वपूर्ण कार्य साख का निर्माण करना है।

केन्द्रीय बैंक द्वारा साख निर्माण (Creation of Credit by Central Bank)—किसी भी देश में विधिग्राह्य मुद्रा का निर्माण वहाँ की सरकार तथा केन्द्रीय बैंक द्वारा किया जाता है। एक केन्द्रीय बैंक द्वारा मुद्रा निर्गमन करने पर मुद्रा के बराबर मूल्य का धातुकोश रखा जाता था किन्तु अब यह कोष शत-प्रतिशत नहीं रखा जाता। आनुपातिक-धातु-आधार रखकर बाकी का मुद्रा निर्गमन प्रतिभूति के आधार पर कर दिया जाता है। अत: वह मुद्रा, जो कि धातु कोष आधार-रहित है, केन्द्रीय बैंक की साख के आधार पर ही प्रचलन में रहती है। यह कहा जा सकता है कि केन्द्रीय बैंक द्वारा निर्गमित नोट साख पत्र ही हैं परन्तु इनके विधिग्राह्य होने के कारण इन्हें पूर्णत: साख पत्र नहीं कहा जा सकता।

वाणिज्यिक बैंकों द्वारा साख निर्माण (Creation of Credit by Commercial Banks)—बैंक अपनी कुल जमाराशि (Cash Deposits) से कई गुना अधिक राशि उधार देकर साख मुद्रा का निर्माण करते हैं।

केन्स (Keynes) तथा सी०ए० फिलिप्स (C.A. Phillips) के विचारों के आधार पर प्रो० हाम (Halm) ने दो प्रकार की जमाराशियों का उल्लेख किया है—प्रारम्भिक जमा (Primary Deposits) तथा व्युत्पन्न जमा (Derivative Deposits)। यहाँ पर प्रारम्भिक जमा का तात्पर्य वह जमा राशियाँ हैं जिन्हें जमाकर्ता नकदी या वास्तविक मुद्रा के रूप में बैंक में जमा करते हैं। यह राशियाँ नकद जमा (Cash Deposits) या निष्क्रिय जमा भी कहलाती हैं। व्युत्पन्न जमा वह राशि है जो बैंक द्वारा ऋण देने के उद्देश्य से उधार लेने वाले के नकद साख खाते (Cash Credit Account) में लिख दी जाती है। यह साख जमा (Credit Deposit) या गौण जमा (Secondary Deposit) भी कहलाती है। बैंक नकद जमा के आधार पर ही साख जमा का निर्माण करते हैं। नकद जमा का एक निश्चित हिस्सा कोष में रखकर बाकी से साख जमा का निर्माण होता है। **हाम** के अनुसार, "व्युत्पन्न जमा का निर्माण ही साख का सृजन है।"

एक बैंक द्वारा साख निर्माण (Creation of Credit by a Bank)—बैंक अपने अनुभव से यह जानता है कि उसके पास जमा किए हुए पैसे को जमाकर्ता, हालाँकि वो ले सकता है, एक साथ वापस नहीं लेता। माना कि जमाकर्ता अपने इस बैंक में ₹ 100 जमा करता है। बैंक इस राशि का निर्धारित प्रतिशत नकद के रूप में अपने पास रखकर शेष रकम किसी को ऋण के रूप में दे देता है।

उदाहरण स्वरूप मानकर चलते हैं कि बैंक ने A व्यक्ति की जमा राशि का 20 प्रतिशत भाग (₹ 20) नकद रख लिये तथा शेष ₹ 80 व्यक्ति B को ऋण के रूप में दे दिये। ऋण लेने वाला व्यक्ति सम्पूर्ण ऋण का आहरण एक साथ नहीं करता वरन् यह ऋण राशि उसके ऋण खाते में लिख मात्र दी जाती है। इस प्रकार बैंक के जमा धन में ₹ 80 की बढ़ोतरी हो जाती है। यह राशि व्युत्पन्न जमा है।

अब बैंक यह मानकर कि B व्यक्ति को दिया गया ₹ 80 का जो ऋण है B एक साथ न निकालकर अपनी आवश्यकता के अनुसार समय-समय पर निकालेगा, बैंक उसके ₹ 80 का 20 प्रतिशत (₹ 16) नकद रखकर ₹ 64 व्यक्ति C को ऋण रूप में दे देगा।

बैंक का यह क्रम एक निश्चित सीमा तक चलता ही जाएगा और बैंक ₹ 100 के प्रारम्भिक जमा के आधार पर उसका कई गुणा अधिक ऋण स्वरूप प्रदान करने में समर्थ हो जाएगा।

अनेक बैंकों द्वारा साख निर्माण (Creation of Credit by Many Banks)—यदि उपरोक्त उदाहरण में एक के स्थान पर विभिन्न बैंकों को रखकर देखा जाए और ऋण विभिन्न व्यक्तियों को इन बैंकों से प्राप्त हो तो उक्त उदाहरण का विश्लेषण इस प्रकार किया जा सकता है—

माना कि A बैंक में किसी व्यक्ति की ₹ 1000 की राशि जमा हुई है। वह चाहे तो अपने खाते से यह राशि कभी भी निकाल सकता है परन्तु बैंक अपने अनुभव से यह जानता है कि जमाकर्ता पूरी जमा राशि एक साथ ही समय में वापस नहीं माँगेगा बल्कि वह सम्पूर्ण जमाराशि का थोड़ा हिस्सा ही वापस लेगा।

अब बैंक इस जमाराशि का निर्धारित प्रतिशत नकद रूप में रखकर बाकी रकम अन्य व्यक्तियों को ऋण के रूप प्रदान करेगा। उदाहरण के लिए यह मानकर चलते हैं कि बैंक जमाकर्ता की ₹ 1000 की जमा राशि में से ₹ 200 नकद रखकर ₹ 800 का ऋण दूसरे व्यक्ति को दे देता है।

दूसरा व्यक्ति इस राशि को अन्य बैंक B में जमा कर देता है। बैंक B ₹ 160 रखकर ₹ 640 किसी तीसरे व्यक्ति को ऋण स्वरूप दे देता है। तीसरा व्यक्ति यह ₹ 640 एक अन्य बैंक C में जमा कर देता है। बैंक C भी इसमें से 20 प्रतिशत राशि को जमा रखकर शेष राशि किसी चौथे व्यक्ति को ऋण स्वरूप दे देता है।

बैंक संख्या	नयी जमा राशि	जमा पर रखा गया कोष (20%)	व्युत्पन्न जमा (Derivative Deposit) अथवा ऋण
बैंक A	1000.00	200.00	800.00
बैंक B	800.00	160.00	640.00
बैंक C	640.00	128.00	512.00
बैंक D	512.00	102.40	409.60
बैंक E	409.60	81.91	327.68
बैंक F	327.68	65.53	262.15
बैंक G	262.15	52.43	209.27
बैंक H	209.72	41.64	167.78
A से H का योग	4161.15	822.22	3328.93
अन्य बैंक	838.85	167.78	671.07
पूर्ण योग	5000.00	1000.00	4000.00

विभिन्न बैंकों द्वारा साख निर्माण की प्रक्रिया
(Process of Creation of Credit by Different Banks)

जैसा कि दी गयी तालिका से स्पष्ट है, बैंकिंग प्रणाली के द्वारा कुल ₹ 4000 के व्युत्पन्न जमा (ऋण) का सृजन होगा एवं ₹ 5000 के कुल जमा (सभी बैंकों का योग) प्राप्त होंगे। विचारणीय बात यह है कि यह प्रक्रिया गुणक आकार में बढ़ती है और इसकी पुनरावृत्ति तब तक होती रहती है जब तक सभी बैंकों के द्वारा निर्मित व्युत्पन्न जमाराशियों का योग प्रथम बैंक द्वारा निर्मित

TOUCH 'n PASS

प्रारम्भिक जमा मात्रा का गुणक नहीं हो जाती है। व्युत्पन्न जमा राशियों के योग को प्रारम्भिक जमा कोष की मात्रा से विभाजित करके साख गुणक ज्ञात हो जाता है।

साख गुणक = व्युत्पन्न जमा राशि का योग/प्रारम्भिक जमा कोष की राशि

5 = 4000/800

नकद कोष अनुपात परिवर्तन द्वारा साख निर्माण (Credit creation by changing the Cash Reserve Ratio)—नकद कोष के प्रतिशत में कमी करके बैंक की साख निर्माण क्षमता बढ़ जाती है। उपरोक्त उदाहरण में 20 प्रतिशत न रखकर यदि बैंक मात्र 10 प्रतिशत नकद राशि रखने लगे तो बैंक की साख निर्माण क्षमता में वृद्धि हो जाएगी क्योंकि 90% राशि को व्युत्पन्न जमा के रूप में परिवर्तित किया जा सकेगा।

अधिविकर्ष (Over Draft)—इसके तहत बैंक अपने ग्राहक को जमा राशि से अधिक राशि निकालने की अनुमति दे देता है। इसके परिणामस्वरूप जितनी राशि अधिविकर्ष के रूप में निकाली जाती है उतनी ही मात्रा में साख का निर्माण हो जाता है। इसका प्रयोग बहुत सीमित होता है क्योंकि बैंक द्वारा अधिविकर्ष की सुविधा केवल प्रतिष्ठित ग्राहकों को ही दी जाती है।

प्र.6. साख निर्माण की सीमाओं एवं परिमाणात्मक नियन्त्रण का वर्णन कीजिए।
Mention the limitations of Credit Creation and Quantitative Central.

उत्तर

साख निर्माण की सीमाएँ
(Limitations on Credit Creation)

बैंक एक सीमा तक ही साख का निर्माण कर सकने में सक्षम होते हैं। **प्रो० बेन्हैम** के अनुसार साख निर्माण की तीन सीमाएँ हैं—

(i) विधिग्राह्य मुद्रा की मात्रा।
(ii) मुद्रा की तरलता।
(iii) मुद्रा दायित्व और नकद कोष का अनुपात।

आधुनिक अर्थशास्त्रियों के मतानुसार साख निर्माण को प्रभावित करने वाले तत्त्व निम्नलिखित हैं—

1. **मुद्रा की मात्रा** (Volume of Currency in Circulation)—बैंकों की साख निर्माण शक्ति विधिग्राह्य मुद्रा की कुल मात्रा पर आधारित होती है। विधिग्राह्य मुद्राओं का जितना अधिक निर्गमन और प्रचलन होता है बैंकों की साख निर्माण की शक्ति उतनी ही अधिक होती है। विधिग्राह्य मुद्रा की मात्रा कम होने पर साख का निर्माण भी कम होता है।
2. **मुद्रा स्फीति एवं संकुचन** (Inflation and Deflation)—बैंकों के पास मुद्रा स्फीति की स्थिति में विधिग्राह्य मुद्रा अधिक जमा होती है जिससे बैंकों की साख निर्माण भी अधिक हो जाती है। इसके उलट, मुद्रा संकुचन की स्थिति में नकद कोष कम हो जाता है जिससे बैंकों की साख निर्माण की शक्ति भी कम हो जाती है।
3. **नकद मुद्रा रखने की प्रवृत्ति** (Cash Keeping Tendency)—जिस देश में जनता की प्रवृत्ति कम-से-कम नकद अपने पास रखने की होती है, उस देश में बैंक में नकद जमा अधिक हो जाता है। इससे बैंक की साख निर्माण की शक्ति बढ़ जाती है। इसके विपरीत यदि जनता अपने पास अधिक-से-अधिक नकद मुद्रा रखती है तो वहाँ बैंक जमा कम हो जाता है। इससे बैंक की साख निर्माण शक्ति कम हो जाती है।
4. **नकद कोष का अनुपात** (Cash Reserve Ratio)—बैंकों का अपने पास कुल जमा का एक निश्चित भाग नकद कोष के रूप में रखने की अनिवार्यता होती है। ऐसे ही वह अपने जमाकर्ताओं द्वारा की जाने वाली नकद मुद्रा की माँग को पूरा कर सकते हैं। बैंक के पास नकद कोष रखने की स्थिति में उनकी साख निर्माण की क्षमता अधिक हो जाती है।
   यदि बैंक को अपने पास अधिक नकद मुद्रा रखनी पड़े तो उनकी साख निर्माण की क्षमता कम हो जाएगी। उदाहरण स्वरूप, यदि बैंक अपने पास मात्र 10 प्रतिशत ही नकद कोष रखता है तो वह 90 प्रतिशत धन साख के रूप में प्रचलन में ला सकता है। ऐसी स्थिति में बैंक की साख निर्माण क्षमता बढ़ जाएगी। इसकी अपेक्षा, यदि बैंक में 20 प्रतिशत नकद धन रखने की अनिवार्यता हो तो साख निर्माण क्षमता घटकर 80 प्रतिशत ही शेष रह जाएगी।
5. **राष्ट्रीय साख नीति** (National Credit Policy)—किसी भी देश में केन्द्रीय बैंक साख मुद्रा का नियन्त्रण एवं नियमन करता है। जब केन्द्रीय बैंक या सरकार सस्ती मुद्रा नीति अपनाये तो साख निर्माण अधिक होता है। इसके उलट परिस्थिति में केन्द्रीय बैंक यदि महँगी मुद्रा नीति अपनाये तो साख को नियन्त्रण में रखा जा सकता है।

TOUCH 'n PASS

महँगी मुद्रा नीति के अन्तर्गत बैंक दर, मुक्त बाजार की क्रियाओं, न्यूनतम बैंक आरक्षित अनुपात आदि के माध्यम से केन्द्रीय बैंक द्वारा साख संकुचन किया जाता है। अत: केन्द्रीय बैंक की साख नियन्त्रण नीति से बैंकों की साख निर्माण क्षमता प्रत्यक्ष एवं परोक्ष रूप से प्रभावित होती है।

6. **जमानतों की श्रेष्ठता** (Quality of Securities)—जमानत के आधार पर ही कोई भी बैंक ऋण देता है। यदि बैंक को अधिक श्रेष्ठ जमानत प्राप्त होगी वह अधिक साख का निर्माण कर सकेगा।
प्रो० सेयर्स के अनुसार—"बैंक अपनी मुद्राएँ तत्काल किसी को भी नहीं देते हैं बल्कि केवल उन्हीं को देते हैं जो बैंक को इस प्रकार की सम्पत्तियाँ प्रस्तुत करते हैं जिन्हें बैंक आकर्षक समझता है।"
प्रो० क्राउथर के अनुसार—"वस्तुत: बैंक उसी समय ऋण देता है जबकि उसे अच्छी प्रतिभूतियाँ या सम्पत्तियाँ जमानत के रूप में मिलती हैं।"
इसके विपरीत उचित व श्रेष्ठ जमानत प्राप्त न होने पर बैंक कम साख का निर्माण कर पाता है।
7. **केन्द्रीय बैंक में बैंकों के सुरक्षित कोष** (Cash Reserves of Bank with the Central Bank)—केन्द्रीय बैंक प्रत्येक देश में सूचीबद्ध बैंकों की माँग जमा एवं समय जमा तथा चालू और निश्चितकालीन जमाओं का एक निश्चित भाग सुरक्षित कोष के रूप में अपने पास जमा रखता है। यदि केन्द्रीय बैंक द्वारा अधिक मात्रा में सुरक्षित कोष अपने पास जमा रखा जाता है तो व्यापारिक बैंकों की साख निर्माण की शक्ति कम हो जाती है। इसका कारण यह है कि केन्द्रीय बैंक द्वारा सुरक्षित कोष अधिक मात्रा में अपने पास रखने से बैंकों की मौद्रिक तरलता में कमी हो जाती है।
8. **प्राथमिक जमा** (Primary Deposits)—**प्रो० कीन्स** का यह मत है कि बैंक की साख निर्माण शक्ति उसकी प्रारम्भिक जमाओं की मात्रा पर आधारित है। यदि प्रारम्भिक जमा अधिक हैं तो बैंकों की साख निर्माण क्षमता भी अधिक होगी। प्रारम्भिक जमा कम होने की स्थिति में बैंकों की साख निर्माण की क्षमता भी कम हो जाती है।
9. **आर्थिक विकास** (Economic Growth)—यदि कई देश व्यापार, उद्योग, कृषि, खनिज आदि की दृष्टि से उन्नत है तो वहाँ साख निर्माण की प्रवृत्ति उतनी ही शक्तिशाली होती है। आर्थिक दृष्टि से पिछड़े हुए देश में साख की कम आवश्यकता होती है। यही कारण है कि वहाँ साख निर्माण भी कम होता है। इसी कारण के चलते विकसित देशों में व्यापारिक बैंक अधिक मात्रा में साख निर्माण करने में सफल रहते हैं।
10. **अन्तर्राष्ट्रीय ऋण** (International Debts)—जब कोई देश विदेशों या अन्तर्राष्ट्रीय बैंकों से ऋण लेकर उसका उपयोग उद्योग, कृषि, व्यापार आदि के विकास के लिए करता है तो साख की मात्रा में बढ़ोत्तरी होती है। इसकी उलट दशा में साख का निर्माण कम होता है।

साख नियन्त्रण की विधियाँ
(Methods of Credit Control)

साख नियन्त्रण को मौद्रिक प्रबन्धन (Monetary Management) भी कहा जाता है। इस कार्य को देश के केन्द्रीय बैंक द्वारा किया जाता है। आर्थिक स्थिति के आधार पर केन्द्रीय बैंक साख नियन्त्रण हेतु भिन्न-भिन्न विधियाँ अपनाता है जो विशेषत: दो तरह की होती हैं।
(i) परिमाणात्मक नियन्त्रण (Quantitative Control) एवं (ii) गुणात्मक नियन्त्रण (Qualitative Control)

परिमाणात्मक नियन्त्रण (Quantitative Control)

इसका सम्बन्ध साख की मात्रा तथा उसकी कीमत (ब्याज दर) पर आधारित है। यह निम्न प्रकार से की जा सकती है—

1. **बैंक दर नीति** (Bank Rate Policy)—यह वह ब्याज दर है जिस पर केन्द्रीय बैंक सूचीबद्ध बैंकों के प्रथम श्रेणी के बिलों की पुनर्कटौती करता है अथवा स्वीकार्य की जा सकने वाली प्रतिभूतियों पर ऋण प्रदान करता है। यदि केन्द्रीय बैंक देश के बैंकों को ऊँची ब्याज दर पर ऋण देता है तो निश्चित ही यह बैंक भी अपने ग्राहकों को ऊँची ब्याज दर पर ही उधार उपलब्ध करा पाएँगे। यह दर बढ़ जाने पर ऋण की माँग घटती है और साख का संकुचन होता है। इसके उलट ब्याज दर घटने पर ऋण की माँग बढ़ती है और साख में भी वृद्धि होती है।
   (अ) **बैंक दर नीति का रोजगार पर प्रभाव** (Effect of Bank Rate Policy on Employment)—बैंक दर में वृद्धि होने के कारण बचतों में तो वृद्धि होती है किन्तु ऋण की माँग कम हो जाती है। इसके परिणामस्वरूप

TOUCH 'n' PASS

विनियोग गिर जाता है, उत्पादन में कमी होती है तथा रोजगार उपलब्धता में भी कमी आ जाती है। इसके फलस्वरूप लोगों की मौद्रिक आय में कमी होती है तथा वस्तुओं की माँग कम होने के कारण उनकी कीमतें गिरने लगती हैं। संक्षेप में, मुद्रा संकुचन का क्रम आरम्भ हो जाता है। बैंक दर कम होने पर ठीक इसके उलट परिस्थितियाँ जन्म लेती हैं।

(ब) **विदेशी पूँजी पर प्रभाव** (Effect on Foreign Currency)—बैंक दर बढ़ने से ब्याज की बाजार दर में भी वृद्धि होती है जिससे अल्पकालीन विदेशी पूँजी का प्रवाह बढ़ जाता है। ऊँची ब्याज दर से आकर्षित होकर विदेशी पूँजी देश में आने लगती है और देश के लोग अपने विदेशी ऋणों को देश में लाने लगते हैं। विदेशों से धनराशि आयातित होने पर भुगतान सन्तुलन की स्थिति में सुधार होता है। बैंक दर कम होने की दशा से अल्पकालीन पूँजी देश के बाहर जाने लगती है।

(स) **विनिमय दर पर प्रभाव** (Effect on Exchange Rate)—विदेशी पूँजी के देश में अधिक मात्रा में आने पर देश का भुगतान सन्तुलन अनुकूल होने लगता है और विनिमय दर भी अनुकूल हो जाती है। बैंक दर के घटने पर ठीक इसको विपरीत परिस्थितियाँ जन्म लेती हैं।

(द) **व्यावसायिक गतिविधियों पर प्रभाव** (Effect on Commercial Activities)—बैंक दर में होने वाले परिवर्तनों को अर्थव्यवस्था के सूचक चिह्न के रूप में देखा जाता है। व्यावसायिक अनुमान बैंक दरों में होने वाले परिवर्तनों के अनुसार परिवर्तित होते हैं।

मुद्रा स्फीति के दबाव को नियन्त्रित करना, विनियोग के प्रसार का नियमन तथा अन्तर्राष्ट्रीय भुगतानों में सन्तुलन बनाना इत्यादि गत वर्षों में बैंक दर में वृद्धि के मुख्य कारण बने।

बैंक नीति के सिद्धान्त (Principles of Bank Policy)—हौट्रे के अनुसार बैंक दर में परिवर्तन ब्याज की अल्पकालीन दरों तथा कार्यशील पूँजी के माध्यम से अर्थव्यवस्था पर प्रभाव डालते हैं। जबकि कीन्स के अनुसार बैंक दर में परिवर्तनों का प्रभाव ब्याज की दीर्घकालीन दरों तथा स्थिर पूँजी के माध्यम से पड़ता है। इन दोनों विचारधाराओं को विद्वानों ने एक-दूसरे का पूरक माना है।

2. **मुक्त बाजार की क्रियाएँ** (Open Market Operations)—इसके अन्तर्गत बैंक द्वारा मुद्रा बाजार में अनेक प्रकार के बिलों अथवा प्रतिभूतियों का क्रय-विक्रय होता है। किन्तु सूक्ष्म दृष्टि से देखा जाए तो इसें केवल अल्पकालीन तथा दीर्घकालीन सरकारी प्रतिभूतियों का क्रय-विक्रय ही केन्द्रीय बैंक द्वारा किया जाता है। साख संकुचन करने के उद्देश्य से केन्द्रीय बैंक प्रतिभूतियों का विक्रय करने लगता है। वाणिज्यिक बैंकों एवं जनता द्वारा खरीदे जाने पर चलन की मात्रा तथा बैंकों के नकद कोष में कमी होती है। इससे बैंकों के साख निर्माण की क्षमता कम हो जाती है। जब केन्द्रीय बैंक का उद्देश्य साख का प्रसार करना होता है तो वह प्रतिभूतियों को खरीदने लगता है जिससे कि बैंकों के नकद कोष में वृद्धि होती है। ऐसे खुले बाजार की नीति का साख निर्माण पर बैंक दर की तुलना में तुरन्त और प्रत्यक्ष प्रभाव पड़ता है।

3. **बैंकों के नकद कोष अनुपात में परिवर्तन** (Variations in Cash Reserve Ratio)—वाणिज्यिक बैंकों द्वारा केन्द्रीय बैंकों के पास रखे जाने वाले नकद कोष के प्रतिशत अथवा अनुपात में वृद्धि का प्रभाव यह होता है कि उनके पास नकदी की मात्रा कम रह जाती है जिससे कि उनकी साख निर्माण की क्षमता कम हो जाती है। इसके उलट जब केन्द्रीय बैंकों के पास रखे जाने वाले कोष को कम किया जाता है तो वाणिज्यिक बैंकों के पास नकद की मात्रा बढ़ जाती है जिससे कि उनकी साख निर्माण क्षमता भी बढ़ जाती है। वर्तमान में भारत में नकद कोष अनुपात तीन प्रतिशत है। उदाहरण—यदि इस नकद कोष अनुपात को केन्द्रीय बैंक द्वारा 9 प्रतिशत कर दिया जाए तो सभी बैंकों को अपने नकद कोष का दोगुना और कोष केन्द्रीय बैंक के पास जमा करना होगा। उनके पास नकदी की कमी हो जाएगी जिससे कि उनकी साख निर्माण क्षमता घट जाएगी। यह साख नियन्त्रण की अन्य विधियों की तुलना में सरल पद्धति है क्योंकि यह केन्द्रीय बैंक के मात्र एक आदेश से ही लागू हो जाती है। इसका प्रत्येक बैंक के नकद कोष पर समान रूप से प्रभाव पड़ता है जबकि खुले बाजार की क्रियाओं द्वारा उन्हीं बैंकों पर असर होता है जो केन्द्रीय बैंक द्वारा विक्रय की जा रही प्रतिभूतियों को खरीदते अथवा उसे वापस इन प्रतिभूतियों को बेचते हैं। खुले बाजार की क्रियाओं के अन्तर्गत बेचे जाने वाली प्रतिभूतियाँ यदि अधिक ब्याज दर पर हों तो पुरानी प्रतिभूतियों का मूल्य गिर जाता है अथवा इसका ठीक उलट होता है किन्तु नकद अनुपात विधि का इनके मूल्यों पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। इस प्रणाली का विदेशी पूँजी के प्रवाह पर भी कोई प्रभाव नहीं

पड़ता। यह प्रणाली बैंकों के नकद कोष के अतिरिक्त किसी तत्त्व को प्रभावित नहीं करती, अत: इसे अत्यन्त सरल विधि माना जाता है।

4. **गौण कोष की माँग** (Secondary Reserve Requirements)—कुछ केन्द्रीय बैंकों को वाणिज्यिक बैंकों से नकद कोष अनुपात के अतिरिक्त भी गौण अथवा सहायक कोष (Secondary Reserve) की माँग करने का अधिकार होता है। वाणिज्यिक बैंकों के लिए अनिवार्य होता है कि वह एक निश्चित मात्रा में सरकारी प्रतिभूतियाँ खरीदें अथवा अन्य तरल आदेयों (Liquid Assets) में लगाएँ। इस विधि का उपयोग भी साख निर्माण क्षमता को नियन्त्रित करने हेतु किया जाता है। **डी कॉक** के अनुसार, "युद्ध, सशस्त्रीकरण अथवा अन्य असामान्य स्थितियों से उत्पन्न असाधारण स्फीतिक दबावों को रोकने के लिए निश्चित मौद्रिक नीति के रूप में काफी महत्त्वपूर्ण कार्य कर सकती है।"

प्र.7. स्टेट बैंक ऑफ इण्डिया के प्रमुख कार्य स्पष्ट कीजिए।

Explain the main functions of State Bank of India.

उत्तर भारतीय स्टेट बैंक की स्थापना 1 जुलाई, 1955 ई० को इम्पीरियल बैंक ऑफ इण्डिया का राष्ट्रीयकरण करने के उपरान्त हुई। उस समय इसकी **अधिकृत पूँजी** ₹ 200 करोड़ थी, जिसे ₹ 100-100 के 2 करोड़ शेयर्स में विभाजित किया गया था। अब इसकी पूँजी को बढ़ाकर ₹ 1,000 करोड़ कर दिया गया है। भारतीय रिजर्व बैंक का इस बैंक पर पूर्ण नियन्त्रण है। इसका प्रधान कार्यालय मुम्बई में है।

भारतीय स्टेट बैंक की स्थापना के उद्देश्य
(Objectives of Founding of State bank of India)

भारतीय स्टेट बैंक की स्थापना निम्नांकित उद्देश्यों की पूर्ति के लिए की गई थी—

1. ग्रामीण साख व्यवस्था में सरकारी हिस्से का समावेश करना।
2. ग्रामीण क्षेत्रों में बचत को प्रोत्साहन देना।
3. लघु उद्योगों के विकास के लिए उन्हें समुचित आर्थिक सहायता प्रदान करना।
4. सहकारी संस्थाओं तथा भण्डारगृहों व विपणन समितियों की सहायता करना।
5. विभिन्न संस्थाओं के मध्य धन के हस्तान्तरण की सुविधाएँ देकर देश में बैंकिंग प्रणाली के विकास में सहायता करना।

भारतीय स्टेट बैंक के कार्य
(Works of State Bank of India)

भारतीय स्टेट बैंक के मुख्य कार्य निम्नलिखित हैं—

1. **रिजर्व बैंक का एजेण्ट**—देश के जिस भाग में रिजर्व बैंक के कार्यालय नहीं हैं, वहाँ यह बैंक रिजर्व बैंक के एजेण्ट के रूप में कार्य करता है। इस दृष्टि से यह दो महत्त्वपूर्ण कार्यों को सम्पन्न करता है—
   (i) यह सरकार के बैंकर के रूप में कार्य करता है। यह जनता से सरकार की ओर से धन वसूल करता है और सरकार के आदेशानुसार इसका भुगतान करता है।
   (ii) यह बैंकों के बैंक के रूप में कार्य करता है। यह व्यापारिक बैंकों से निक्षेप स्वीकार करता है और आवश्यकता पड़ने पर उन्हें ऋण भी देता है।
2. **व्यापारिक बैंक सम्बन्धी कार्य**—व्यापारिक बैंक के रूप में भारतीय स्टेट बैंक के कार्य निम्नलिखित हैं—
   (i) जनता से जमा स्वीकार करना। (ii) ऋण प्रदान करना।
   (iii) प्रतिभूतियों में निवेश करना। (iv) विदेशी बैंकिंग कार्य करना।
3. **अन्य कार्य**—
   (i) सोने-चाँदी के सिक्कों का क्रय-विक्रय।
   (ii) लोगों की बहुमूल्य वस्तुओं को अपने अभिरक्षण में रखना।
   (iii) ग्राहकों के लिए साख प्रमाण-पत्र जारी करना।
   (iv) तार द्वारा एक स्थान से दूसरे स्थान को रुपये भेजना।

TOUCH 'n' PASS

भारतीय स्टेट बैंक के निषिद्ध कार्य
(Prohibited Works of State Bank of India)

भारतीय स्टेट बैंक निम्नलिखित कार्य नहीं कर सकता—

(i) यह अचल सम्पत्ति एवं अपने अंशों की जमानत पर ऋण नहीं ले सकता।
(ii) वह अपने कार्यालयों के अतिरिक्त किसी प्रकार की अचल सम्पत्ति नहीं खरीद सकता।
(iii) वह कृषि बिलों के अतिरिक्त ऐसे बिलों की पुन: कटौती नहीं कर सकता, जिनकी परिपक्वता अवधि 6 महीने से अधिक हो। जबकि कृषि बिलों की परिपक्वता अवधि 15 माह है।
(iv) वह किसी व्यक्ति अथवा किसी फर्म को निश्चित राशि से अधिक राशि नहीं दे सकता।
(v) वह ऐसे बिलों को नहीं भुना सकता, जिन पर दो स्पष्ट हस्ताक्षर न हों।

गत कुछ वर्षों में भारत में बैंकिंग का तीव्र गति से विकास हुआ है, जिसका श्रेय भारतीय स्टेट बैंक को है। 31 मार्च, 2014 को भारतीय स्टेट बैंक तथा सहयोगी बैंकों की शाखाओं की संख्या 22,043 थी।

बहुविकल्पीय प्रश्न

प्र.1. जब ऋणदाता बैंक ऋण लेने वाले के नकद साख खाते में कुछ रकम लिख देता है तो यह रकम क्या कहलाती है?
(a) वैधानिक तरलता अनुपात (b) नकद कोष अनुपात
(c) व्युत्पन्न जमा (d) इनमें से कोई नहीं
उत्तर (c) व्युत्पन्न जमा

प्र.2. कब तीन बैंकों को मिलाकर इम्पीरियल बैंक ऑफ इण्डिया की स्थापना की गई?
(a) 1290 (b) 1921
(c) 1922 (d) 1923
उत्तर (b) 1921

प्र.3. केन्द्रीय बैंकिंग जाँच समिति कब गठित की गई?
(a) 1930 (b) 1931
(c) 1932 (d) 1933
उत्तर (a) 1930

प्र.4. निम्न में कौन-सा युग्म बैंकों की स्थापना और वर्ष के मुताबिक नहीं है—
(a) इलाहाबाद बैंक—1906 (b) पंजाब नेशनल बैंक—1894
(c) बैंक ऑफ बड़ौदा—1908 (d) सेन्ट्रल बैंक ऑफ इण्डिया—1912
उत्तर (d) सेन्ट्रल बैंक ऑफ इण्डिया—1912

प्र.5. RBI अधिनियम 1934 के आधार पर भारतीय रिजर्व बैंक की स्थापना कब हुई?
(a) 1934 (b) 1935 (c) 1936 (d) 1937
उत्तर (b) 1935

प्र.6. भारतीय बैंकिंग अधिनियम कब पारित किया गया?
(a) 1945 (b) 1946 (c) 1947 (d) 1948
उत्तर (a) 1945

प्र.7. वाणिज्य बैंक की कौन-सी समस्या है?
(a) जनसंख्या का बढ़ता भार (b) ऋण वापसी की समस्या
(c) फर्जीवाड़े की समस्या (d) ये सभी
उत्तर (d) ये सभी

TOUCH 'n PASS

प्र.8. भारत में प्रथम बैंक कोलकाता में 'बैंक ऑफ हिन्दुस्तान' कब स्थापित हुआ?
(a) 1968 (b) 1969 (c) 1970 (d) 1971
उत्तर (c) 1970

प्र.9. बैंक ऑफ मद्रास की स्थापना कब हुई?
(a) 1804 (b) 1805 (c) 1806 (d) 1807
उत्तर (c) 1806

प्र.10. बैंक ऑफ बॉम्बे की स्थापना कब हुई?
(a) 1837 (b) 1838 (c) 1839 (d) 1840
उत्तर (d) 1840

प्र.11. केन्द्रीय बैंक समय-समय पर किसका विवरण प्रकाशित करता है?
(a) बैंकिंग व्यवस्था की समस्याएँ (b) उद्योग
(c) आयात-निर्यात (d) ये सभी
उत्तर (d) ये सभी

प्र.12. भारतीय रिजर्व बैंक अधिनियम के अधीन वाणिज्य बैंकों को कौन-सी अनुसूची में शामिल किया गया है?
(a) पहली (b) दूसरी (c) तीसरी (d) चौथी
उत्तर (b) दूसरी

प्र.13. अनुसूचित बैंकों की प्रदत्त पूँजी तथा संचित राशि कितने लाख से कम नहीं होनी चाहिए?
(a) 5 लाख (b) 10 लाख (c) 15 लाख (d) 20 लाख
उत्तर (a) 5 लाख

प्र.14. गैर अनुसूचित बैंकों के संदर्भ में क्या सही है?
(a) ये बैंक अपने पास ही नगद राशि रखते हैं (b) इन्हें रिजर्व बैंक से उधार लेने की सुविधा नहीं है
(c) इन्हें रियायती प्रेक्षण की भी सुविधा नहीं है (d) ये सभी
उत्तर (d) ये सभी

प्र.15. प्रारम्भ में 5 क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों की स्थापना कब की गई थी?
(a) 1973 (b) 1974 (c) 1975 (d) 1976
उत्तर (c) 1975

प्र.16. क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों का उद्देश्य किन्हें ऋण प्रदान करना नहीं था?
(a) छोटे उपेक्षित किसानों (b) बड़े उद्यमी (c) कृषि मजदूरों (d) दस्तकारों
उत्तर (b) बड़े उद्यमी

प्र.17. किस समिति ने क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों के उद्देश्यों को पुनः समीक्षा की तथा प्रत्येक क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक के पूँजी आधार को बढ़ाने का सुझाव दिया—
(a) खुसरो समिति (b) केलकर समिति (c) दान्तेवाला समिति (d) क्रेफिकार्ड समिति
उत्तर (b) केलकर समिति

प्र.18. किस समिति की सिफारिश पर बैंकिंग सेवाओं को ग्रामीण क्षेत्रों में दूर-दराज तक ले जाने का उल्लेखनीय कार्य किया?
(a) दान्तेवाला समिति (b) क्रेफिकार्ड समिति
(c) खुसरो समिति (d) केलकर समिति
उत्तर (c) खुसरो समिति

TOUCH 'n PASS

प्र.19. निम्न में से कौन-सा युग्म सुमेलित नहीं है?
(a) दान्तेवाला समिति—1977 (b) क्रेफिकार्ड समिति—1979
(c) केलकर समिति—2003 (d) खुसरो समिति—1989
उत्तर (c) केलकर समिति—2003

प्र.20. वाणिज्यिक बैंक तीन प्रकार की जमाएँ करते हैं, निम्न में कौन-सी उसमें शामिल है?
(a) बचत जमा (b) चालू जमा (c) मियादी जमा (d) ये सभी
उत्तर (d) ये सभी

प्र.21. निम्न में किस पर सर्वाधिक ब्याज दिया जाता है?
(a) बचत जमा (b) चालू जमा (c) मियादी जमा (d) इनमें से कोई नहीं
उत्तर (c) मियादी जमा

प्र.22. अल्पकालीन ऋणों पर बैंक राशि के बदले जमानत लेता है—
(a) जमीन (b) मकान
(c) अन्य परिसम्पत्ति सम्बन्धी कागजात (d) ये सभी
उत्तर (d) ये सभी

प्र.23. किस बैंक ने आढ़त क्रियाओं के लिए अपनी अनुषंगी कम्पनियाँ बनायी हैं?
(a) पंजाब नेशनल बैंक (b) भारतीय स्टेट बैंक (c) केनरा बैंक (d) (b) और (c) दोनों
उत्तर (d) उपरोक्त (b) व (c)

प्र.24. भारतीय बैंकिंग अधिनियम कब पारित किया गया?
(a) 1947 (b) 1948 (c) 1949 (d) 1950
उत्तर (c) 1949

प्र.25. 1 जुलाई, 1955 को इम्पीरियल बैंक ऑफ इण्डिया का राष्ट्रीयकरण किया गया तथा इसका नाम बदलकर क्या किया गया?
(a) पंजाब नेशनल बैंक (b) केनरा बैंक (c) भारतीय स्टेट बैंक (d) इलाहाबाद बैंक
उत्तर (c) भारतीय स्टेट बैंक

प्र.26. SBI समूह में बैंकों की संख्या कितनी रह गई है?
(a) 3 (b) 4 (c) 5 (d) 6
उत्तर (c) 5

प्र.27. 14 बड़े वाणिज्यिक बैंकों का राष्ट्रीयकरण कब किया गया?
(a) 17 जुलाई, 1969 (b) 18 जुलाई, 1969 (c) 19 जुलाई, 1969 (d) 20 जुलाई, 1969
उत्तर (c) 19 जुलाई, 1969

प्र.28. 15 अप्रैल, 1980 को निजी क्षेत्र के कितने बैंकों का राष्ट्रीयकरण किया गया?
(a) 4 (b) 5 (c) 6 (d) 7
उत्तर (c) 6

प्र.29. 6 जनवरी, 2023 में राष्ट्रीयकृत बैंकों की संख्या कितनी है?
(a) 10 (b) 11 (c) 12 (d) 13
उत्तर (c) 12

प्र.30. रिजर्व बैंक का राष्ट्रीयकरण कब हुआ?
(a) 1947 (b) 1948 (c) 1949 (d) 1950
उत्तर (c) 1949

TOUCH 'n' PASS

प्र.31. भारत में कार्यरत विदेशी बैंकों की संख्या कितनी है?
(a) 35 (b) 40 (c) 45 (d) 50

उत्तर (c) 45

प्र.32. विदेशी बैंकों द्वारा कितने प्रतिशत उपार्जित शुद्ध लाभ भारत में ही रखा जायेगा तथा इसे हिसाब में दिखाया जाएगा—
(a) 12% (b) 15% (c) 17% (d) 20%

उत्तर (d) 20%

प्र.33. यह कथन किसका है ''साख की परिभाषा वस्तुओं के तात्कालिक के कारण माँग पर अथक भविष्य में किसी समय पर भुगतान पाने के अधिकार अथवा भुगतान करने के दायित्व रूप में की जा सकती है।''
(a) थॉमस (b) जीड (c) कैन्ट (d) मार्शल

उत्तर (c) कैन्ट

प्र.34. साख से प्राप्त होने वाला लाभ कौन-सा है—
(a) पूँजी की उत्पादन शक्ति में वृद्धि (b) सरल भुगतान
(c) कीमतों में स्थिरता (d) ये सभी

उत्तर (d) ये सभी

प्र.35. जिसे बैंकों तथा अन्य ऐसी वित्तीय संस्थाओं से प्राप्त किया जाता है, वह क्या कहलाती है?
(a) व्यक्तिगत साख (b) व्यापारिक साख (c) संस्थागत साख (d) इनमें से कोई नहीं

उत्तर (c) संस्थागत साख

प्र.36. यह कथन किसका है ''बैंक केवल मुद्रा जुटाने वाली संस्था नहीं है अपितु एक महत्त्वपूर्ण अर्थ में वे मुद्रा के निर्माता भी हैं।''
(a) गूच (b) पीगू (c) सेयर्स (d) कैन्ट

उत्तर (c) सेयर्स

प्र.37. प्रो० बेन्हम के अनुसार साख निर्माण की कौन-सी सीमा है?
(a) विधिग्राह्य मुद्रा की मात्रा (b) मुद्रा की तरलता
(c) मुद्रा दायित्व और नकद कोष का अनुपात (d) ये सभी

उत्तर (d) ये सभी

प्र.38. आधुनिक अर्थशास्त्रियों के मतानुसार साख निर्माण को प्रभावित करने वाला तत्त्व कौन-सा है?
(a) मुद्रा की मात्रा (b) मुद्रा स्फीति एवं संकुचन
(c) नकद कोष का अनुपात (d) ये सभी

उत्तर (d) ये सभी

प्र.39. किसके अनुसार बैंक दर में परिवर्तन ब्याज की अल्पकालीन दरों तथा कार्यशील पूँजी के माध्यम से अर्थव्यवस्था पर प्रभाव डालते हैं—
(a) सेयर्स (b) मैडलिन (c) होट्रे (d) पीगू

उत्तर (c) होट्र

प्र.40. दीर्घकालीन साख कहलाती हैं—
(a) 1 वर्ष से 3 वर्ष तक (b) 1 वर्ष से 4 वर्ष तक
(c) 1 वर्ष से 5 वर्ष तक (d) 5 वर्ष से अधिक

उत्तर (d) 5 वर्ष से अधिक

TOUCH 'n' PASS

UNIT-IV

केन्द्रीय बैंक के कार्य
Functions of a Central Bank

खण्ड-अ अतिलघु उत्तरीय प्रश्न

प्र.1. केन्द्रीय बैंक एवं व्यापारिक बैंक में समानताएँ बताइए।
State the similarities between Central Bank and Commercial Bank.

उत्तर केन्द्रीय बैंक एवं व्यापारिक बैंक में समानताएँ निम्न प्रकार हैं—

- दोनों केन्द्रीय एवं वाणिज्यिक बैंक मुद्रा का व्यवसाय करते हैं। जहाँ केन्द्रीय बैंक मुद्रा का निर्माण करता है वहीं व्यापारिक बैंक मुद्रा का लेन-देन और साख मुद्रा का निर्माण करता है।
- दोनों ही साख का निर्माण करते हैं। केन्द्रीय बैंक नोटों का निर्गमन करके साख का निर्माण करता है वहीं व्यापारिक बैंक व्युत्पन्न जमाओं के रूप में साख निर्माण में सहायक है।
- दोनों ही बैंक न तो अचल सम्पत्ति के आधार पर ऋण और न ही दीर्घकालीन ऋण देते हैं।

प्र.2. केन्द्रीय बैंक की आवश्यकताएँ लिखिए।
Write the requirement of a Central Bank.

उत्तर केन्द्रीय बैंक किसी भी देश के लिए अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। इसकी आवश्यकता विभिन्न कारणों से होती है। एक पथप्रदर्शक, दार्शनिक के रूप में केन्द्रीय बैंक देश की अन्य बैंकों को सहायता प्रदान करता है।

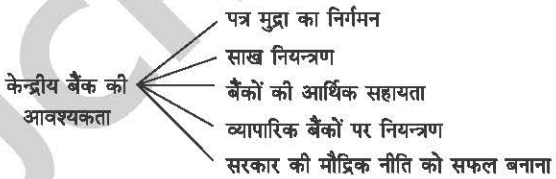

प्र.3. रिजर्व बैंक के साधारण बैंकिंग सम्बन्धी दो कार्य बताइए।
Mention two works of reserve Bank related to simple banking.

उत्तर रिजर्व बैंक के साधारण बैंकिंग संबंधी दो कार्य निम्नलिखित हैं—

1. रिजर्व बैंक भारत में लिखे गये अधिक-से-अधिक 15 महीने की अवधि से परिपक्व होने वाले कृषि बिलों का क्रय-विक्रय कर सकता है तथा उनकी पुन: कटौती भी कर सकता है।
2. वह भारत सरकार व राज्य सरकारों को अधिक-से-अधिक 90 दिन की अवधि के लिए ऋण दे सकता है, किन्तु यह ऋण जमानत पर ही दिया जा सकता है।

प्र.4. रिजर्व बैंक के दो निषिद्ध कार्य बताइए।
Write two forbidden works of Reserve Bank.

उत्तर रिजर्व बैंक के दो निषिद्ध कार्य निम्नलिखित हैं—

1. यह जनता से ब्याज पर जमा स्वीकार नहीं कर सकता।
2. यह किसी प्रकार का व्यवसाय नहीं कर सकता, किसी व्यापारिक संस्था में सामान्यत: न हिस्सा ले सकता है और न ही उसे आर्थिक सहायता दे सकता है।

TOUCH 'n' PASS

प्र.5. रिजर्व बैंक ऑफ इण्डिया की स्थापना के क्या उद्देश्य थे?
What were the objectives of the founding of the Reserve Bank of India?

उत्तर भारतीय रिजर्व बैंक की स्थापना के मुख्य उद्देश्य निम्नलिखित थे—

1. मुद्रा एवं साख की नीति में समन्वय स्थापित करना।
2. रुपये के आन्तरिक एवं बाह्य मूल्य में स्थिरता स्थापित करना।
3. बैंकों के नकद कोषों का केन्द्रीयकरण करना।
4. देश में बैंकिंग व्यवस्था का समुचित विकास करना।
5. मुद्रा बाजार में समन्वय एवं सहयोग स्थापित करना।
6. कृषि साख की उचित व्यवस्था करना।
7. विदेशों से मौद्रिक सम्पर्क स्थापित करना।

प्र.6. भारतीय रिजर्व बैंक का मुख्यालय कहाँ स्थित है?
Where it the headquarters of the Reserve Bank of India located?

उत्तर मुम्बई में।

प्र.7. साख नियन्त्रण से क्या आशय है?
What is meant by Credit Control?

उत्तर साख नियन्त्रण से आशय देश में मुद्रा एवं साख की मात्रा एवं उपयोग को नियन्त्रित करने से है।

प्र.8. साख नियन्त्रण की विधियों को कितने वर्गों में बाँटा जाता है? उनके नाम बताइए।
Into how divisions are methods of Credit Control divided? Write their names.

उत्तर साख नियन्त्रण की विधियों को दो वर्गों में बाँटा जाता है—1. मात्रात्मक विधियाँ, 2. गुणात्मक विधियाँ।

प्र.9. भारतीय रिजर्व बैंक द्वारा गुणात्मक साख नियन्त्रण के दो उपाय बताइए।
Write two means of Qualitative Credit Control by Reserve bank of India.

उत्तर भारतीय रिजर्व बैंक द्वारा गुणात्मक साख नियन्त्रण के दो उपाय निम्नलिखित हैं—

1. 1965 ई० से प्रारम्भ इस योजना के अन्तर्गत 1 नवम्बर, 1975 ई० से यह व्यवस्था की गई कि किसी एक व्यक्ति या संस्था को ₹2 करोड़ या इससे अधिक राशि देने के पूर्व सभी बैंकों को रिजर्व बैंक की अनुमति प्राप्त करनी होगी।
2. सामान्यतया चयनात्मक साख नियन्त्रणों के साथ-साथ रिजर्व बैंक नैतिक प्रभाव तथा प्रचार का प्रभावपूर्ण उपयोग करता है।

प्र.10. भारतीय रिजर्व बैंक के मौद्रिक कार्य बताइए।
Write monetory works of Reserve Bank of India?

उत्तर भारतीय रिजर्व बैंक के मौद्रिक कार्य निम्नलिखित हैं—

1. पत्र-मुद्रा का निर्गमन करना।
2. सरकार की ओर से धन प्राप्त करना व भुगतान करना, ऋण लेना व विदेशी विनिमय का प्रबन्ध करना।
3. व्यापारिक बैंकों के नकद कोषों को रखना, कृषि व उद्योगों के लिए साख की व्यवस्था करना।
4. मुद्रा व साख का नियमन व नियन्त्रण करना।
5. बैंकिंग सम्बन्धी अन्य साधारण कार्य करना।

प्र.11. भारतीय स्टेट बैंक के रिजर्व बैंक के एजेण्ट के रूप में दो कार्य बताइए।
Write two works of State Bank of India as an agent of Reserve Bank.

उत्तर भारतीय स्टेट बैंक के रिजर्व बैंक के एजेण्ट के रूप में दो कार्य निम्नलिखित हैं—

1. यह सरकार के बैंकर के रूप में कार्य करता है। यह जनता से सरकार की ओर से धन वसूल करता है और सरकार के आदेशानुसार इसका भुगतान करता है।
2. यह बैंकों के बैंक के रूप में कार्य करता है। यह व्यापारिक बैंकों से निक्षेप स्वीकार करता है और आवश्यकता पड़ने पर उन्हें ऋण भी देता है।

TOUCH 'n' PASS

प्र.12. व्यापारिक बैंक के रूप में स्टेट बैंक के कार्य बताइए।
State works of State Bank as a commercial bank.

उत्तर व्यापारिक बैंक के रूप में स्टेट बैंक के कार्य निम्नलिखित हैं—

1. जनता से जमा स्वीकार करना।
2. ऋण प्रदान करना।
3. प्रतिभूतियों में निवेश करना।
4. विदेशी बैंकिंग कार्य करना।

प्र.13. स्टेट बैंक के दो निषिद्ध कार्य बताइए।
State two prohibited work of State Bank.
***अथवा* भारतीय स्टेट बैंक के वर्जित कार्य क्या हैं?**
Which are the prohibited works of State Bank of India?

उत्तर भारतीय स्टेट बैंक के वर्जित कार्य निम्नलिखित हैं—

1. वह अपने कार्यालयों के अतिरिक्त किसी प्रकार की अचल सम्पत्ति नहीं खरीद सकता।
2. यह अचल सम्पत्ति एवं अपने अंशों की जमानत पर ऋण नहीं ले सकता।
3. वह ऐसे बिलों की पुन: कटौती नहीं कर सकता जिनकी परिपक्वता अवधि 6 महीने से अधिक हो।
4. वह किसी व्यक्ति अथवा किसी फर्म को निश्चित राशि से अधिक राशि नहीं दे सकता।
5. वह ऐसे बिलों को नहीं भुना सकता जिन पर दो स्पष्ट हस्ताक्षर न हों।

प्र.14. भारतीय स्टेट बैंक अन्य व्यापारिक बैंकों से किस अर्थ में भिन्न है?
How is State Bank of India different from other commercial banks?

उत्तर भारतीय स्टेट बैंक व्यापारिक बैंकों से सम्बन्धित कार्य करने के अतिरिक्त रिजर्व बैंक के एजेण्ट के रूप में कुछ कार्य सम्पन्न करता है, जिन्हें व्यापारिक बैंक नहीं कर सकते; जैसे—1. भारतीय स्टेट बैंक सरकार के बैंक के रूप में कार्य करता है। वह जनता से सरकार की ओर से धन वसूल करता है और सरकार के आदेशानुसार इसका भुगतान भी करता है, 2. वह बैंकों के बैंक के रूप में कार्य करता है। वह व्यापारिक बैंकों से निक्षेप स्वीकार करता है तथा आवश्यकता पड़ने पर उन्हें ऋण भी प्रदान करता है।

खण्ड-ब लघु उत्तरीय प्रश्न

प्र.1. केन्द्रीय बैंक एवं व्यापारिक बैंक की असमानताओं का उल्लेख कीजिए।
Mention the difference between a Central Bank and a Commercial Bank.

उत्तर केन्द्रीय बैंक एवं व्यापारिक बैंक के मध्य असमानताओं को एक सारणी के माध्यम से प्रस्तुत किया जा सकता है—

केन्द्रीय बैंक एवं व्यापारिक बैंक की असमानताएँ
(Differences between a Central Bank and a Commercial Bank)

क्र०सं०	अन्तर का आधार	केन्द्रीय बैंक	व्यापारिक बैंक
1.	संख्या	अमेरिका को छोड़कर (12 केन्द्रीय बैंक) अन्य सभी देशों में एक केन्द्रीय बैंक होता है।	प्रत्येक देश में अनेक व्यापारिक बैंक होते हैं।
2.	बैंकिंग व्यवस्था में स्थान	इसका स्थान सर्वोच्च होता है और अन्य बैंकों का नियन्त्रण करता है।	यह सम्पूर्ण प्रणाली का एक अंग होता है।
3.	नोट निर्गमन	इसे पत्र मुद्रा का निर्गमन करने का अधिकार होता है।	व्यापारिक बैंकों का यह अधिकार नहीं होता है।
4.	सरकार का बैंकर	यह सरकार की ओर से लेन-देन करते हैं।	इनका ऐसा कोई विशेष दायित्व नहीं होता है।

TOUCH 'n PASS

5.	जनता से सम्बन्ध	यह जनसाधारण के साथ प्रत्यक्ष व्यवसाय नहीं करता है।	ये जनसाधारण से व्यवसाय करते हैं।
6.	ब्याज	यह अपने पास जमा कराये गये धन पर ब्याज नहीं देता है।	ये अपने जमा धन पर ब्याज देते हैं।
7.	स्वामित्व	इन पर सरकार का स्वामित्व होता है।	ये प्राय: अंशधारियों के बैंक होते हैं।
8.	उद्देश्य	राष्ट्रहित में बैंकिंग प्रणाली का सफल संचालन करना इसका प्रमुख उद्देश्य है।	लाभ कमाना इनका मुख्य उद्देश्य है।
9.	ऋण	यह अन्तिम ऋणदाता है और व्यापारिक बैंकों को बिल भुनाने की सुविधा देता है।	ये केन्द्रीय बैंक से ऋण लेते हैं।
10.	सम्बन्ध	यह व्यापारिक बैंकों का भी बैंक है।	ये केन्द्रीय बैंक के ग्राहक होते हैं।
11.	समाशोधन गृह	यह समाशोधन गृह का कार्य करता है।	केवल केन्द्रीय बैंक के निर्देश पर ही ये समाशोधन गृह का कार्य कर सकते हैं।
12.	स्वतन्त्र नीति	अर्थव्यवस्था के हित में यह स्वतन्त्र एवं क्रियाशील नीति अपनाता है।	ये केन्द्रीय बैंक के निर्देशन में अपना कार्य करते हैं।
13.	मुख्य प्रशासक	केन्द्रीय बैंक का मुख्य प्रशासक गवर्नर कहलाता है।	व्यापारिक बैंकों का मुख्य प्रशासक चेयरमैन कहलाता हैं।

प्र.2. केन्द्रीय बैंक की विभिन्न परिभाषाएँ लिखिए।
Write different definitions of Central Bank.

उत्तर

केन्द्रीय बैंक की परिभाषाएँ
(Definitions of Central Bank)

देश के मौद्रिक तथा बैंकिंग क्षेत्र में मुख्य स्थान होने के कारण उसे देश के केन्द्रीय बैंक की संज्ञा दी गयी है। इस केन्द्रीय बैंक को देश के अधिनियम द्वारा कुछ विशेष शक्तियाँ प्रदान की जाती हैं जिसके द्वारा यह अन्य व्यापारिक बैंकों को नियन्त्रित करती है। केन्द्रीय बैंक की कई परिभाषाएँ उसके कार्यों पर आधारित हैं।

हॉट्रे के विचार में केन्द्रीय बैंक बैंकों का बैंक है क्योंकि यह अन्य बैंकों के लिए अन्तिम युग का ऋणदाता का कार्य करता है।

क्राउथर के अनुसार, "केन्द्रीय बैंक का अन्य बैंकों के साथ ठीक वही सम्बन्ध होता है जैसा स्वयं अन्य बैंकों का जनता के साथ होता है।"

शॉ के अनुसार, "केन्द्रीय बैंक देश में साख मुद्रा का नियन्त्रण रखने वाला बैंक है।

केन्ट के अनुसार, "केन्द्रीय बैंक एक ऐसी संस्था है, जिसे सामान्य जनहित को दृष्टि में रखते हुए मुद्रा की मात्रा के विस्तार और संकुचन का प्रबन्ध करने की जिम्मेदारी सौंपी जाती है।"

ए०सी०एल०डे० का कहना है "केन्द्रीय बैंक वह है जो मौद्रिक एवं बैंकिंग प्रणाली को नियन्त्रित एवं स्थिर करने में सहायक होता है।"

वेरा स्मिथ के अनुसार, "केन्द्रीय बैंकिंग की प्राथमिक परिभाषा है—ऐसी बैंकिंग प्रणाली जिसमें कोई एकल बैंक करेन्सी नोट जारी करने का पूर्ण अथवा अवशिष्ट एकाधिकार रखता है।"

सैम्यूलसन के द्वारा दी गयी व्यापक परिभाषा के अनुसार, "केन्द्रीय बैंक बैंकरों का बैंक है। इसका कर्त्तव्य मौद्रिक आधार को नियन्त्रित करना है और इस उच्चस्तरीय मुद्रा के नियन्त्रण के माध्यम से समुदाय को मुद्रा पूर्ति को नियन्त्रित करना है।"

केन्द्रीय बैंक की उचित परिभाषा—केन्द्रीय बैंक एक ऐसी संस्था है जो देश की मौद्रिक बैंकिंग तथा साख व्यवसाय का इस प्रकार नियमन एवं निर्देशन करती है जिससे देश की आर्थिक प्रगति वांछित गति से उचित दिशाओं में होती रहे।

प्र.3. भारतीय रिजर्व बैंक साधारण बैंकिंग सम्बन्धी कौन-कौन से कार्य सम्पन्न करता है?
Which works related to general banking are performed by Reserve Bank of India?

उत्तर

भारतीय रिजर्व बैंक द्वारा सम्पन्न साधारण बैंकिंग सम्बन्धी कार्य
(Works Related to Simple Banking Performed by Reserve Bank of India)

रिजर्व बैंक साधारण बैंकिंग सम्बन्धी अग्रलिखित कार्य सम्पन्न करता है—

TOUCH 'n' PASS

1. रिजर्व बैंक भारत सरकार, राज्य सरकारों एवं निजी व्यक्तियों से जमा स्वीकार करता है, परन्तु उस पर ब्याज नहीं देता।
2. वह 90 दिन में परिपक्व होने वाले बिलों को भुना सकता है, यदि उनका भुगतान भारत में होने वाला हो और उन पर एक सदस्य बैंक तथा एक प्रतिष्ठित व्यक्ति के हस्ताक्षर हों।
3. रिजर्व बैंक सदस्य बैंकों से कम-से-कम 1 लाख रुपये के विदेशी विनिमय का क्रय-विक्रय करता है।
4. रिजर्व बैंक भारत में लिखे गये अधिक-से-अधिक 15 महीने की अवधि में परिपक्व होने वाले कृषि बिलों का क्रय-विक्रय कर सकता है तथा उनकी पुन: कटौती भी कर सकता है।
5. वह भारत सरकार व राज्य सरकारों को अधिक-से-अधिक 90 दिन की अवधि के लिए ऋण दे सकता है, किन्तु यह ऋण जमानत पर ही दिया जा सकता है।
6. रिजर्व बैंक भारत में किसी भी अनुसूचित बैंक से या किसी विदेशी बैंक से ऋण ले सकता है, किन्तु शर्त यह है कि यह ऋण 30 दिन की अवधि से अधिक समय के लिए न हो।
7. वह अन्तर्राष्ट्रीय बैंकों तथा अन्य विदेशी केन्द्रीय बैंकों में अपना खाता खोल सकता है और विदेशों में अपने अभिकर्त्ता बैंकों को नियुक्त कर सकता है।
8. वह अनेक प्रकार के विविध कार्यों को भी करता है; जैसे—सोने-चाँदी, हीरे-जवाहरात एवं प्रतिभूतियों को अपनी कस्टडी में रखना, सोने-चाँदी व सोने के सिक्कों को खरीदना व बेचना आदि।

प्र.4. रिजर्व बैंक के निषिद्ध कार्यों को बताइए।
Write the prohibited work of Reserve Bank.

उत्तर

रिजर्व बैंक के निषिद्ध कार्य
(Prohibited Works of Reserve Bank)

रिजर्व बैंक के निषिद्ध कार्य निम्नलिखित हैं—

1. यह जनता से ब्याज पर जमा स्वीकार नहीं कर सकता।
2. यह किसी प्रकार का व्यवसाय नहीं कर सकता, किसी व्यापारिक संस्था में सामान्यत: न हिस्सा ले सकता है और न ही उसे आर्थिक सहायता दे सकता है।
3. निश्चित अवधि से अधिक के लिए ऋण नहीं दे सकता।
4. गैर-जमानती ऋण नहीं दे सकता।
5. अचल सम्पत्ति की जमानत पर न तो ऋण ही दे सकता है और न ही अपने काम के अतिरिक्त अन्य किसी उद्देश्य से अचल सम्पत्ति खरीद सकता है।
6. किसी ऐसी प्रतिभूति की जमानत पर ऋण नहीं दे सकता, जो इसके द्वारा अनुमोदित न हो।
7. किसी कम्पनी के अंश न तो खरीद सकता और न ही उनकी जमानत पर ऋण दे सकता है।
8. वह न तो ऐसे बिलों को लिख सकता है और न ही स्वीकार कर सकता है, जो माँग पर शोधनीय न हो।

खण्ड-स विस्तृत उत्तरीय प्रश्न

प्र.1. केन्द्रीय बैंक के कार्यों की विस्तार से विवेचना कीजिए।
Deliberate on the works of Central Bank in detail.

उत्तर

केन्द्रीय बैंक के कार्य
(Works of Central Bank)

केन्द्रीय बैंक के कार्यों के सम्बन्ध में विभिन्न विद्वानों ने भिन्न-भिन्न विचार प्रकट किये हैं। **प्रो० एम०एच०डी० कॉक** के अनुसार केन्द्रीय बैंक के कार्य निम्नलिखित हैं—

प्रमुख कार्य

1. नोट निर्गमन का एकाधिकार।
2. सरकार का बैंकर, एजेण्ट तथा सलाहकार।
3. बैंकों का बैंक।
4. विदेशी विनिमय कोषों का संरक्षक।

TOUCH 'n' PASS

5. व्यापारिक बैंकों के लिए अन्तिम ऋणदाता।
6. समाशोधन एवं स्थानान्तरण सुविधा।
7. साख नियन्त्रण।

अन्य कार्य

8. आर्थिक विकास में सहायक।
9. आँकड़ों को संकलित करना।

1. **नोट निर्गमन का एकाधिकार**—केन्द्रीय बैंक के इस कार्य के कारण इसे निर्गमन बैंक भी कहा जाता है। यह अधिकार इसको देने के मुख्य कारण निम्नलिखित हैं—
   (i) मुद्रा प्रणाली में एकरूपता।
   (ii) साख निर्माण पर नियन्त्रण।
   (iii) मुद्रा प्रणाली में लोच।
   (iv) जनता का विश्वास केन्द्रीय बैंक द्वारा जारी किये गये नोटों के प्रति अधिक रहता है।
   (v) नोटों से प्राप्त सम्पूर्ण लाभ सरकार को मिल जाता है।
   (vi) मुद्रा के मूल्य में स्थिरता बनी रहती है, क्योंकि मुद्रा की मात्रा को नियन्त्रित करना आसान होता है।
   (vii) केन्द्रीय बैंक द्वारा सरकारी नीति का पालन करने में सुविधा होती है।
   इस प्रकार के केन्द्रीय बैंक नोट निर्गमन पर एकाधिकार रखकर देश में सस्ती व उपयुक्त चलन प्रणाली की व्यवस्था करता है तथा मुद्रा के मूल्य में स्थिरता लाने का प्रयास करता है।
2. **सरकार के बैंकर, एजेण्ट तथा सलाहकार**—
   (i) **सरकार का बैंकर**—इस रूप में केन्द्रीय बैंक सरकार को वो सेवाएँ प्रदान करता है जो व्यापारिक बैंक जनता को प्रदान करते हैं। यह सरकारी विभागों के खाते रखता है और कोषों की व्यवस्था करता है। सरकार को आवश्यकता पड़ने पर ऋण भी देता है। सरकार की ओर से विदेशी मुद्राओं का क्रय-विक्रय भी करता है।
   (ii) **सरकार के एजेण्ट के रूप में**—सरकारी अभिकर्ता के रूप में यह सरकार की ओर से प्रतिभूतियों ट्रेजरी बिलों आदि का क्रय-विक्रय करता है। सरकार जिन देशों से भी आर्थिक लेन-देन के समझौते करती है, वे सब केन्द्रीय बैंक के माध्यम से किये जाते हैं। इसके अतिरिक्त राष्ट्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाओं तथा सम्मेलनों में केन्द्रीय बैंक के विशेषज्ञ सरकार के प्रतिनिधि का कार्य करते हैं।
   (iii) **सरकार के आर्थिक सलाहकार के रूप में**—केन्द्रीय बैंक सरकार को आर्थिक व वित्तीय मामलों में सलाह भी देता है। केन्द्रीय बैंक की सहायता से सरकार मुद्रा एवं बैंकिंग सम्बन्धी नीति निर्धारित करती है। **डी कॉक** के अनुसार, "सरकारी बैंकर के रूप में केन्द्रीय बैंक केवल इसीलिए सुविधाजनक तथा मितव्ययी हैं, वरन् इसलिए भी कि सार्वजनिक वित्त तथा मौद्रिक मामलों में घनिष्ट सम्बन्ध होता है।"
3. **बैंकों का बैंक**—केन्द्रीय बैंक का अन्य बैंकों के साथ सम्बन्ध वैसा ही होता है जैसा व्यापारिक बैंकों का ग्राहकों के साथ होता है। वह न सिर्फ व्यापारिक बैंकों की रकम जमा करता है बल्कि आवश्यकता पड़ने पर उन्हें ऋण देता है। कुछ देशों में व्यापारिक बैंकों को केन्द्रीय बैंक के पास नकद रखना अनिवार्य कर दिया गया है। संक्षेप में बैंकों के बैंक के रूप में केन्द्रीय बैंक निम्न कार्य करता है—
   (i) व्यापारिक बैंकों के नकद कोष अपने पास रखता है।
   (ii) आवश्यकता पड़ने पर उन्हें ऋण देता है।
   (iii) व्यापारिक बैंकों के श्रेष्ठ बिलों की पुनर्कटौती करता है।
   इसके कई लाभ हैं—
   (i) राष्ट्रीय संकट के समय जमा राशि का समुचित रूप से उपयोग किया जाता है।
   (ii) इससे साख प्रणाली में लोच उत्पन्न होती है।
   (iii) इसे व्यापारिक बैंकों की साख निर्माण नीति तथा ऋण नीति को नियन्त्रित करने का अवसर मिल जाता है।
   (iv) बैंकों का आपसी लेन-देन सरल हो जाता है।

TOUCH 'n PASS

4. **विदेशी विनिमय कोषों का संरक्षक**—देश को विदेशी व्यापार विदेशी ऋण और अनुदानों से जितनी विदेशी मुद्रा प्राप्त होती है उसका श्रेष्ठतम प्रकार से प्रयोग करते हुए केन्द्रीय बैंक विदेशी विनिमय कोषों के संरक्षक के रूप में भी कार्य करता है।
   (i) सभी विदेशी मुद्रा केन्द्रीय बैंक में जमा होती है।
   (ii) विदेशी मुद्रा के लेन-देन पर प्रतिबन्ध रखा जाता है।
   (iii) विदेशी विनिमय का प्रयोग अत्यन्त आवश्यक कार्यों के लिए ही किया जाता है।
   (iv) विदेशी भुगतानों के लिए आवश्यक रकम की व्यवस्था की जाती है।
   (v) अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के विकास तथा विनिमय दरों की स्थिरता के लिए विदेशी मुद्रा के कोषों को उचित मात्रा में बनाये रखने की आवश्यकता होती है।

   अत: केन्द्रीय बैंक अन्तर्राष्ट्रीय विनिमय पर नियन्त्रण रखता है।
5. **व्यापारिक बैंकों के लिए अन्तिम ऋणदाता**—केन्द्रीय बैंक दो प्रकार से व्यापारिक बैंकों की सहायता करता है—
   (i) श्रेष्ठ व्यापारिक बिलों की पुर्नकटौती द्वारा तथा
   (ii) प्रथम श्रेणी की प्रतिभूतियों की धरोहर पर ऋण द्वारा।

   जब अन्य किसी साधन से उधार मिलने की आशा नहीं रहती है तब केन्द्रीय बैंक रकम उपलब्ध कराता है, इस कारण केन्द्रीय बैंक को अन्तिम ऋणदाता कहा गया है। केन्द्रीय बैंक जो रकम उधार में देता है वह सरकारी प्रतिभूतियों की जमानत पर देता है। इस प्रकार केन्द्रीय बैंक मुद्रा बाजार में मुद्रा की पूर्ति पर देता है। इस प्रकार केन्द्रीय बैंक मुद्रा बाजार में मुद्रा की पूर्ति को बढ़ाता है।

   चूँकि केन्द्रीय बैंक अन्तिम ऋणदाता के रूप में उपलब्ध होता है, इस कारण व्यापारिक बैंकों को अधिक नकद कोष रखना पड़ता है और बैंकों पर नियन्त्रण रखना और सरल हो जाता है।
6. **समाशोधन एवं स्थानान्तरण सुविधा**—केन्द्रीय बैंक एक समाशोधन गृह के रूप में ऐसी व्यवस्था करता है कि विभिन्न बैंकों के पारस्परिक लेन-देन अथवा एक-दूसरे पर लिखे गये चैकों के भुगतान का निबटारा केवल खातों में आवश्यक परिवर्तन द्वारा किया जा सके। इस प्रकार करोड़ों रुपये का हिसाब-किताब केवल खातों में जमा या नाम लिखने मात्र से हो जाता है। दैनिक लेन-देन का समायोजन केन्द्रीय बैंक द्वारा बड़े-बड़े नगरों में समाशोधन गृह की स्थापना द्वारा सहजता से हो जाता है।
7. **साख का नियन्त्रण**—साख नियन्त्रण से तात्पर्य साख मुद्रा की मात्रा में देश की मौद्रिक आवश्यकताओं के अनुसार कमी अथवा वृद्धि करने से है। साख नियन्त्रण के माध्यम से केन्द्रीय बैंक देश की अर्थव्यवस्था को स्थिर करने का प्रयास करता है ताकि आर्थिक उच्चावचनों से बचा जा सके। **प्रो० शॉ** ने साख नियन्त्रण को केन्द्रीय बैंक का सबसे महत्त्वपूर्ण कार्य माना है। साख की मात्रा आवश्यकता से अधिक होने पर मुद्रा स्फीति की स्थिति उत्पन्न होती है और कम होने पर मुद्रा संकुचन की स्थिति। केन्द्रीय बैंक साख को नियन्त्रित करके इन स्थितियों पर अंकुश लगता है। अत: यह इसका प्रधान कार्य माना गया है।

   1931 से पूर्व साख नियन्त्रण का मुख्य उद्देश्य विदेशी विनिमय दर में स्थिरता रखना होता था पर 1931 में स्वर्णमान के पतन के बाद इसका प्रमुख उद्देश्य आन्तरिक मूल्यों में स्थिरता बनाये रखना हो गया। वस्तुत: साख नियन्त्रण का उद्देश्य दोनों में स्थायित्व की प्राप्ति होनी चाहिए।

कुछ अन्य कार्य

डी कॉक द्वारा बताये गये केन्द्रीय बैंक के उपर्युक्त सात कार्यों के अतिरिक्त केन्द्रीय बैंक के कुछ अन्य कार्य भी हैं जैसे—

8. **आर्थिक विकास में सहायक होना**—वर्तमान केन्द्रीय बैंक न महज आर्थिक स्थिरता अपितु आर्थिक विकास को भी प्रोत्साहन देते हैं व्यापारिक बैंकों को सरकारी बैंकों सहकारी बैंकों अन्य वित्तीय संस्थाओं तथा बिल बाजार के विकास एवं विस्तार के लिए केन्द्रीय बैंक कार्य करता है। ताकि निवेश के साधनों का विस्तार किया जा सके। सरकार को हीनार्थ प्रबन्धन के माध्यम से वित्तीय साधन उपलब्ध कराता है। विकासशील देशों में केन्द्रीय बैंक की भूमिका विकास सम्बन्धी कार्य के लिए अधिक सजग है।

TOUCH 'n PASS

9. **आँकड़ों को संकलित करना**—देश को मुद्रा साख बैंकिंग, विदेशी निवेश आदि से सम्बन्धित आर्थिक स्थिति के बारे में आँकड़े व सूचनाएँ एकत्र करना तथा उन्हें जनहित में प्रकाशित करना केन्द्रीय बैंक के कार्यों में सम्मिलित है। ये आँकड़े व्यापारिक तथा औद्योगिक विकास के लिए देश की आर्थिक स्थिति का ज्ञान कराते हैं। इससे आर्थिक नियोजन में सफलता मिलती है।

प्र.2. केन्द्रीय बैंकों के निर्देशक सिद्धान्त एवं आर्थिक विकास में केन्द्रीय बैंक की भूमिका का वर्णन कीजिए।
Explain the quiding principles of Central Banks and the role of Central Bank in economic development.

उत्तर

केन्द्रीय बैंकों के निर्देशक सिद्धान्त
(Guiding Principles of Central Banks)

केन्द्रीय बैंकों का स्वरूप संगठन उद्देश्य तथा कार्य व्यापारिक बैंकों से भिन्न होने के कारण केन्द्रीय बैंक के निर्देशन भी भिन्न होते हैं।

केन्द्रीय बैंक मुख्यत: निम्नलिखित सिद्धान्तों को अपनाता है—

1. **सम्पूर्ण देशहित की प्रमुखता का सिद्धान्त**—लाभ कमाने के उद्देश्य से नहीं वरन् लोक तथा राष्ट्र कल्याण की भावना से प्रेरित होकर केन्द्रीय बैंक को कार्य करना चाहिए। लोकहित प्राप्ति को गौण मानना चाहिए। डी कॉक भी यह मत प्रस्तुत करते हैं।
2. **मौद्रिक तथा वित्तीय स्थिरता का सिद्धान्त**—मौद्रिक एवं वित्तीय स्थिरता के अभाव में देश की आर्थिक स्थिति कमजोर हो सकती है। अत: केन्द्रीय बैंक को देश में मुद्रा, साख, विदेशी विनिमय तथा सार्वजनिक ऋण के नियमन के लिए एक सक्रिय नीति अपनाना चाहिए।
3. **राजनीतिक प्रभाव से स्वतन्त्र रहने का सिद्धान्त अथवा निष्पक्षता का सिद्धान्त**—किसी विशेष समुदाय अथवा राजनीतिक वर्ग का पक्षपात करते हुए नीति का निर्धारण न करें। निष्पक्ष नीति का अनुसरण करें। राजनीतिक दलबन्दी के प्रभाव से मुक्त रहते हुए सरकार का सहयोग करना चाहिए चाहे वह किसी दल की सरकार हो।
4. **मुद्रा निर्गमन का एकाधिकार**—केन्द्रीय बैंक के अतिरिक्त नोट निर्गमन का अधिकार अन्य किसी संस्था को नहीं होना चाहिए तभी यह देश में मुद्रा तथा साख व्यवस्था पर उचित तथा प्रभावपूर्ण नियन्त्रण रख पायेगा। न ही तब मुद्रा स्फीति का भय रहेगा और आर्थिक स्थिरता भी बनी रहेगी।
5. **साधारण बैंकिंग कार्यों से अलग**—केन्द्रीय बैंक को व्यापारिक बैंकों की भाँति सामान्य लेन-देन के कार्य न करें अर्थात् वह न तो जनता से प्रत्यक्ष रूप से जमा राशियाँ स्वीकार करे और न ही सीधे ऋण दे। व्यापारिक बैंक से प्रतिस्पर्धा नहीं करनी चाहिए। ये बैंकिंग व्यवसाय के विकास के लिए हितकर रहेगा। यह सिद्धान्त सर्वमान्य है। केन्द्रीय बैंक को केवल केन्द्रीय बैंक के ही कार्य करने चाहिए। इससे देश की मुद्रा की पूर्ति पर उसका प्रभावपूर्ण नियन्त्रण रहे एवं चलन प्रणाली में एकरूपता बनी रहे।

आर्थिक विकास में केन्द्रीय बैंक की भूमिका
(Role of Central Bank in Economic Development)

विकासशील देशों में केन्द्रीय बैंक की व्यापारिक बैंकिंग प्रणाली तथा मुद्रा एवं पूँजी बाजार विकसित करने में अधिक गतिशील भूमिका होती है। विकसित देशों में व्यापारिक बैंक का पूर्ण रूप से विकास हुआ रहता है एवं उनके मुद्रा एवं पूँजी बाजार भी सुगठित रहते हैं। अत: इन देशों में इनकी भूमिका भिन्न होती है।

सेयर्स का मानना है कि अर्द्धविकसित देशों में केन्द्रीय बैंक को व्यापारिक बैंकों के कुछ कार्य भी करने चाहिए परन्तु यह ऐसे विवाद का विवाद विषय है। निम्न बिन्दुओं द्वारा यह स्पष्ट रूप से कहा जा सकता है कि विकासशील देशों में व्यापारिक बैंकिंग प्रणाली को विकसित करने में केन्द्रीय बैंक एक अहम् भूमिका निभाता है।

1. **प्रभावपूर्ण मौद्रिक नीति**—अर्द्धविकसित देशों में असंगठित बैंकिंग प्रणाली नियोजित आर्थिक विकास में बाधा उत्पन्न करती है। लोगों में बैंकिंग आदत का अभाव होना बैंकों की संख्या कम होना अर्थव्यवस्था में विकास को रोकती है। ऐसे में केन्द्रीय बैंक द्वारा एक सुदृढ़ मौद्रिक नीति को अपनाना अहम् हो जाता है।

TOUCH 'n' PASS

2. **पूँजी निर्माण में सहायक**—केन्द्रीय बैंक को अर्द्धविकसित देशों में पूँजी निर्माण में एक अहम् भूमिका निभानी चाहिए। बचत को गतिशील बनाने हेतु केन्द्रीय बैंक उचित कदम उठा सकता है और इस बचत को उत्पादक कार्यों में निवेश करने के लिए बैंकिंग प्रणाली को विकसित किया जाना चाहिए।
3. **साख की सुविधा में वृद्धि**—अर्द्धविकसित देशों की अर्थव्यवस्था मुख्यत: कृषि पर निर्भर होती है परन्तु इन क्षेत्रों में प्रचारित सुविधा न होने के कारण ये देश अर्द्धविकास के नियम चक्र में फँसे रहते हैं। अत: केन्द्रीय बैंक को चाहिए कि वह ऐसी व्यवस्था करें कि ग्रामीण क्षेत्रों के कृषकों के माध्यम एवं दीर्घकालीन ऋण उपलब्ध हो सके। कृषि साख संस्थाओं का विकास होना चाहिए। उदाहरण के लिए, भारत में नाबार्ड के माध्यम से रिजर्व बैंक यह सुविधा उपलब्ध कराता है।
4. **औद्योगिक क्षेत्र का विकास**—विशिष्ट औद्योगिक वित्त संस्थाओं की स्थापना करके औद्योगिक क्षेत्र का विकास केन्द्रीय बैंक द्वारा प्रोत्साहित किया जाना चाहिए। जैसे भारत में औद्योगिक विकास बैंक भारतीय औद्योगिक विकास बैंक की स्थापना में केन्द्रीय बैंक ने महत्त्वपूर्ण भूमिका निभायी है। इन संस्थाओं में देश की औद्योगिक वित्त की आवश्यकता की पूर्ति हो पा रही है।
5. **विदेशी विनिमय रिजर्व का प्रबन्ध**—केन्द्रीय बैंक विदेशी कोषों का संरक्षक होता है। अत: उसे बहुत सोच समझकर इन विदेशी विनिमय का प्रयोग करना चाहिए ताकि देश में कच्चा माल, मशीनें आदि आयातों की आवश्यकता की पूर्ति की जा सके जिससे कि देश की भुगतान सन्तुलन पर प्रतिकूल प्रभाव न पड़ सके।
6. **सार्वजनिक ऋण का प्रबन्ध**—प्रत्येक देश में केन्द्रीय बैंक सार्वजनिक ऋण प्रबन्ध करता है। केन्द्रीय बैंक की एक महत्त्वपूर्ण भूमिका अर्थव्यवस्था के आर्थिक नियोजन के लिए वित्तीय व्यवस्था करना है। केन्द्रीय बैंक सार्वजनिक ऋण का समुचित प्रबन्ध करता है जिससे देश को विदेशी ऋण पर आश्रित न रहना पड़े।
7. **व्यापारिक बैंकों के लिए प्रशिक्षित अधिकारियों एवं कर्मचारियों की व्यवस्था**—यह केन्द्रीय बैंक का कार्य है कि वह व्यापारिक बैंक के कुशल कार्य प्रणाली हेतु प्रशिक्षित कर्मचारियों की उचित व्यवस्था करे। सभी कर्मचारियों का उच्च प्रशिक्षण हेतु प्रबन्ध की जिम्मेदारी केन्द्रीय बैंक की होती है क्योंकि व्यापारिक बैंक इसके उचित व्यवस्था कराने में असक्षम होते हैं। साथ ही व्यापारिक बैंकों की शाखाओं का विस्तार और उनका सन्तुलित विकास केन्द्रीय बैंक को करना चाहिए।
8. **सरकार की सलाहकार की भूमिका**—सरकार को मौद्रिक वित्तीय एवं तकनीकी सलाह देना केन्द्रीय बैंक के कार्यों में शामिल है किन्तु एक अर्द्धविकसित देश में यह भूमिका और भी अहम हो जाती है। सरकार को आर्थिक, सामाजिक तथा तकनीकी सर्वेक्षण करके रिपोर्ट प्रस्तुत करना केन्द्रीय बैंक की जिम्मेदारी है जिससे कि सरकार उनका अवलोकन करके उचित नीतियाँ बना सके।

ऊपर दिये गये बिन्दुओं से यह स्पष्ट होता है कि अर्द्धविकसित देश की आर्थिक विकास को गति प्रदान करने में केन्द्रीय भूमिका एक अहम् भूमिका अदा करता है।

प्र.3. रिजर्व बैंक ऑफ इण्डिया का संक्षिप्त परिचय देते हुए इसके केन्द्रीय बैंकिंग सम्बन्धी कार्यों का वर्णन कीजिए।
Giving a brief introduction of Reserve Bank of India, mention its works related to central banking.
***अथवा* रिजर्व बैंक ऑफ इण्डिया के प्रमुख कार्यों का उल्लेख कीजिए।**
Explain the main functions of the Reserve Bank of India.

उत्तर

रिजर्व बैंक ऑफ इण्डिया
(Reserve Bank of India)

स्थापना—रिजर्व बैंक ऑफ इण्डिया भारत का केन्द्रीय बैंक है। इसकी स्थापना रिजर्व बैंक ऑफ इण्डिया अधिनियम, 1934 के अन्तर्गत की गयी थी। इसने केन्द्रीय बैंक के रूप में अपना कार्य 1 अप्रैल, 1935 ई० से करना आरम्भ कर दिया।
पूँजी—रिजर्व बैंक की पूँजी ₹ 5 करोड़ थी। यह ₹ 100-100 वाले 5 लाख शेयरों में विभक्त थी। 1 जनवरी, 1949 ई० को रिजर्व बैंक का राष्ट्रीयकरण कर दिया गया और इसके सभी शेयर भारत सरकार ने खरीद लिये। अब रिजर्व बैंक एक सरकारी संस्था है।

TOUCH 'n' PASS

प्रबन्ध—रिजर्व बैंक का प्रबन्ध एक केन्द्रीय संचालक मण्डल द्वारा होता है। इस समय संचालक मण्डल में 20 सदस्य हैं, जो इस प्रकार हैं—

1. एक गवर्नर—इसकी नियुक्ति भारत सरकार द्वारा की जाती है।
2. चार उप गवर्नर—इनकी नियुक्ति भी भारत सरकार द्वारा की जाती है।
3. दस भारतीय सरकार द्वारा मनोनीत संचालक।
4. चार स्थानीय मण्डलों द्वारा चुने गये संचालक।
5. एक भारत सरकार द्वारा मनोनीत सरकारी अधिकारी।

बैंक का कार्यालय—रिजर्व बैंक का मुख्य कार्यालय मुम्बई में स्थित है। इसके अन्य स्थानीय कार्यालय—नई दिल्ली, कोलकाता, चेन्नई, बंगलुरु, कानपुर, अहमदाबाद, हैदराबाद, पटना तथा नागपुर में हैं।

विभाग—इस समय रिजर्व बैंक के 12 विभाग हैं, जो इस प्रकार हैं—

1. निर्गमन विभाग, 2. बैंकिंग विभाग, 3. बैंकिंग विकास विभाग, 4. बैंकिंग क्रियाओं का विभाग, 5. कृषि साख विभाग, 6. विनिमय नियन्त्रण विभाग, 7. औद्योगिक वित्त विभाग, 8. गैर-बैंकिंग कम्पनीज विभाग, 9. कानून विभाग, 10. शोध एवं अंक विभाग।

जनवरी 1995 ई० में रिजर्व बैंक में दो नये विभाग और सृजित किये गये—11. मानव-संसाधन विकास विभाग, 12. सूचना व तकनीकी विभाग।

रिजर्व बैंक के कार्य
(Functions of Reserve Bank)

भारतीय रिजर्व बैंक भारत का केन्द्रीय बैंक है। यह उन सब कार्यों को सम्पन्न करता है, जो सामान्यत: एक केन्द्रीय बैंक द्वारा किये जाते हैं। भारतीय रिजर्व बैंक दो प्रकार के कार्य सम्पन्न करता है—(अ) केन्द्रीय बैंकिंग सम्बन्धी कार्य, (ब) साधारण बैंकिंग सम्बन्धी कार्य।

(अ) **केन्द्रीय बैंकिंग सम्बन्धी कार्य**—ये कार्य निम्नलिखित हैं—

1. **पत्र-मुद्रा का निर्गमन करना**—हमारे देश में पत्र-मुद्रा का निर्गमन करने का अधिकार केवल रिजर्व बैंक को प्राप्त है। एक रुपये के नोट को छोड़कर यह बैंक अन्य समस्त नोटों का निर्गमन करता है। नोट निर्गमन के पीछे ₹ 200 करोड़ का सोना व विदेशी प्रतिभूतियाँ (₹ 115 करोड़ का सोना + ₹ 35 करोड़ की विदेशी प्रतिभूतियाँ) कोष में रखना अनिवार्य होता है। आपातकालीन स्थिति में विदेशी प्रतिभूतियों की मात्रा में राष्ट्रपति की अनुमति से कमी की जा सकती है।
2. **सरकार के बैंकर का कार्य करना**—सरकारी बैंकर के रूप में वह निम्नलिखित कार्य सम्पन्न करता है—
   (i) भारत सरकार तथा राज्य सरकारों की ओर से धन प्राप्त करना और इसके आदेशानुसार इनका भुगतान करना।
   (ii) भारत सरकार तथा राज्य सरकारों की ओर से जनता से ऋण प्राप्त करना।
   (iii) सरकारी कोषों का स्थानान्तरण करना।
   (iv) भारत सरकार एवं राज्य सरकारों के लिए विदेशी विनिमय का प्रबन्ध करना।
   (v) भारत सरकार एवं राज्य सरकारों को आर्थिक सलाह देना।
3. **रिजर्व बैंक : बैंकों का बैंक**—बैंकों के बैंक के रूप में वह निम्नलिखित कार्य करता है—
   (i) रिजर्व बैंक व्यापारिक बैंकों का अन्तिम ऋणदाता है।
   (ii) रिजर्व बैंकों की साख नीति पर नियन्त्रण रखता है।
   (iii) सन् 1949 ई० के बैंकिंग नियमन अधिनियम के अन्तर्गत रिजर्व बैंक को व्यापक अधिकार प्राप्त हैं; जैसे—अनुसूचित बैंक का निरीक्षण करना, नये बैंकों की स्थापना के लिए अनुज्ञा-पत्र प्रदान करना आदि।
4. **विनिमय दर को स्थिर रखना**—रिजर्व बैंक रुपये की विनिमय दर को स्थिर रखता है, जो विनिमय नियन्त्रण के लिए अति आवश्यक है।
5. **साख का नियन्त्रण करना**—साख तथा मुद्रा पर नियन्त्रण करने के लिए रिजर्व बैंक देश में मुद्रा तथा साख की माँग व पूर्ति के मध्य सन्तुलन स्थापित करने का प्रयास करता है। देश में मौद्रिक स्थायित्व लाने के लिए यह एक महत्त्वपूर्ण कार्य है।

TOUCH 'n' PASS

6. **कृषि साख की व्यवस्था करना**—कृषि साख की व्यवस्था करने के लिए रिजर्व बैंक ने एक कृषि साख विभाग की स्थापना कर दी है। इस विभाग का मुख्य कार्य कृषि साख से सम्बन्धित समस्याओं के बारे में अनुसन्धान करना है।
7. **समाशोधन-गृह का कार्य करना**—रिजर्व बैंक देश का केन्द्रीय बैंक है। वह बैंकों को समाशोधन-गृह की सुविधा प्रदान करता है। यह कार्य करके रिजर्व बैंक सदस्य बैंकों में रुपये के स्थानान्तरण को सुविधाजनक बनाता है।
8. **औद्योगिक वित्त की व्यवस्था में सहायता करना**—रिजर्व बैंक ने 'औद्योगिक वित्त निगम' तथा 'राज्य वित्त निगमों' के बड़ी मात्रा में अंश खरीद रखे हैं। आवश्यकता पड़ने पर वह दीर्घकालीन व मध्यकालीन ऋण भी प्रदान करता है।
9. **आर्थिक व्यवस्था से सम्बन्धित समंक एकत्रित करना**—रिजर्व बैंक मुद्रा, साख, बैंकिंग, वित्त, कृषि एवं औद्योगिक उत्पादन आदि से सम्बन्धित आँकड़े एकत्रित करता है और उन्हें प्रकाशित करता है। ये आँकड़े देश की विभिन्न आर्थिक समस्याओं को समझने में सहायता देते हैं।

(ब) **साधारण बैंकिंग सम्बन्धी कार्य**—रिजर्व बैंक साधारण बैंक की हैसियत से भी कार्य करता है। ये कार्य निम्नलिखित हैं—

1. रिजर्व बैंक भारत सरकार, राज्य सरकारों एवं निजी व्यक्तियों से जमा स्वीकार करता है, परन्तु उस पर ब्याज नहीं देता।
2. वह 90 दिन में परिपक्व होने वाले बिलों को भुना सकता है, यदि उसका भुगतान भारत में होने वाला हो और उस पर एक सदस्य बैंक तथा एक प्रतिष्ठित व्यक्ति के हस्ताक्षर हों।
3. रिजर्व बैंक सदस्य बैंकों से कम-से-कम एक लाख रुपये के विदेशी विनिमय का क्रय-विक्रय करता है।
4. रिजर्व बैंक भारत में लिखे गये अधिक-से-अधिक 15 महीने की अवधि में परिपक्व होने वाले कृषि बिलों का क्रय-विक्रय कर सकता है तथा उनकी पुन: कटौती भी कर सकता है।
5. वह भारत सरकार व राज्य सरकारों को अधिक-से-अधिक 90 दिन की अवधि के लिए ऋण दे सकता है, किन्तु यह ऋण जमानत पर ही दिया जा सकता है।
6. रिजर्व बैंक भारत में किसी भी अनुसूचित बैंक से या किसी विदेशी बैंक से ऋण ले सकता है, किन्तु शर्त यह है कि यह ऋण 30 दिन की अवधि से अधिक समय के लिए न हो।
7. वह अन्तर्राष्ट्रीय बैंकों तथा अन्य विदेशी केन्द्रीय बैंकों में अपना खाता खोल सकता है और विदेशों में अपने अभिकर्त्ता बैंकों को नियुक्त कर सकता है।
8. वह अनेक प्रकार के विविध कार्यों को भी करता है; जैसे—सोने-चाँदी, हीरे-जवाहरात एवं प्रतिभूतियों को अपनी कस्टडी में रखना, सोने-चाँदी व सोने के सिक्कों को खरीदना व बेचना आदि।

प्र.4. भारतीय रिजर्व बैंक के परिमाणात्मक एवं गुणात्मक साख नियन्त्रण कार्य बताइए।
Discuss the quantitative and qualitative credit control works of Reserve Bank of India.

उत्तर

भारतीय रिजर्व बैंक द्वारा साख नियन्त्रण
(Credit Control by Reserve Bank of India)

रिजर्व बैंक साख के नियन्त्रण एवं नियमन हेतु दो प्रकार के साधनों का प्रयोग करता है—
(क) परिमाणात्मक साख नियन्त्रण, (ख) गुणात्मक साख नियन्त्रण।

(क) परिमाणात्मक साख नियन्त्रण (Quantitative Credit Control)

मुद्रा की मात्रा को नियन्त्रित करने के प्रमुख उपाय निम्नलिखित हैं—

1. **बैंक दर में परिवर्तन**—बैंक दर वह दर है, जिस पर केन्द्रीय बैंक व्यापारिक बैंकों को प्रथम श्रेणी की प्रतिभूतियों पर ऋण सुविधाएँ प्रदान करता है। सामान्यतया जब देश में मुद्रा-प्रसार की स्थिति होती है, तो बैंक दर में वृद्धि की जाती है और जब मुद्रा-संकुचन की स्थिति होती है तो बैंक दर में कमी हो जाती है।
2. **खुले बाजार की क्रियाएँ**—खुले बाजार की क्रियाओं से आशय केन्द्रीय बैंक द्वारा बाजार में प्रतिभूतियों, ऋण-पत्रों तथा बिलों के क्रय-विक्रय से है। केन्द्रीय बैंक द्वारा प्रतिभूतियों को बेचने से बाजार में मुद्रा की मात्रा कम हो जाती है, जिससे साख का सन्तुलन होता है और प्रतिभूतियों के खरीदे जाने से बाजार में मुद्रा की मात्रा बढ़ती है तथा साख का विस्तार हो जाता है।

TOUCH 'n' PASS

3. **नकद कोषों के अनुपात में परिवर्तन**—रिजर्व बैंक अधिनियम की **धारा 42 (I)** के अनुसार, प्रत्येक अनुसूचित बैंक को अपनी माँग जमाओं का 5% और समय जमाओं का 2% नकद कोष के रूप में रिजर्व बैंक के पास जमा करना अनिवार्य था। अक्टूबर 1956 ई० में इस धारा में संशोधन करके रिजर्व बैंक को यह अधिकार दे दिया गया कि वह माँग जमाओं के प्रतिशत 2 से 8 तक कर सकता है, परन्तु यह रकम समय जमाओं में 8% तथा माँग जमाओं में 20% से अधिक नहीं होनी चाहिए। 15 सितम्बर, 1962 ई० को माँग तथा सावधि जमाओं में अन्तर को समाप्त करके सब अनुसूचित बैंकों के लिए अपनी कुल जमा रकम का 3% रिजर्व बैंक में जमा करना अनिवार्य कर दिया गया और इस राशि को 15% तक बढ़ाने का अधिकार रिजर्व बैंक को दे दिया गया। 28 जनवरी, 2022 से मेट डिमांड और टाइम लाइविलहीस (NDTL) के अनुसार जमा अनुसूचित बैंक को कम-से-कम 4% राशि रिजर्व बैंक में जमा करानी जरूरी है।
4. **वैधानिक तरल कोषानुपात**—'बैंकिंग नियमन अधिनियम, 1949' की **धारा 24** के अन्तर्गत यह व्यवस्था की गयी कि भारत में कार्य करने वाले बैंक को अपनी कुल जमा राशि का कम-से-कम 25% भाग तरल कोषों के रूप में तथा शेष स्वर्ण व अनुमोदित प्रतिभूतियों के रूप में रखना अनिवार्य है।

(ख) गुणात्मक साख नियन्त्रण (Qualitative Credit Control)

1. **चयनात्मक साख नियन्त्रण**—जब रिजर्व बैंक यह अनुभव करता है कि अर्थव्यवस्था के कुछ क्षेत्रों में उदार साख नीति की आवश्यकता है तो बैंक चयनात्मक साख नियन्त्रण व्यवस्था को अपनाता है। इस व्यवस्था के अन्तर्गत रिजर्व बैंक सार्वजनिक हित में किसी एक बैंक अथवा सम्पूर्ण बैंकों को ऋण सम्बन्धी तीन प्रकार के निर्देश देता है—(i) मूल्यान्तर निश्चित करने से सम्बद्ध निर्देश, (ii) ऋण देने पर प्रतिबन्ध लगाना, (iii) पूर्वानुमति से ऋण लेना।
चयनात्मक साख नियन्त्रण की नीति को अपनाने के मुख्यत: दो उद्देश्य रहे हैं—
(i) आवश्यक वस्तुओं को सट्टे तथा जमाखोरी के लिए साख की सुविधाओं पर रोक लगाना।
(ii) इन वस्तुओं की कीमतों को अनुचित रूप से बढ़ने से रोकना।
2. **प्राधिकरण की योजना**—1965 ई० से प्रारम्भ इस योजना के अन्तर्गत 1 नवम्बर, 1975 ई० से यह व्यवस्था की गई कि किसी एक व्यक्ति या संस्था को ₹ 2 करोड़ या इससे अधिक राशि देने के पूर्व सभी बैंकों को रिजर्व बैंक की अनुमति प्राप्त करनी होगी।
3. **नैतिक प्रभाव**—सामान्यतया चयनात्मक साख नियन्त्रणों के साथ-साथ रिजर्व बैंक नैतिक प्रभाव तथा प्रचार का प्रभावपूर्ण उपयोग कर सकता है। सामान्यत: व्यापारिक बैंक उसकी सलाह तथा निर्देश की उपेक्षा नहीं कर सकते क्योंकि वे जानते हैं कि उनकी सलाह न मानने पर उन्हें हानि हो सकती है।
4. **प्रत्यक्ष कार्यवाही**—रिजर्व बैंक को यह अधिकार भी प्राप्त है कि यदि कोई बैंक उसके आदेशों का पालन न करे अथवा उसकी नीतियों के विरुद्ध आचरण करे, तो वह उसका लाइसेन्स रद्द कर दे अथवा उसे किसी अन्य तरीके से दण्डित करे।

बहुविकल्पीय प्रश्न

प्र.1. केन्द्रीय बैंक की आवश्यकता क्यों है?
(a) पत्र-मुद्रा का निर्गमन (b) साख नियन्त्रण
(c) बैंकों की आर्थिक सहायता (d) ये सभी
उत्तर (d) ये सभी

प्र.2. रिजर्व बैंक भारत में लिखे गये अधिक-से-अधिक कितने महीने की अवधि से परिपक्व होने वाले कृषि बिलों का क्रय-विक्रय कर सकता है—
(a) 12 महीने (b) 13 महीने (c) 14 महीने (d) 15 महीने
उत्तर (d) 15 महीने

प्र.3. रिजर्व बैंक भारत सरकार व राज्य सरकारों को अधिक-से-अधिक कितने दिन की अवधि के लिए ऋण दे सकता है?
(a) 80 दिन (b) 75 दिन (c) 90 दिन (d) 100 दिन
उत्तर (c) 90 दिन

TOUCH 'n' PASS

प्र.4. भारतीय रिजर्व बैंक की स्थापना का कौन-सा उद्देश्य है?
(a) मुद्रा एवं साख नीति में समन्वय (b) रुपये के आन्तरिक एवं बाह्य मूल्य में स्थिरता
(c) बैंकों के नकद कोषों का केन्द्रीयकरण करना (d) ये सभी

उत्तर (d) ये सभी

प्र.5. भारतीय रिजर्व बैंक का मुख्यालय कहाँ है?
(a) दिल्ली (b) मुम्बई (c) कोलकाता (d) चेन्नई

उत्तर (b) मुम्बई

प्र.6. किसी व्यक्ति या संस्था को 2 करोड़ या इससे अधिक राशि देने के पूर्व सभी बैंकों को रिजर्व बैंक की अनुमति प्राप्त करनी होगी यह व्यवस्था कब से की गई है —
(a) 1 नवम्बर, 1974 (b) 1 नवम्बर, 1975 (c) 1 नवम्बर, 1976 (d) 1 नवम्बर, 1977

उत्तर (b) 1 नवम्बर, 1975

प्र.7. यह कथन किसका है "केन्द्रीय बैंक का अन्य बैंकों के साथ ठीक वही सम्बन्ध होता है जैसा स्वयं अन्य बैंकों का जनता के साथ होता है।"
(a) कैन्ट (b) सेयर्स (c) शॉ (d) क्राउथर

उत्तर (d) क्राउथर

प्र.8. रिजर्व बैंक सदस्य बैंकों से कम-से-कम कितने लाख रुपये के विदेशी विनिमय का क्रय-विक्रय करता है?
(a) 1 लाख (b) 2 लाख (c) 3 लाख (d) 4 लाख

उत्तर (a) 1 लाख

प्र.9. निम्न में से कौन-से कार्य रिजर्व बैंक करता है—
1. सोने-चाँदी के सिक्कों का क्रय-विक्रय
2. लोगों की बहुमूल्य वस्तुओं को अपने संरक्षण में रखना
3. ग्राहकों के लिए साख प्रमाण-पत्र जारी करना
4. तार द्वारा एक स्थान से दूसरे स्थान पर रुपये भेजना

(a) 1, 2, 4 (b) 2, 3, 4 (c) 1, 3, 4 (d) 1, 2, 3,4

उत्तर (d) 1, 2, 3,4

प्र.10. रिजर्व बैंक किसी भी अनुसूचित बैंक या किसी विदेशी बैंक से अधिक-से-अधिक कितने दिन के लिए ऋण ले सकता है—
(a) 30 दिन (b) 45 दिन (c) 60 दिन (d) 75 दिन

उत्तर (a) 30 दिन

प्र.11. रिजर्व बैंक का कौन-सा निषिद्ध कार्य नहीं है—
(a) ऐसी प्रतिभूति की जमानत पर ऋण नहीं दे सकता जो इसके द्वारा अनुमोदित न हो
(b) नोट छापने का कार्य
(c) बिलों को नहीं लिख सकता
(d) बिलों को स्वीकार नहीं कर सकता

उत्तर (b) नोट छापने का कार्य

प्र.12. केन्द्रीय बैंक के कार्यों में कौन-सा शामिल है?
(a) समशोधन एवं स्थानान्तरण सुविधा (b) साख नियन्त्रण
(c) नोट निर्गमन का एकाधिकार (d) ये सभी

उत्तर (d) ये सभी

TOUCH 'n' PASS

प्र.13. नोट निर्गमन का एकाधिकार केन्द्रीय बैंक को देने का निम्नलिखित में कौन-सा कारण है—

(a) मुद्रा प्रणाली में एकरूपता (b) साख निर्माण पर नियन्त्रण
(c) मुद्रा प्रणाली में लोच (d) ये सभी

उत्तर (d) ये सभी

प्र.14. प्रत्येक अनुसूचित बैंक को रिजर्व बैंक की धारा 42(1) के तहत समय जमाओं का कितने प्रतिशत नकद कोष के रूप में रिजर्व बैंक के पास जमा करना अनिवार्य है—

(a) 1% (b) 2% (c) 3% (d) 4%

उत्तर (c) 3%

प्र.15. कब अनुसूचित बैंकों के लिए अपनी कुल जमा का 3% रिजर्व बैंक में जमा करना अनिवार्य कर दिया गया और इस राशि को 1.5% तक बढ़ाने का अधिकार रिजर्व बैंक को दे दिया गया—

(a) 15 सितम्बर, 1962 (b) 16 सितम्बर, 1962 (c) 17 सितम्बर, 1962 (d) 18 सितम्बर, 1962

उत्तर (a) 15 सितम्बर, 1962

प्र.16. 28 जनवरी, 2022 के अनुसार नेट डिमांड और टाइम लाइबलटीज (NDTL) के अनुसार रिजर्व बैंक के पास एक निश्चित राशि अनुसूचित बैंक को जमा करना अनिवार्य है—

(a) 3% (b) 4% (c) 5% (d) 6%

उत्तर (b) 4%

प्र.17. किस बैंकिंग अधिनियम के द्वारा भारत में कार्यरत बैंक को अपनी कुल जमा राशि का कम-से-कम कितने प्रतिशत भाग तरल कोषों के रूप में तथा शेष स्वर्ण व अनुमोदित प्रतिभूतियों के रूप में रखना अनिवार्य है—

(a) 15% (b) 20% (c) 25% (d) 30%

उत्तर (c) 25%

प्र.18. व्यापारिक बैंक किसके निर्देशन में समाशोधन गृह का कार्य कर सकते हैं?

(a) स्टेट बैंक ऑफ इण्डिया के (b) केन्द्रीय बैंक के
(c) वित्त मन्त्री के (d) इनमें से कोई नहीं

उत्तर (b) केन्द्रीय बैंक के

प्र.19. 24 मई, 2022 के आँकड़ों के अनुसार वैधानिक तरलता अनुपात SLR कितना है—

(a) 17% (b) 18% (c) 19% (d) 20%

उत्तर (b) 18%

प्र.20. वैधानिक तरल अनुपात को रिजर्व बैंक कितना कर सकता है?

(a) 30% (b) 35% (c) 40% (d) 45%

उत्तर (c) 40%

❑

TOUCH n PASS

UNIT-V

सार्वजनिक वित्त की प्रकृति और कार्यक्षेत्र
Nature and Scope of Public Finance

खण्ड-अ अतिलघु उत्तरीय प्रश्न

प्र.1. राजस्व या लोक वित्त का क्या अर्थ है?
What is the meaning of Revenue or Public Finance?

उत्तर अंग्रेजी भाषा में (Public Finance) शब्द का हिन्दी में अर्थ 'लोक वित्त' है। 'लोक' या सार्वजनिक शब्द का आशय जनता के समूह को वैधानिक रूप से प्रतिनिधित्व करने वाली सत्ता से है। लोक वित्त विषय के सन्दर्भ में इस सत्ता के अन्तर्गत केन्द्रीय, राज्य और स्थानीय सरकारों को शामिल किया जा सकता है।

प्र.2. लोक एवं निजी वित्त व्यवस्था की तुलना कीजिए।
Compare Public and Private Finance.

उत्तर लोक वित्त के अध्ययन के सन्दर्भ में इसकी विशेषताओं को गहनता से समझने की दृष्टि से निजी वित्त के साथ इसकी तुलना महत्त्वपूर्ण मानी जाती है। निजी वित्त से आशय ऐसी व्यक्तिगत इकाइयों की वित्तीय नीतियों और समस्याओं से होता है, जो सरकार के अंग नहीं है। लोक एवं निजी वित्त के तुलनात्मक अध्ययन की दो भागों में विभक्त किया जा सकता है—(1) समानताएँ तथा (2) असमानताएँ।

प्र.3. उर्सला हिक्स ने राजस्व की नीतियों की जाँच के लिए किन कसौटियों को प्रस्तुत किया।
Which criteria was presented by Ursula Hicks to test revenue policies?

उत्तर **उर्सला हिक्स** (Ursula Hicks) ने राजस्व की नीतियों की जाँच के लिए दो कसौटियाँ प्रस्तुत की हैं—प्रथम, अनुकूल उत्पाद (Production Optimum) एवं द्वितीय, अनुकूलतम उपयोगिता (Utility Optimum)। उनका विचार है कि समस्त आर्थिक क्रियाओं का उद्देश्य आवश्यकताओं की सन्तुष्टि है अत: मानवीय आवश्यकताओं की सन्तुष्टि करने के साधनों में वृद्धि होनी चाहिए अर्थात् उत्पादन में वृद्धि की जानी चाहिए। उत्पादन बढ़ाने के अनेक विकल्प हो सकते हैं तथा हमें ऐसा विकल्प चुनना चाहिए जिससे हमारी सन्तुष्टि अधिकतम हो क्योंकि यही हमारे आर्थिक प्रयत्नों का अन्तिम उद्देश्य है। एक समाज में उपयोगिता या सन्तुष्टि उस समय अधिकतम होती है जब बिना किसी दूसरों की सन्तुष्टि को कम किए हुए, किसी एक की सन्तुष्टि में वृद्धि न की जा सके।

इस प्रकार **प्रो० डाल्टन** और **उर्सला हिक्स** ने राजस्व की क्रियाओं के सामाजिक लाभ का मानदण्ड स्थापित किया है।

प्र.4. प्रो० डाल्टन के अधिकतम सामाजिक लाभ की जाँच के लिए वस्तुगत सुझाव संक्षेप में लिखिए।
Write in brief the objectives presented by Prof. Dalton to test Maximum Social Advantage Theory.

उत्तर उपर्युक्त कठिनाइयों को देखते हुए **प्रो० डाल्टन** ने अधिकतम सामाजिक लाभ की जाँच के लिए कुछ वस्तुगत (objective) सुझाव प्रस्तुत किए हैं। वे जाँच के आधार विस्तृत रूप से हमें इस बात का निर्णय करने में सहायता करते हैं कि राजस्व की किसी क्रिया के फलस्वरूप आर्थिक कल्याण में वृद्धि होती है अथवा नहीं। ये जाँच की कसौटियाँ पाँच प्रकार की हैं जो निम्नलिखित हैं—

1. बाह्य आक्रमण से रक्षा एवं आन्तरिक शान्ति की स्थापना होनी चाहिए
2. उत्पादन में वृद्धि होनी चाहिए

TOUCH 'n' PASS

3. आय और सम्पत्ति के वितरण में सुधार करके सामाजिक न्याय सुनिश्चित किया जाना चाहिए
4. आर्थिक क्रियाओं और रोजगार के स्तर में स्थिरता होनी चाहिए
5. भावी पीढ़ी के हित सुरक्षित रहने चाहिए।

खण्ड-ब लघु उत्तरीय प्रश्न

प्र.1. राजस्व की विभिन्न परिभाषाओं का उल्लेख कीजिए।
Mention different definitions of Public Finance.

उत्तर

राजस्व (लोक-वित्त) की परिभाषाएँ
(Definitions of Public Finance)

अन्य आर्थिक विषयों की भाँति राजस्व की परिभाषा में भी कठिनाइयाँ रही हैं। इसका मूल कारण यह है कि राजस्व निरन्तर एक गतिशील विज्ञान रहा है और सरकार के कार्य-क्षेत्र एवं उत्तरदायित्वों में वृद्धि होने के साथ ही इस विषय की प्रकृति एवं क्षेत्र में भी परिवर्तन होता रहा है।

राजस्व की कुछ महत्त्वपूर्ण परिभाषाएँ निम्न प्रकार हैं—

1. **डाल्टन** (Dalton) के अनुसार, "राजस्व का सम्बन्ध लोक सत्ताओं के आय और व्यय से तथा एक-दूसरे के साथ समायोजन से है।"
2. **प्लेहन** (Plehn) के अनुसार, "राजस्व वह विज्ञान है, जो राजनीतिज्ञों द्वारा राज्य के उचित कार्यों को पूरा करने के लिए भौतिक साधनों की प्राप्ति एवं प्रयोग करने से सम्बन्धित क्रियाओं का अध्ययन करता है।"
3. **बेस्टेबिल** के अनुसार, "राजस्व राज्य की लोक-सत्ताओं के व्यय और आय तथा उनके पारस्परिक सम्बन्ध और वित्तीय प्रशासन तथा नियन्त्रण से सम्बन्धित है।"
4. **फिण्डले शिराज** के अनुसार, "राजस्व लोक-सत्ताओं (सरकारों) द्वारा कोषों के व्यय करने एवं प्राप्त करने में निहित सिद्धान्त का अध्ययन है।"
5. **फिलिप ई० टेलर** (Philip E. Taylor) के शब्दों में, "राजस्व सरकारी संस्था के अन्तर्गत जनता के एक संगठित समूह की वित्त-व्यवस्था का अध्ययन करता है। इस प्रकार, यह केवल सरकार की वित्त-व्यवस्था से सम्बन्धित है और सरकार की वित्त-व्यवस्था में सरकारी कोषों की प्राप्ति एवं वितरण शामिल होती है।"
6. **उर्सला हिक्स** (Ursula Hicks) के अनुसार, "राजस्व का मुख्य विषय उन विधियों का निरीक्षण एवं मूल्यांकन करना है, जिनके द्वारा शासन संस्थाएँ आवश्यकताओं की सामूहिक सन्तुष्टि करने का प्रबन्ध करती हैं और अपने उद्देश्यों की पूर्ति के लिए आवश्यक कोष प्राप्त करती हैं।"
7. **रिचार्ड मसग्रेव** (Richard Musgrave) के अनुसार, "राजस्व सार्वजनिक अर्थव्यवस्था के सिद्धान्तों का अनुसन्धान है या अधिक स्पष्ट रूप में आर्थिक नीति के उन पहलुओं का अध्ययन है, जो सार्वजनिक बजट की क्रियाओं के फलस्वरूप उत्पन्न होते हैं।"

प्र.2. राजस्व की प्रकृति का उल्लेख कीजिए।
Mention nature of Public Finance.

उत्तर

राजस्व की प्रकृति
(Nature of Public Finance)

राजस्व की प्रकृति के सम्बन्ध में अर्थशास्त्र की भाँति मूल प्रश्न यह उठता है कि राजस्व विज्ञान है या कला? यद्यपि इसका उत्तर बड़ा आसान है कि जब राजस्व अर्थशास्त्र का एक अंग है और अर्थशास्त्र विज्ञान तथा कला दोनों है तो राजस्व भी विज्ञान तथा कला दोनों होगा, लेकिन फिर भी विश्लेषण करके इसकी पुष्टि की जा सकती है।

राजस्व एक विज्ञान के रूप में (Public Finance as a Science)

सामान्यत: किसी विषय के क्रमबद्ध अध्ययन (Systematic knowledge of any subject) को विज्ञान की संज्ञा दी जाती है। यदि विज्ञान के आशय को एक परिभाषा के रूप में रखें तो यह कहा जा सकता है कि "विज्ञान नियमों या सिद्धान्तों (Laws,

TOUCH 'n' PASS

ूपदेगे दे ज्ञेहमज्ते) का एक समूह होता है। यह नियम या सिद्धान्त 'कारण और परिणाम' (Cause and Effect) के सम्बन्ध पर आधारित होते हैं।'' अर्थात् इन सिद्धान्तों या नियमों के आधार पर यदि हमें किसी तथ्य का परिणाम मालूम है, तो उसके कारणों का पता लगा सकते हैं और यदि कारण मालूम है तो सम्भावित परिणामों का अनुमान लगा सकते हैं। इस आधार पर निश्चित रूप से ही राजस्व को विज्ञान कहा जा सकता है, क्योंकि राजस्व में सरकार की वित्तीय क्रियाओं एवं उनसे सम्बन्धित विभिन्न पहलुओं का क्रमबद्ध अध्ययन किया जाता है और उनकी क्रियाओं को सुचारु रूप से चलाने के लिए करों, व्ययों और ऋण नीतियों के बारे में विभिन्न नियमों और सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया गया है।

विज्ञान के भी दो पहलू होते हैं—वास्तविक (Positive) और आदर्शात्मक (Normative)। वास्तविक पहलू में वास्तविक स्थिति का अध्ययन किया जाता है, अर्थात् यह विश्लेषण किया जाता है कि क्या है? (What it is?) जबकि आदर्शात्मक पहलू में आदर्श स्थिति के बारे में भी अध्ययन किया जाता है, अर्थात् यह विश्लेषण किया जाता है कि क्या होना चाहिए? (What it is should be?) राजस्व दोनों पहलू रखता है। वास्तविक पहलू की दृष्टि से हम राजस्व में यह अध्ययन करते हैं कि वर्तमान में विभिन्न राजकोषीय नीतियाँ क्या हैं, और इनका अर्थव्यवस्था पर क्या प्रभाव पड़ रहा है। इस पहलू में सरकार इस बात की व्याख्या कर सकती है कि जो नीतियाँ अपनायी गई हैं वे क्यों अपनायी गई हैं और उनके सम्भावित परिणाम क्या होंगे? इसमें इस बात के विश्लेषण पर कोई ध्यान नहीं दिया जाता है कि अपनायी जाने वाली नीतियाँ आदर्श नीतियों से कहाँ तक भिन्न हैं? इसके विपरीत राजस्व के आदर्शात्मक पहलू की दृष्टि से संसाधनों का आदर्श वितरण, आय का आदर्श वितरण, रोजगार का आदर्श इत्यादि आदर्श निर्धारित कर लिए जाते हैं और फिर विद्यमान स्थिति से तुलना करके यह विश्लेषण किया जाता है कि हम आदर्शों से कहाँ पीछे हैं और उनमें कहाँ सुधार की आवश्यकता है?

राजस्व के वास्तविक और आदर्शात्मक पहलू के सम्बन्ध में श्रीमती उर्सला हिक्स के यह विचार भी उल्लेखनीय हैं कि ''राजस्व के अर्थशास्त्र के सामान्य अध्ययन के एक भाग होने के नाते वास्तविक और आदर्शात्मक दोनों पहलू हैं, लेकिन इसके कार्य-क्षेत्र की विशिष्टता के कारण इसके विशिष्ट लक्षण हैं।'' इस सम्बन्ध में निम्न दो तथ्यों का उल्लेख किया जा सकता है—(1) सामान्य अर्थशास्त्र में वास्तविक पहलू अधिक है और आदर्शात्मक पहलू कम है, जबकि राजस्व में वास्तविक पहलू कम है और आदर्शात्मक पहलू अधिक है। (2) सामान्य अर्थशास्त्र के सिद्धान्तों में सार्वभौमिकता अधिक रहती है, जबकि राजस्व के सिद्धान्तों में आर्थिक पद्धति तथा विकास के स्तर इत्यादि में भिन्नता के कारण परिवर्तन करना होता है।

राजस्व एक कला के रूप में (Public Finance as an Art)

'कला एक दिए हुए उद्देश्य की प्राप्ति के लिए नियमों की एक प्रणाली है।' अर्थात् किसी उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए अपनायी गई विधि या प्रक्रिया को कला कहा जाता है। इस दृष्टि से राजस्व एक कला भी है। राजस्व को हम आदर्शात्मक विज्ञान मान चुके हैं और कला आदर्शात्मक विज्ञान की पूरक है। सरकार जिन उपायों से राजस्व के आदर्शात्मक पहलुओं की पूर्ति का प्रयास करती है, उन्हीं उपायों को कला के अन्तर्गत शामिल किया जाता है और सरकार की वित्तीय क्रियाओं के संचालन के लिए बजट बनाना स्वयं में एक बहुत बड़ी कला है। **उर्सला हिक्स** ने लिखा है, ''राजस्व एक कला है, (क्योंकि) इसका सम्बन्ध वास्तविक समस्याओं से है।''

प्र.3. अधिकतम सामाजिक लाभ सिद्धान्त की आलोचना कीजिए।
Criticise the Principle of Maximum Social Advantage.

उत्तर

अधिकतम सामाजिक लाभ सिद्धान्त की आलोचना
(Criticism of Principle of Maximum Social Advantage)

जैसा कि ऊपर इस सिद्धान्त की कुछ विचारणीय बातों के अन्तर्गत स्पष्ट किया जा चुका है, अधिकतम सामाजिक लाभ सिद्धान्त के व्यावहारिक प्रयोग में कुछ कठिनाइयाँ हैं, जिन्हें हम इस सिद्धान्त की आलोचना कह सकते हैं। मुख्य कठिनाइयाँ इस प्रकार हैं—

1. **त्याग और उपयोगिता का माप कठिन**—यह माप करना बहुत कठिन है कि कर देने वाले व्यक्तियों द्वारा कितना त्याग किया जाता है एवं सरकार के व्यय से व्यक्तियों को कितनी उपयोगिता अथवा लाभ प्राप्त होता है। वास्तव में ये आत्मगत (Subjective) तत्त्व हैं जिनका माप कठिन है।
2. **वर्तमान त्याग और भविष्य उपयोगिता का अनुमान**—सरकार द्वारा जो व्यय किया जाता है उसका फल तुरन्त नहीं मिलता, जैसे कि शिक्षा पर व्यय दीर्घकाल में उपयोगिता देता है। इस दृष्टि से यदि देखें तो जनता पर लगाए गए कर का

भार तो तत्काल पड़ता है किन्तु व्यय की उपयोगिता भविष्य में प्राप्त होती है, अत: वर्तमान त्याग के आधार पर, भविष्य के लाभ का अनुमान लगाना कठिन है।

3. **अनुपयोगिता और उपयोगिता में सम्बन्ध कठिन है**—उपयोगिता और अनुपयोगिता का माप कठिन होने के कारण, इन दोनों के बीच सम्बन्ध स्थापित करना भी कठिन है।
4. **गैर-आर्थिक तत्त्वों का प्रभाव**—यदि केवल आर्थिक घटकों पर ही विचार किया जाए तो अधिकतम सामाजिक लाभ के माप पर विचार किया जा सकता है किन्तु राजस्व की क्रियाओं पर कुछ गैर-आर्थिक घटकों का भी प्रभाव पड़ता है जिससे इसका माप और भी कठिन हो जाता है।
5. **कर भार का अनुमान लगाना कठिन**—पहले तो कर भार का अनुमान लगाना कठिन है किन्तु कुछ प्रभाव संयुक्त करों के फलस्वरूप होता है अत: अलग-अलग करों के भार की गणना करना और भी कठिन है। यदि कुछ करों को हटाकर उनके बदले होने वाली उपयोगिता की गणना हम करना चाहें तो यह मुश्किल कार्य है।

प्र.4. अधिकतम सामाजिक लाभ के सिद्धान्त का महत्त्व लिखिए।
Write the importance of the Principle of Maximum Social Advantage.

उत्तर

अधिकतम सामाजिक लाभ के सिद्धान्त का महत्त्व
(Importance of the Principle of Maximum Social Advantage)

उपर्युक्त कठिनाइयों के बावजूद अधिकतम सामाजिक लाभ सिद्धान्त का निम्नलिखित महत्त्व है—

1. **राजस्व क्रियाओं का उद्देश्य स्पष्ट**—इस सिद्धान्त से यह स्पष्ट होता है कि राजस्व क्रियाओं का उद्देश्य अधिकतम सामाजिक कल्याण होना चाहिए।
2. **सार्वजनिक व्यय के सम्बन्ध में नए दृष्टिकोण का प्रतिपादन**—सरकारी व्यय के सम्बन्ध में प्राचीन दृष्टिकोण यह था कि सरकार को पहले आय देखनी चाहिए एवं सन्तुलित बजट बनाना चाहिए किन्तु वर्तमान में सार्वजनिक व्यय, लोक जीवन की आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर किया जाता है। अधिकतम सामाजिक लाभ का सिद्धान्त लाभ एवं लागत दोनों को दृष्टि में रखता है।
3. **प्राचीन सिद्धान्तों से श्रेष्ठ**—इसके पूर्व सार्वजनिक व्यय एवं करारोपण के सम्बन्ध में जो पूर्व विचार प्रतिपादित किए गए थे, वे एकपक्षीय थे, जैसे प्रत्येक कर बुरा होता है एवं सरकार को कम-से-कम व्यय करना चाहिए। इसके विपरीत, अधिकतम सामाजिक लाभ का सिद्धान्त स्पष्ट करता है कि एक निश्चित सीमा तक कर लगाने एवं सार्वजनिक व्यय किए जाने के फलस्वरूप सामाजिक कल्याण में वृद्धि होती है।
4. **कुछ परिस्थितियों में सामाजिक लाभ मापने योग्य है**—यद्यपि अधिकतम सामाजिक लाभ की आलोचना में यह बताया गया है कि इसका माप कठिन होता है किन्तु कुछ दशाओं में सामाजिक लाभ मापा जा सकता है; जैसे बाढ़ नियन्त्रण पर किए जाने वाले व्यय से होने वाले लाभ का अनुमान लगाना सम्भव है।

खण्ड-स विस्तृत उत्तरीय प्रश्न

प्र.1. राजस्व के विभाग या क्षेत्र या विषय सामग्री का वर्णन कीजिए।
Describe the divisions or subject matter or scope of Public Finance.

उत्तर

राजस्व के विभाग या क्षेत्र या विषय-सामग्री
(Divisions or Subject Matter or Scope of Public Finance)

वर्तमान समय में राजस्व की विषय-सामग्री को निम्न छ: भागों में वर्गीकृत किया जा सकता है—

1. लोक या सार्वजनिक व्यय (Public Expenditure),
2. लोक आगम या सार्वजनिक आय (Public Revenue),
3. लोक ऋण (Public Debt),
4. वित्तीय प्रशासन एवं नियन्त्रण (Financial Administration and Control),

TOUCH 'n PASS

5. आर्थिक स्थायित्व या राजकोषीय नीति (Economic Stabilisation or Fiscal Policy),
6. संघीय वित्त (Federal Finance)।

उपर्युक्त विभिन्न पहलुओं का विस्तृत वर्णन निम्न प्रकार है—

1. **लोक या सार्वजनिक व्यय** (Public Expenditure)—लोक व्यय राजस्व का उसी प्रकार से एक महत्त्वपूर्ण अंग है, जिस प्रकार कि उपभोग अर्थशास्त्र का। **प्रो० प्लेहन** के अनुसार, "व्यय आय को एकत्रित करने तथा राज्य की अन्य वित्तीय क्रियाओं का उद्देश्य एवं साध्य है। यदि इसकी उपेक्षा की गई, तो अन्य सभी क्रियाओं के उद्देश्यों को भी छोड़ना होगा।"
लोक व्यय के अन्तर्गत अध्ययन के मुख्य विषय निम्न प्रकार हैं—(1) लोक व्यय का क्षेत्र, अर्थात् किन-किन मदों पर लोक व्यय करना चाहिए? (2) लोक व्यय का वर्गीकरण, अर्थात् लोक व्यय कितने प्रकार के हो सकते हैं? (3) लोक व्यय के सिद्धान्त, अर्थात् लोक व्ययों को करने में किन-किन बातों को ध्यान में रखना चाहिए? (4) लोक व्यय के प्रभाव, अर्थात् लोक व्यय का अर्थव्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रों एवं पहलुओं पर क्या प्रभाव पड़ता है? (5) लोक व्ययों की तुलना और यह तुलना विभिन्न मदों, विभिन्न राज्यों, विभिन्न राष्ट्रों तथा विभिन्न वर्गों के मध्य हो सकती है। (6) लोक व्यय से सम्बन्धित समस्याएँ एवं उनका समाधान।
2. **लोक आगम या सार्वजनिक आय** (Public Revenue)—राजस्व का दूसरा महत्त्वपूर्ण भाग लोक आगम है। लोक आगम से अभिप्राय सरकार द्वारा प्राप्त किए गए उस धन से है, जिसको वापस करने का उत्तरदायित्व नहीं होता। लोक आगम के अन्तर्गत अध्ययन के मुख्य विषय निम्न प्रकार हैं—(1) सार्वजनिक आय का वर्गीकरण, अर्थात् सार्वजनिक आय के विभिन्न साधन या स्रोत क्या हैं, (2) कर का वर्गीकरण, (3) करारोपण के सिद्धान्त एवं करारोपण में न्याय की समस्या, अर्थात् कर लगाने में किन बातों को ध्यान में रखना चाहिए, (4) करदान क्षमता का अर्थ एवं इसके निर्धारक घटक, (5) करापात, करापात एवं कर-विवर्तन की समस्या तथा निर्धारक घटक, (6) सार्वजनिक आय का अर्थव्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रों पर प्रभाव, तथा (7) करारोपण की विभिन्न समस्याएँ एवं सुझाव।
3. **लोक ऋण** (Public Debt)—वर्तमान समय में लोक ऋण भी राजस्व का एक महत्त्वपूर्ण अंग बन गया है। कभी कुछ आर्थिक नीतियों की दृष्टि और कभी लोक आगम तथा कभी लोक व्यय के अन्तर की पूर्ति के लिए सरकार को ऋण लेना पड़ता है। लोक ऋण की प्रमुख विशेषता यह है कि सरकार को ऋण के रूप में प्राप्त धनराशि का भुगतान करना पड़ता है और सामान्यत: इस राशि पर ब्याज भी दिया जाता है।
लोक ऋण भाग में अध्ययन के मुख्य विषय निम्न प्रकार हैं—(1) लोक ऋण का क्षेत्र, अर्थात् सरकार का किन परिस्थितियों अथवा किन कार्यों के लिए लोक ऋण लेना पड़ता है या लेना चाहिए। (2) लोक ऋण का वर्गीकरण, अर्थात् लोक ऋण कितने प्रकार के होते हैं। (3) ऋण और कर का तुलनात्मक अध्ययन, अर्थात् किन परिस्थितियों में कर लगाना और किन परिस्थितियों में ऋण द्वारा साधनों का जुटाना उचित रहता है। (4) आन्तरिक और बाहरी ऋण का तुलनात्मक अध्ययन और उपयुक्तता। (5) ऋण प्राप्ति की रीतियाँ। (6) ऋणों के भुगतान की रीतियाँ। (7) ऋणों का अर्थव्यवस्था पर प्रभाव।
4. **वित्तीय प्रशासन एवं नियन्त्रण** (Financial Administration and Control)—सरकार के आय एवं व्ययों में वृद्धि तथा उनकी विभिन्न जटिलताओं और समस्याओं के कारण वित्तीय प्रशासन भाग का महत्त्व भी बढ़ता जा रहा है। वित्तीय प्रशासन के आशय सरकार की उस शासन व्यवस्था और संगठन से है, जिसके द्वारा सरकार अपनी वित्तीय क्रियाओं का प्रबन्ध करती है। इस भाग के अन्तर्गत अध्ययन के मुख्य विषय निम्न प्रकार हैं—(1) बजट का निर्माण, पारित और क्रियान्वित होना, (2) कर एकत्रण के लिए व्यवस्था, (3) व्यय व्यवस्था का संचालन, (4) लोक वित्त का अंकेक्षण एवं उस पर नियन्त्रण इत्यादि।
5. **आर्थिक स्थायित्व या राजकोषीय नीति** (Economic Stabilisation or Fiscal Policy)—सन् 1929 की विश्वव्यापी मन्दी की समस्या के उपरान्त से राजस्व में एक नया भाग 'राजकोषीय नीति' जुड़ गया। यद्यपि राजकोषीय नीति की धारणा का प्रयोग राजस्व, मुद्रा, बैंकिंग एवं व्यापार चक्र के क्षेत्रों में संयुक्त रूप से होता रहा है, लेकिन इसका महत्त्वपूर्ण सम्बन्ध राजस्व से ही है। इस भाग को राजस्व की 'स्थिरीकरण शाखा' (Stabilisation Branch) अथवा 'क्षतिपूरक वित्त' (Compensatory Finance) का कार्यात्मक वित्त (Functional Finance) के नाम से भी

TOUCH 'n PASS

सम्बोधित किया जाता है। राजस्व के सन्दर्भ में राजकोषीय नीति को परिभाषित करते हुए यह कहा जा सकता है कि यह वह नीति है, जिसमें सरकार अपने व्यय तथा आगम की नीतियों को राष्ट्रीय आय, उत्पादन तथा रोजगार पर इच्छित प्रभाव डालने और अवांछित प्रभावों को रोकने के लिए प्रयुक्त करती है।

6. **संघीय वित्त** (Federal Finance)—लोकतान्त्रिक शासन व्यवस्था में राजस्व की विषय-सामग्री का एक महत्त्वपूर्ण पहलू संघीय वित्त है। इसके अन्तर्गत केन्द्र और राज्य सरकारों के मध्य वित्तीय सम्बन्धों के सिद्धान्त, आय और व्यय के मदों के बंटवारे की व्यवस्था तथा ऋण व्यवस्थाओं के अध्ययन के साथ ही उनमें आपसी सहयोग और समन्वय की दृष्टि से आवश्यक पहलुओं पर भी विचार किया जाता है।

राजस्व की विषय-सामग्री को **शार्प** एवं **स्टिगलर** (Sharp and Stigler) ने बड़े ही स्पष्ट शब्दों में रखते हुए कहा है कि, "राजस्व सरकार के सीमित संसाधनों को स्वरूप तथा निर्देशन देने एवं प्रशासित करने वाले तथ्यों, तकनीकों, सिद्धान्तों, नियमों एवं नीतियों का परीक्षण है।"

प्र.2. विकासशील अर्थव्यवस्था में राजस्व का महत्त्व स्पष्ट कीजिए।

Clearify the importance of Public Finance in a developing economy.

उत्तर

विकासशील अर्थव्यवस्था में राजस्व का महत्त्व
(Importance of Public Finance in a Developing Economy)

वर्तमान समय में, प्रत्येक देश की अर्थव्यवस्था में राजस्व की भूमिका अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हो गयी है और इस महत्त्व में निरन्तर वृद्धि हो रही है। वास्तविकता यह है कि ज्यों-ज्यों सरकार का कार्य-क्षेत्र बढ़ रहा है, राजस्व का महत्त्व बढ़ता जा रहा है। आज यह कहा जाता है कि वित्त एक महान नीति है। सुदृढ़ लोक-वित्त के अभाव में सुदृढ़ सरकार सम्भव नहीं है और सुदृढ़ एवं कुशल सरकारी मशीन के अभाव में सुदृढ़ वित्त-व्यवस्था सम्भव नहीं है।"

वर्तमान समय में, भारत जैसी विकासशील देश की दृष्टि से राजस्व के महत्त्व का अध्ययन निम्नलिखित शीर्षकों के अन्तर्गत किया जा सकता है—

1. **सरकारों के बढ़ते हुए कार्यों की पूर्ति में सहायक**—यह सर्वविदित है कि सरकार के कार्य-क्षेत्रों में निरन्तर वृद्धि हो रही है और बढ़ते हुए कार्यों को पूरा करने के लिए पर्याप्त वित्त और उस वित्त के उचित वितरण की आवश्यकता पड़ती है। इसके लिए निश्चित रूप से राजस्व की महत्त्वपूर्ण भूमिका है। **फिण्डले शिराज** ने लिखा है, "राज्य की बढ़ती हुई क्रियाओं के लिए अधिक वित्त की आवश्यकता पड़ती है और इस वित्त को सभी विभिन्न कल्याणकारी योजनाओं पर सतर्कता से व्यय करना पड़ता है। यह सब लोक-वित्त के सिद्धान्तों की सहायता से ही किया जा सकता है।"
2. **आर्थिक नियोजन में महत्त्व**—आज का युग आर्थिक नियोजन का युग है। प्रत्येक देश अपने सन्तुलित एवं तीव्र आर्थिक विकास के लिए नियोजन को अपना रहा है। आर्थिक नियोजन की सफलता बहुत कुछ राजस्व की उचित व्यवस्था पर निर्भर है। करारोपण या लोक व्यय की छोटी-सी त्रुटि भी आर्थिक नियोजन के उद्देश्यों की प्राप्ति में एक महत्त्वपूर्ण बाधा बन सकती है।
3. **आय एवं सम्पत्ति के वितरण में विषमताओं को कम करने में सहायक**—वर्तमान समय में सामाजिक और आर्थिक समस्याओं में एक महत्त्वपूर्ण समस्या आय और सम्पत्ति के वितरण में विषमताएँ हैं। इस समस्या के समाधान में राजस्व की विशिष्ट भूमिका है। राजस्व के माध्यम से धनी व्यक्तियों से अधिक कर और निर्धनों से कम कर लेकर तथा धनी व्यक्तियों पर कम व्यय और निर्धनों पर अधिक व्यय करके इस उद्देश्य की पूर्ति की जा सकती है।
4. **पूँजी-निर्माण में सहायक**—विकासशील देशों में आर्थिक विकास के क्षेत्र में एक महत्त्वपूर्ण समस्या पूँजी-निर्माण की धीमी गति की रहती है। इन देशों में आय के फलस्वरूप बचत का स्तर नीचा रहने के कारण पूँजी-निर्माण धीमी गति से हो पाता है। इस समस्या के समाधान के विभिन्न उपायों में राजस्व उपायों का महत्त्वपूर्ण स्थान है। **प्रो० नर्क्से** के अनुसार, "अर्द्ध-विकसित देशों में पूँजी-निर्माण की समस्या के सन्दर्भ में राजस्व का एक नया महत्त्व बढ़ गया है।"
5. **राष्ट्रीय आय में वृद्धि**—विकासशील देशों में राष्ट्रीय आय बढ़ाने की आवश्यकता पर जोर दिया जाता है। इस दृष्टि से भी राजस्व का विशिष्ट महत्त्व है। राजस्व नीति के द्वारा राष्ट्रीय आय में वृद्धि के लिए निम्न कदम उठाए जा सकते हैं—
(i) कर प्रणाली इस प्रकार की हो कि उसके द्वारा उपलब्ध साधनों में से अधिकतम बचत करके विनियोग किया जाए।

TOUCH 'n' PASS

(ii) सार्वजनिक व्यय और सार्वजनिक ऋण के उपयोग का अधिकांश भाग उत्पादक कार्यों में लगाया जाए। (iii) सरकार स्वयं विनियोक्ता और उत्पादक की भूमिका निर्वाह करे। (iv) व्यक्तिगत विनियोगों को विभिन्न तरीकों से प्रोत्साहित किया जाए।

6. **मूल्य-स्तर में स्थिरता या आर्थिक स्थिरता**—सन् 1929-30 की विश्वव्यापी मन्दी के अनुभव के पश्चात् इस तथ्य को व्यापक रूप से स्वीकार किया जाता है कि अर्थव्यवस्था में स्थायित्व के लिए राजकीय हस्तक्षेप अर्थात् राजस्व नीति की विशिष्ट भूमिका होती है। करारोपण, लोक व्यय और लोक ऋण की नीतियों के मध्य उचित समायोजन करके मूल्य स्तर में स्थिरता या आर्थिक स्थायित्व के उद्देश्य की प्राप्ति की जा सकती है।
7. **सरकारी उद्योगों के संचालन में सुविधा**—आज प्रत्येक देश में किसी-न-किसी मात्रा में लोक उद्योगों का संचालन किया जा रहा है। इन उद्योगों में विशाल मात्रा में पूँजी का विनियोजन करना पड़ता है। इस पूँजी की व्यवस्था करने तथा सामाजिक हित में हानि पर चलने वाले सरकारी उद्योगों की वित्तीय आवश्यकताओं की पूर्ति की दृष्टि से राजस्व की महत्त्वपूर्ण भूमिका रहती है।
8. **देश के संसाधनों का अनुकूलतम प्रयोग**—वर्तमान समय में यह स्वीकार किया जाता है कि आर्थिक संसाधनों का विभिन्न क्षेत्रों में उपयोग और उनका सर्वोत्तम प्रयोग सरकार की उचित और प्रभावशाली मौद्रिक एवं राजस्व नीतियों से ही सम्भव है। सरकार अपनी बजट नीति के द्वारा उपभोग, उत्पादन तथा वितरण को वांछित दिशा में प्रवाहित कर सकती है।
9. **रोजगार में वृद्धि**—प्रत्येक देश में अधिकतम रोजगार उपलब्ध कराने के उद्देश्य पर जोर दिया जाता है। इस उद्देश्य की पूर्ति में भी राजस्व क्रियाएँ सहायक होती हैं। जहाँ एक ओर सरकारी करारोपण की उचित नीति द्वारा रोजगार प्रदान योजनाओं और उद्योगों को प्रोत्साहित कर सकती है, वहाँ दूसरी ओर सार्वजनिक व्ययों के माध्यम से ऐसी योजनाएँ चला सकती है, जिसमें अधिकांश व्यक्तियों को रोजगार मिल सके।
10. **राजनैतिक क्षेत्र में महत्त्व**—राजनैतिक क्षेत्र में भी राजस्व का महत्त्वपूर्ण योगदान रहता है। सरकार अपनी राजनैतिक नीतियों को उचित प्रकार से क्रियान्वित तभी कर सकती है, जबकि उसके पास पर्याप्त वित्तीय साधन हों और उन साधनों का प्रयोग करने के लिए उसके पास उचित राजस्व नीति हो। इसके अतिरिक्त देश में आन्तरिक शान्ति बनाए रखने, विदेशी आक्रमण से रक्षा करने तथा विदेशी एवं अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाओं में अपना महत्त्व जमाने के लिए भी पर्याप्त वित्तीय साधनों की आवश्यकता पड़ती है।
11. **सामाजिक क्षेत्र में महत्त्व**—सामाजिक क्षेत्र में सामाजिक कल्याण के कार्यक्रमों को संचालित करने, पिछड़े वर्गों तथा जातियों की उन्नति कराने, हानिकारक वस्तुओं के उपभोग पर नियन्त्रण करने और सामाजिक विषमताओं को कम करने इत्यादि में भी राजस्व नीति की भूमिका रहती है।

उपर्युक्त विश्लेषण से स्पष्ट है कि वर्तमान समय में राजस्व विज्ञान ने एक महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त कर लिया है। **प्रो० कोलिन क्लार्क** ने ठीक ही लिखा है, "जो राजस्व के क्षेत्र में कार्य कर रहे हैं वे केवल तकनीशियन और प्रशासक ही नहीं है, (वरन्) वे अपने देश के भविष्य के निर्माण में एक महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा रहे हैं।"

प्र.3. लोक एवं निजी वित्त व्यवस्था की तुलना में समानताओं एवं असमानताओं का वर्णन कीजिए।
Describe the similarities and differences in comparison of public and private finance.

उत्तर

लोक एवं निजी वित्त व्यवस्था की तुलना
(Comparison of Public and Private Finance)

लोक वित्त के अध्ययन के सन्दर्भ में इसकी विशेषताओं को गहनता से समझने की दृष्टि से निजी वित्त के साथ इसकी तुलना महत्त्वपूर्ण मानी जाती है। निजी वित्त से आशय ऐसी व्यक्तिगत इकाइयों की वित्तीय नीतियों और समस्याओं से होता हे, जो सरकार के अंग नहीं हैं। लोक एवं निजी वित्त के तुलनात्मक अध्ययन को दो भागों में विभक्त किया जा सकता है—(i) समानताएँ तथा (ii) असमानताएँ।

TOUCH 'n PASS

(I) लोक एवं निजी वित्त में समानताएँ
(Similarities Between Public and Private Finance)

लोक-वित्त एवं निजी वित्त-व्यवस्था में निम्न आधारों पर समानताएँ स्थापित की जाती हैं—

1. **मानवीय आवश्यकताओं की सन्तुष्टि** (Satisfaction of Human Wants)—लोक एवं निजी, दोनों वित्त-व्यवस्थाओं का सामान्य उद्देश्य मानवीय आवश्यकताओं की सन्तुष्टि करना होता है। हाँ, इतना अन्तर अवश्य है कि निजी वित्त का सम्बन्ध व्यक्तिगत आवश्यकताओं की सन्तुष्टि से होता है, जबकि लोक-वित्त का सम्बन्ध सामाजिक अथवा समूह की आवश्यकताओं की सन्तुष्टि से होता है।
2. **अधिकतम सन्तुष्टि का प्रयास** (Efforts of Maximum Satisfaction)—दोनों वित्त-व्यवस्थाओं में अधिकतम सन्तुष्टि के उद्देश्य की प्राप्ति पर जोर दिया जाता है। जहाँ एक और व्यक्ति सम-सीमान्त उपयोगिता नियम के आधार पर अथवा निजी आर्थिक इकाई सम-सीमान्त उत्पत्ति नियम के आधार पर अधिकतम सन्तुष्टि या अधिकतम उत्पादन करने का प्रयास करती है, वहाँ दूसरी सरकार अधिकतम सामाजिक कल्याण के सिद्धान्त के आधार पर अपनी वित्त-व्यवस्था का संचालन करती है।
3. **वित्त-व्यवस्था के भागों की समानता** (Similarities in the parts of Financing)—वित्त-व्यवस्था के भागों की दृष्टि से भी निजी और लोक-वित्त में काफी समानता पायी जाती है। दोनों वित्त-व्यवस्था में आय, व्यय, ऋण, बचत और वित्तीय प्रशासन जैसे भाग होते हैं। सरकार जहाँ देश में आर्थिक स्थायित्व की समस्या पर ध्यान देती है, निजी आर्थिक इकाई अपने स्थायित्व की समस्या पर ध्यान देती है।
4. **राष्ट्रीय उत्पादन या राष्ट्रीय आय में योगदान** (Contribution to national Product)—सरकार और निजी क्षेत्र दोनों की वित्तीय क्रियाओं से बचत, पूँजी संचय, विनियोग इत्यादि क्रियाओं को जन्म मिलता है, जिनसे देश में उत्पादन, विनियोग और उपभोग की क्रियाएँ प्रोत्साहित होती हैं तथा राष्ट्रीय उत्पादन में योगदान मिलता है।

(II) लोक एवं निजी वित्त में असमानताएँ
(Differences between Public and Private Finance)

लोक-वित्त और निजी-वित्त में असमानताओं को निम्न आधार पर स्पष्ट किया जा सकता है—

1. **आय एवं व्यय में समायोजन** (Adjustment of Income and Expenditure)—यद्यपि निजी आर्थिक इकाई और सरकार दोनों को अपनी आयों और व्ययों के मध्य समायोजन करना पड़ता है, लेकिन समायोजन के आधार में अन्तर रहता है। एक व्यक्ति या निजी आर्थिक इकाई अपनी आय के अनुसार व्यय करती है, जबकि सरकार अपने व्ययों को देखकर आय की व्यवस्था करती है।

   इस अन्तर का आधार यह है कि निजी वित्त व्यवस्था का संचालन 'उतने पाँव पसारिये जितनी चादर होय' (Cut your coat according to the cloth) के सिद्धान्त के आधार पर होता है। इसके विपरीत राजस्व में सरकार पहले व्ययों का अनुमान करती है और फिर उनके अनुसार आय की योजना तैयार करती है।
2. **वित्त व्यवस्था के सिद्धान्त या उद्देश्य** (Principles or Motives of Finance)—लोक-वित्त और निजी वित्त में एक महत्त्वपूर्ण अन्तर यह है कि निजी वित्त में 'विपणन के सिद्धान्त' (Market Principle) अथवा 'आर्थिक विवेक का सिद्धान्त' (Principle of Economic Rationality) अपनाया जाता है, जबकि लोक-वित्त में 'बजट सिद्धान्त' (Budget Principle) को अपनाया जाता है। विपणन सिद्धान्त का अर्थ है लाभ का उद्देश्य और आर्थिक विवेक के सिद्धान्त का अर्थ है ऐसे कार्यों पर व्यय करना जो आर्थिक रूप से लाभदायक हो। इसके विपरीत बजट सिद्धान्त का अर्थ है सामान्य सामाजिक उद्देश्यों क लिए कार्य करना।
3. **आय-व्यय में असन्तुलन की अवधि और व्यावहारिकता** (Duration and Practicability of the Practice of Over-spending)—सामान्यत: निजी आर्थिक इकाई अपने साधनों के अन्तर्गत अपना कार्य करती है। यद्यपि आवश्यकता पड़ने पर इसके द्वारा कमी के बजट अर्थात् व्यय का आय से आधिक्य होने की व्यवस्था को अपनाया जाता है, लेकिन यह व्यवस्था एक सीमा तक और कुछ समय तक के लिए ही अपनायी जा सकती है। इसके विपरीत सरकार एक लम्बे समय तक घाटे के बजट की व्यवस्था अपना सकती है।

TOUCH 'n PASS

4. **मुद्रा या क्रयशक्ति सृजन की शक्ति** (Power of Creation of Money or Purchasing Power)—लोक एवं निजी वित्त में एक उल्लेखनीय अन्तर यह है कि निजी आर्थिक इकाई को मुद्रा के सृजन का अधिकार नहीं होता, जबकि सरकारी वित्त व्यवस्था में मुद्रा-सृजन एक महत्त्वपूर्ण साधन होता है। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि स्वर्ण या रजतमान के समय में सरकार के हाथ में मुद्रा सृजन से आय का कोई वास्तविक साधन नहीं था, लेकिन पत्र-मुद्रा के अन्तर्गत सरकार के हाथ में उसकी वित्त व्यवस्था की दृष्टि से मुद्रा-सृजन की महत्त्वपूर्ण शक्ति रहती है।
5. **बजट की प्रकृति एवं अवधि** (Nature and Period of Budget)—प्रकृति की दृष्टि से निजी वित्त व्यवस्था में बचत का बजट अच्छा माना जाता है, लेकिन सरकारी वित्त व्यवस्था में इस बजट को (मुद्रा-प्रसार जैसी परिस्थितियों को छोड़कर) अच्छा नहीं माना जाता है। सरकारी बजट में बचत के दो अर्थ निकलते हैं—या तो सरकार ने कर अधिक लगा रखे हैं या जनता पर व्यय कम किया जाता है।
   इस अन्तर के सम्बन्ध में यह टिप्पणी की जा सकती है कि व्यवहार में निजी वित्त और लोक वित्त दोनों में परिस्थितियों या आवश्यकताओं के अनुसार बचत के बजट, घाटे के बजट और सन्तुलित बजट बनाए जा सकते हैं।
6. **वित्त व्यवस्था के दृष्टिकोण में अवधि** (Term in Approach)—सामान्यत: निजी वित्त व्यवस्था में अल्पकालिक और लोक-वित्त व्यवस्था में दीर्घकालिक दृष्टिकोण अपनाया जाता है। निजी आर्थिक इकाई अपने धन का व्यय या विनियोजन ऐसे कार्यों में करती है, जिनके परिणाम तुरन्त या शीघ्रता से प्राप्त हो सकें। इसके विपरीत सरकारी वित्त व्यवस्था में दीर्घकालिक दृष्टिकोण को भी ध्यान में रखा जाता है।
7. **वित्त व्यवस्था की गोपनीयता** (Secrecy)—वित्त व्यवस्था की गोपनीयता के सन्दर्भ में यह कहा जाता है कि निजी वित्त में गोपनीयता रहती है, जबकि इसके विपरीत लोक-वित्त में व्ययों के बारे में व्यापक प्रचार किया जाता है, ऋण प्राप्त करने के लिए विज्ञापन दिए जाते हैं और आय के बारे में बजट के माध्यम से विस्तृत जानकारी दी जाती है।
8. **अनिवार्यता का तत्त्व** (Element of Compulsion)—लोक और निजी वित्त में एक महत्त्वपूर्ण अन्तर अनिवार्यता के तत्त्व का है। "राज्य आय प्राप्त करने के लिए बल का प्रयोग कर सकता है, पर निजी इकाई नहीं।" इसका अर्थ यह है सरकार द्वारा लगाए करों में अनिवार्यता की प्रवृत्ति होती है और इसके अतिरिक्त ऋणों को भी सरकार अनिवार्य रूप से प्राप्त कर सकती है। यदि आवश्यकता हो, तो सरकार सम्पत्तियों को जब्त भी कर सकती है, लेकिन निजी वित्त व्यवस्था में इस प्रकार की अनिवार्यता का तत्त्व नहीं होता।
9. **ऋण की प्रकृति** (Nature of Debts)—निजी एवं लोक दोनों प्रकार की वित्त व्यवस्थाओं में आवश्यकतानुसार ऋण लिए जाते हैं, लेकिन इनमें कुछ अन्तर रहते हैं—(अ) एक निजी आर्थिक इकाई न 'भुगतान किए जाने वाले ऋणों' (Non-repayable Loans) को प्राप्त नहीं कर सकती, जबकि सरकार कुछ परिस्थितियों में ऐसा कर सकती है। (ब) सरकार आन्तरिक एवं बाहरी दोनों प्रकार के ऋण प्राप्त कर सकती है, जबकि व्यक्ति के ऋण बाहरी (external) ही होते हैं। यहाँ पर उल्लेखनीय है कि निजी वित्त में भी फर्म होने पर अपने साझेदारों से और कम्पनी होने पर अपने अंशधारियों से ऋण लिए जा सकते हैं। (स) सामान्यत: निजी वित्त की तुलना में सरकारी वित्त व्यवस्था में कम ब्याज पर और अधिक मात्रा में ऋण प्राप्त किए जा सकते हैं। (द) सरकारी वित्त में अनिवार्य ऋण भी प्राप्त किए जा सकते हैं, जबकि निजी वित्त में ऐसा नहीं होता। अनिवार्य जमा योजना अनिवार्य ऋण का एक महत्त्वपूर्ण उदाहरण है।
10. **लाभ-हानि की क्रियाओं के विस्तार एवं संकुचन पर प्रभाव** (Effect on Expansion and Contraction of Profit-Loss Activities)—लोक-वित्त एवं निजी वित्त में एक महत्त्वपूर्ण अन्तर यह है कि निजी आर्थिक इकाई को लाभ होने पर उसकी क्रियाओं का विस्तार होता है और हानि होने पर उसकी क्रियाओं का संकुचन होने लगता है। हानि अधिक होने पर उसकी क्रियाएँ बन्द हो सकती हैं। इसके विपरीत लोक-वित्त में लाभ-हानि का सरकार के कार्यों पर बहुत सीमित प्रभाव पड़ता है।
    उपर्युक्त के अतिरिक्त आय-व्यय की लोच, आय के साधनों की प्रचुरता, राजकीय व्ययों में सुरक्षा मद पर अधिक व्यय इत्यादि आधारें पर भी लोक-वित्त और निजी वित्त में अन्तर किया जाता रहा है, लेकिन यह अन्तर लोक तथा निजी वित्त का नहीं, वरन् इन दोनों के क्षेत्रों में अन्तर होने के कारण हैं।

TOUCH 'n PASS

निष्कर्ष (Conclusion)

लोक वित्त और निजी वित्त का तुलनात्मक अध्ययन करने से स्पष्ट है कि इनके मध्य कुछ समानताएँ और कुछ असमानताएँ दोनों ही हैं। असमानताओं में कुछ केवल मात्रा (Degree) की हैं और कुछ आधारभूत (Fundamental) हैं। विशेष रूप से दोनों वित्त व्यवस्थाओं का उद्देश्य, सरकार की मुद्रा-सृजन शक्ति, कर लगाने का अधिकार इत्यादि के आधार पर अन्तर ध्यान में रखने योग्य है। यह अन्तर स्पष्ट करते हैं कि निजी वित्त व्यवस्था के सिद्धान्तों को पूर्ण रूप से लोक-वित्त व्यवस्था में नहीं अपनाया जा सकता है।

प्र.4. अधिकतम सामाजिक लाभ के सिद्धान्त की विस्तारपूर्वक व्याख्या कीजिए।

Describe the principle of Maximum Social Advantage in detail.

उत्तर "राजस्व का सर्वोत्तम व्यवस्था वह है जिसकी क्रियाओं से अधिकतम सामाजिक लाभ की प्राप्ति होती है।" —**डाल्टन**

अधिकतम सामाजिक कल्याण का सिद्धान्त राजस्व का एक मूल सिद्धान्त रहा है। यह सिद्धान्त राजस्व में कल्याण दृष्टिकोण की ओर संकेत करता है। इस सिद्धान्त के प्रमुख प्रतिपादक **प्रो० डाल्टन** तथा **पीगू** रहे हैं। पीगू ने इस सिद्धान्त को अधिकतम सामूहिक कल्याण का सिद्धान्त कहा जबकि डाल्टन ने इस सिद्धान्त को 'अधिकतम सामाजिक कल्याण का सिद्धान्त' के नाम से सम्बोधित किया। **प्रो० मसग्रेव** ने इसे 'बजट निर्धारण का अधिकतम कल्याण का सिद्धान्त' के नाम से पुकारा है। इस सिद्धान्त के अनुसार, "सरकार की वित्तीय क्रियाओं का उद्देश्य सामाजिक लाभ को अधिकतम करना होना चाहिए।"

सिद्धान्त की व्याख्या (Description of the Principle)

वर्तमान समय में आय और व्यय की सीमा, आय प्राप्त करना और व्यय करना ये दो ऐसे वित्तीय कार्य हैं जिनके माध्यम से किसी देश की सरकार जनता को प्रभावित करती है। सरकार जनता से करों के रूप में, ऋणों के रूप में तथा अर्थदण्ड के माध्यम से आय प्राप्त करती है तथा इस प्राप्त आय को सरकार सेवाओं के बदले वेतन देकर तथा शिक्षा एवं स्वास्थ्य सुविधाओं आदि के रूप में पुनः जनता को सार्वजनिक व्ययों के माध्यम से हस्तान्तरित कर देती है। सरकार जनता पर कर लगाती है या अन्य किसी रूप में क्रयशक्ति लेती है तो इससे जनता को त्याग करना पड़ता है और जब आय सार्वजनिक कार्यों पर खर्च की जाती है तो जनता को इससे सन्तुष्टि प्राप्त होती है। **प्रो० डाल्टन** ने इस सिद्धान्त की व्याख्या निम्न शब्दों में की है, "राजकीय व्यय प्रत्येक दिशा में उस सीमा तक बढ़ाते रहना चाहिए जब तक कि इस व्यय से उत्पन्न होने वाला सन्तोष राज्य द्वारा लगाए गए करों से उत्पन्न होने वाले असन्तोष के बराबर न हो जाए। यह सीमा ही राजकीय व्यय और आय में वृद्धि करने की आदर्श सीमा हो सकती है। **प्रो० पीगू** ने इसी विचार का स्पष्टीकरण निम्न शब्दों में प्रकट किया, "प्रत्येक दिशा में व्यय उस सीमा तक करना चाहिए जहाँ अन्तिम शिलिंग के व्यय से प्राप्त सन्तोष सरकारी सेवाओं के द्वारा प्राप्त किए अन्तिम शिलिंग से हुई असन्तुष्टि के बराबर न हो जाए। दूसरे शब्दों में जब तक सीमान्त त्याग सीमान्त सन्तोष के बराबर न हो जाए।

अतः कहा जा सकता है कि अधिकतम सामाजिक कल्याण उसी समय सम्भव हो सकेगा जबकि सार्वजनिक आय से होने वाली सीमान्त अनुपयोगिता सरकारी व्यय से होने वाली सीमान्त उपयोगिता के बराबर हो जाए।

सिद्धान्त का तालिका द्वारा निरूपण

कर की इकाई	कर की प्रत्येक इकाई से होने वाला त्याग या सीमान्त अनुपयोगिता	व्यय की प्रत्येक इकाई से होने वाली सामाजिक उपयोगिता या सीमान्त उपयोगिता
1	45	110
2	50	90
3	60	85
4	75	75
5	90	65
6	120	50
7	160	35

उपर्युक्त तालिका के द्वारा यह स्पष्ट किया जा सकता है अधिकतम सामाजिक कल्याण उस बिन्दु पर होगा जहाँ पर कर की एक इकाई लगाने से उत्पन्न होने वाला त्याग, व्यय की जाने वाली एक इकाई से उत्पन्न होने वाली उपयोगिता के बराबर न हो जाए।

TOUCH 'n' PASS

तालिका से स्पष्ट है कि आय एवं व्यय से सम्बन्धित चौथी इकाई ऐसी इकाई होती है जिस पर सीमान्त अनुपयोगिता अथवा त्याग सीमान्त उपयोगिता अथवा सन्तुष्टि के बराबर है। इससे पूर्व या पश्चात् की इकाइयों अर्थात् तीसरी और पाँचवीं इकाई पर कल्याण अधिकतम नहीं होगा, क्योंकि तीसरी इकाई पर सन्तुष्टि या उपयोगिता अधिक है त्याग या अनुपयोगिता से। इसी प्रकार पाँचवीं इकाई पर त्याग या अनुपयोगिता अधिक है सन्तुष्टि या उपयोगिता से।

अत: कर की चौथी इकाई पर ही अधिकतम कल्याण होगा।

अधिकतम सामाजिक लाभ के सिद्धान्त का रेखाचित्र द्वारा स्पष्टीकरण
(Clarification of the Principle of Maximum Social Advantage by a Diagram)

यह स्पष्ट किया जा चुका है कि अधिकतम सामाजिक लाभ उसी समय सम्भव है जब सार्वजनिक व्यय से प्राप्त होने वाली सीमान्त उपयोगिता, करों (Taxes) से होने वाली सीमान्त अनुपयोगिता के ठीक बराबर हो। इसे रेखाचित्र 1 द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है।

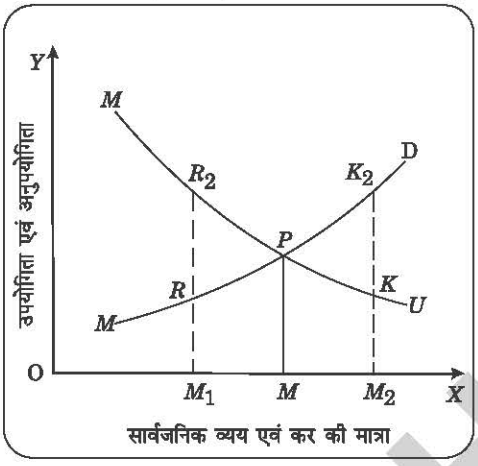

चित्र–1

प्रस्तुत रेखचित्र में OX अक्ष पर सार्वजनिक व्यय एवं कर की मात्रा को दिखाया गया है तथा OY अक्ष पर सार्वजनिक व्यय से होने वाली उपयोगिता तथा करों से होने वाली अनुपयोगिता को स्पष्ट किया गया है। संलग्न रेखाचित्र में MU वक्र सीमान्त उपयोगिता को दर्शाता है तथा MD वक्र सीमान्त अनुपयोगिता को चित्रित करता है। MU वक्र का ढाल बाएँ से दाएँ नीचे की ओर है जिसका अर्थ यह है कि जैसे-जैसे सार्वजनिक व्यय में वृद्धि होती है, उससे प्राप्त होने वाली उपयोगिता घटती जाती है क्योंकि लोगों की आवश्यकताएँ सन्तुष्ट होती जाती हैं। MD वक्र नीचे से ऊपर की ओर उठता है जो बढ़ती हुई सीमान्त अनुपयोगिता को स्पष्ट करता है अर्थात् जैसे-जैसे सरकार करों की मात्रा में वृद्धि करती है, करदाता को कर देने में अधिक कष्ट सहन करना पड़ता है।

MU तथा MD वक्र एक-दूसरे को P बिन्दु पर काटते हैं जिस पर सीमान्त उपयोगिता तथा सीमान्त अनुपयोगिता, दोनों एक-दूसरे के बराबर हैं। इस बिन्दु पर ही सामाजिक लाभ अधिकतम होता है जो PM के द्वारा स्पष्ट है। यदि P बिन्दु से विचलन होता है तो सामाजिक लाभ अधिकतम नहीं हो सकता। उदाहरण के लिए, यदि सरकार OM की तुलना में OM_1 कर की मात्रा वसूल करती है तो इस बिन्दु पर सीमान्त उपयोगिता M_1R_2 है, जबकि सीमान्त त्याग या अनुपयोगिता M_1R है, अर्थात् RR_2 सीमान्त उपयोगिता अधिक है, अर्थात् करों की मात्रा बढ़ाई जा सकती है, जिसे बढ़ाकर OM कर दिया जाता है और हम सन्तुलन बिन्दु पर पहुँच जाते हैं। इसके विपरीत यदि सरकार अपने व्यय की मात्रा में वृद्धि करती है और करों की मात्रा OM से बढ़ाकर OM_2 कर देती है तो इस बिन्दु पर सीमान्त उपयोगिता M_2K_2 है अर्थात् सीमान्त उपयोगिता की तुलना में, सीमान्त त्याग अधिक है। रेखाचित्र में सीमान्त अनुपयोगिता को KK_2 द्वारा दिखाया गया है। इससे स्पष्ट है कि करों की मात्रा घटाई जानी चाहिए अर्थात् इसे घटाकर पुन: OM कर दिया जाता है जहाँ हम सन्तुलन बिन्दु पर पहुँच जाते हैं इस बिन्दु पर ही सामाजिक लाभ अधिकतम होता है जिसे MP द्वारा स्पष्ट किया गया है।

अधिकतम सामाजिक कल्याण सिद्धान्त : मसग्रेव द्वारा व्याख्या
(Principle of Maximum Social Advantage : Description By Musgrave)

प्रो० मसग्रेव ने अधिकतम सामाजिक कल्याण सिद्धान्त की व्याया को वार्षिक बजट द्वारा निरूपित किया है। उनका यह मानना है कि राजस्व से सम्बन्धित एक केन्द्रीकृत सत्ता अपने बजट के माध्यम से ही आय एवं व्यय का प्रारूप तैयार करती है और यह बजट ही होता है जिसके माध्यम से समाज के कल्याणकारी कार्यों को प्रोत्साहन एवं हतोत्साहन मिलता है।

मसग्रेव का यह मानना है कि एक केन्द्रीकृत सत्ता को अपना बजट बनाते समय इससे सम्बन्धित आकार अर्थात् आय एवं व्यय की सीमा इस प्रकार निर्धारित करनी चाहिए कि सन्तुष्टि का बिन्दु अधिकतम सामाजिक कल्याण की स्थिति को प्रदर्शित करे।

TOUCH 'n' PASS

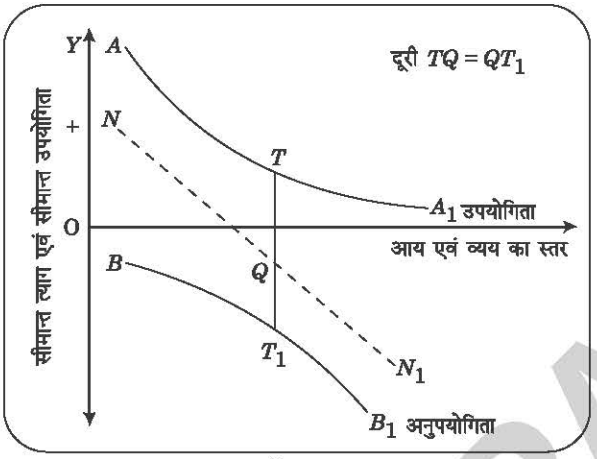

चित्र-2

चित्र 2 में OQ अच्छे बजट को प्रस्तुत करता है क्योंकि Q बिन्दु पर आय एवं व्यय आपस में बराबर है। बिन्दु Q के बायीं ओर आने पर उपयोगिता अनुपयोगिता से अधिक हो जाएगी और दायीं ओर जाने पर उपयोगिता से अनुपयोगिता अधिक हो जाएगी। चूँकि ये दोनों ही स्थितियाँ अधिकतम सामाजिक कल्याण को प्रकट नहीं करती है अत: Q बिन्दु ही बजट का श्रेष्ठ बिन्दु होगा।

बहुविकल्पीय प्रश्न

प्र.1. प्रो० डाल्टन के अधिकतम लाभ के संदर्भ में कौन-सा कथन सत्य है?

(a) उत्पादन में वृद्धि होनी चाहिए
(b) आय और सम्पत्ति के वितरण में सुधार करके सामाजिक न्याय सुनिश्चित किया जाना चाहिए
(c) आर्थिक क्रियाओं एवं रोजगार के स्तर में स्थिरता
(d) उपरोक्त सभी

उत्तर (d) उपरोक्त सभी

प्र.2. निम्न कथन किसका है "राजस्व लोक-सत्ताओं (सरकारों) द्वारा कोषों के व्यय करने एवं प्राप्त करने में निहित सिद्धान्त का अध्ययन है।"

(a) प्लेहन (b) डाल्टन (c) फिलिप ई० टेलर (d) फिण्डले शिरस

उत्तर (d) फिण्डले शिरस

प्र.3. यह कथन किसका है "राजस्व एक कला है (क्योंकि) इसका सम्बन्ध वास्तविक समस्याओं से है।"

(a) डाल्टन (b) उर्सला हिक्स (c) बेस्टेबिल (d) रिचार्ड मसग्रेव

उत्तर (b) उर्सला हिक्स

प्र.4. विज्ञान के कितने पहलू होते हैं?

(a) 2 (b) 3 (c) 4 (d) 5

उत्तर (a) 2

प्र.5. अधिकतम लाभ के सिद्धान्त का कौन-सा महत्त्व है?

(a) सरकार को निश्चित सीमा के भीतर कर लगाने चाहिए
(b) बाढ़ नियन्त्रण पर किये जाने वाले व्यय से होने वाले लाभ का अनुमान लगाना सम्भव
(c) राजस्व क्रियाओं का उद्देश्य अधिकतम सामाजिक कल्याण
(d) उपरोक्त सभी

उत्तर (d) उपरोक्त सभी

TOUCH 'n PASS

प्र.6. लोक आगम के अन्तर्गत कौन-सा शामिल है—
(a) करारोपण के सिद्धान्त (b) सार्वजनिक आय का वर्गीकरण
(c) कर का वर्गीकरण (d) ये सभी
उत्तर (d) ये सभी

प्र.7. यह कथन किसका है ''राजस्व सरकार के सीमित संसाधनों को स्वरूप तथा निर्देशन देने एवं प्रशासित करने वाले तथ्यों, तकनीकों, सिद्धान्तों, नियमों एवं नीतियों का परीक्षण है।''
(a) शार्प एवं स्टिगलर (b) पीगू (c) मार्शल (d) रिकार्डो
उत्तर (a) शार्प एवं स्टिगलर

प्र.8. विश्वव्यापी मंदी कब आयी?
(a) 1927 (b) 1928 (c) 1929 (d) 1930
उत्तर (c) 1929

प्र.9. विकासशील देशों में राजस्व का कौन-सा महत्त्व नहीं है?
(a) आर्थिक नियोजन में महत्त्व (b) सरकारों के बढ़ते हुए कार्यों की पूर्ति में सहायक
(c) राष्ट्रीय आय में वृद्धि (d) ये सभी
उत्तर (d) ये सभी

प्र.10. सरकार अपनी बजट नीति के द्वारा किसे वांछित दिशा में प्रवाहित कर सकती है—
(a) उपभोग (b) उत्पादन (c) वितरण (d) ये सभी
उत्तर (d) ये सभी

प्र.11. कौन-सी आर्थिक इकाई सम-सीमान्त उत्पत्ति नियम के आधार पर अधिक संतुष्टि या अधिकतम उत्पादन करने का प्रयास कर सकती है?
(a) लोक इकाई (b) निजी इकाई (c) (a) और (b) दोनों (d) इनमें से कोई नहीं
उत्तर (b) निजी इकाई

प्र.12. निम्न में कौन 'विपणन के सिद्धान्त' अथवा आर्थिक विवेक का सिद्धान्त अपनाता है—
(a) लोक वित्त (b) निजी वित्त (c) मिश्रित वित्त (d) इनमें से कोई नहीं
उत्तर (b) निजी वित्त

प्र.13. निजी वित्त और लोक वित्त में परिस्थितियों और आवश्यकताओं के अनुसार कौन-सा बजट बनाया जा सकता है?
(a) बचत का बजट (b) घाटे का बजट (c) सन्तुलित बजट (d) ये सभी
उत्तर (d) ये सभी

प्र.14. कौन-सा आय प्राप्त करने के लिए बल प्रयोग कर सकता है?
(a) निजी वित्त (b) लोक वित्त (c) (a) और (b) दोनों (d) इनमें से कोई नहीं
उत्तर (b) लोक वित्त

प्र.15. ''सरकार की वित्तीय क्रियाओं का उद्देश्य सामाजिक लाभ को अधिकतम करना होना चाहिए।'' यह कथन किसका है?
(a) प्रो० डाल्टन (b) प्रो० मसग्रेव (c) प्रो० नर्क्से (d) फिण्डले शिरस
उत्तर (b) प्रो० मसग्रेव

प्र.16. बाजार की असफलता का कारण है—
(a) उत्पादन की कमी (b) दोषपूर्ण वितरण (c) उत्पादन की अधिकता (d) दुकानदारों की कमी
उत्तर (b) दोषपूर्ण वितरण

TOUCH 'n' PASS

प्र.17. बाजार की असफलता के कारक हैं—
(a) सूचना की कमी (b) बाजार नियन्त्रण (c) सार्वजनिक सामान (d) ये सभी
उत्तर (d) ये सभी

प्र.18. सरकार की भूमिका वित्तीय क्षेत्र में है—
(a) आधारभूत ढाँचा उपलब्ध कराना (b) पारदर्शिता
(c) आय व व्यय का लेखा-जोखा (d) ये सभी
उत्तर (d) ये सभी

प्र.19. निम्न में से सार्वजनिक वित्त में सरकार की भूमिका से कौन-सा सम्बद्ध है?
(a) पूर्ति की स्थिरता (b) संसाधनों का आबंटन (c) वितरण (d) ये सभी
उत्तर (d) ये सभी

प्र.20. निम्न में से किस आधार पर लोकवित्त एवं निजी वित्त में अन्तर किया जाता है?
(a) आय-व्यय की लोच (b) आय के साधनों की प्रचुरता
(c) राजकीय व्ययों में (d) ये सभी
उत्तर (d) ये सभी

प्र.21. निम्न में से कौन-सा कथन सही नहीं है—
1. निजी वित्त में गोपनीयता होती है
2. सरकारी वित्त में अल्पकालीन दृष्टिकोण ध्यान में रखा जाता है
3. लोक-वित्त में व्ययों के बारे में व्यापक प्रचार किया जाता है
4. निजी वित्त व्यवस्था में अनिवार्यता का तत्त्व नहीं होता

(a) 1, 2, 4 (b) 1, 3, 4 (c) 1, 4 (d) 1, 2, 3, 4
उत्तर (b) 1, 3, 4

प्र.22. सरकार और निजी क्षेत्र दोनों की वित्तीय क्रियाओं से किसे जन्म नहीं मिलता?
(a) बचत (b) घाटा
(c) पूँजी संचय (d) विनियोग
उत्तर (b) घाटा

प्र.23. मुद्रा सृजन किसमें महत्त्वपूर्ण साधन होता है?
(a) लोक वित्त (b) निजी वित्त
(c) (a) और (b) दोनों (d) इनमें से कोई नहीं
उत्तर (b) लोक वित्त

❑

TOUCH 'n' PASS

UNIT-VI

सार्वजनिक व्यय
Public Expenditure

खण्ड-अ अतिलघु उत्तरीय प्रश्न

प्र.1. लोक व्यय का अर्थ बताइए।
Give the meaning of Public Expenditure.

उत्तर लोक व्यय राजस्व का एक महत्त्वपूर्ण एवं आधारभूत भाग है। लोक व्यय का आशय उन व्ययों से है, जो सरकार—केन्द्रीय, राज्य अथवा स्थानीय—द्वारा अपने संचालन, सामूहिक आवश्यकताओं की सन्तुष्टि, आर्थिक विकास और सामाजिक कल्याण कार्यों पर किये जाते हैं। वर्तमान अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग की व्याख्या में कुछ सरकारें दूसरे देशों की सहायता पर भी व्यय करती हैं। यह व्यय भी लोक व्यय में शामिल किया जाता है।

प्र.2. सार्वजनिक व्यय के आदर्श लिखिए।
Write the ideals of Public Expenditure.

उत्तर सार्वजनिक व्यय किस सीमा तक बढ़ाया जाना चाहिए। इस सम्बन्ध में **डाल्टन** का मत है कि, "सार्वजनिक व्यय इस ढंग से किया जाना चाहिए कि सीमान्त सामाजिक लाभ प्रत्येक दिशा में समान हो।" सार्वजनिक व्यय के प्रमुख आदर्श निम्नलिखित हैं—

1. सार्वजनिक व्यय को प्रत्येक दिशा में उस सीमा तक बढ़ाते रहना चाहिए, जब तक कि इस व्यय से उत्पन्न होने वाला सन्तोष, राज्य द्वारा लगाये गये करों से उत्पन्न होने वाले असन्तोष के बराबर न हो जाए।
2. सार्वजनिक व्यय को प्रत्येक क्षेत्र अथवा दिशा में इस प्रकार किया जाना चाहिए कि व्यय की प्रत्येक इकाई से प्राप्त होने वाला अतिरिक्त लाभ समान रहे।

परन्तु इस बात को स्वीकार करना पड़ेगा कि वह आदर्श केवल सैद्धान्तिक हैं, इनको व्यावहारिक रूप देना सहज नहीं है। सार्वजनिक व्यय से उत्पन्न होने वाला लाभ तथा करों से पड़ने वाले भार को भी मापना कठिन है।

खण्ड-ब लघु उत्तरीय प्रश्न

प्र.1. लोक व्यय का महत्त्व एवं उद्देश्यों का उल्लेख कीजिए।
Explain the importance and objectives of Public Expenditure.

उत्तर

लोक व्यय का महत्त्व एवं उद्देश्य
(Importance and Objectives of Public Expenditure)

प्राचीन समय में लोक व्यय का बहुत कम महत्त्व था। **जे० बी० से** का विचार था कि "वित्त की सभी योजनाओं में सर्वोत्तम वह है, जिसमें कम खर्च किया जाए।" दूसरे शब्दों में, सार्वजनिक व्यय को अनावश्यक, अनुत्पादक और अपव्यय समझा जाता था और इस आधार पर राज्य के केवल आधारभूत कार्यों के लिए और वह भी सीमित मात्रा में व्यय करने पर जोर दिया जाता था। धीरे-धीरे राज्य के उत्तरदायित्व बढ़ने लगे और इसके कार्यों में वृद्धि होने लगी, तो लोक व्यय का महत्त्व भी बढ़ने लगा। आज स्थिति यह हो गयी है कि सरकार अपने कार्यों को पूरा करने के लिए अपनी आयों से भी अधिक व्यय करती है।
लोक व्यय के महत्त्व का अध्ययन निम्न शीर्षकों के अन्तर्गत किया जा सकता है—

1. **आर्थिक विकास एवं नियोजन में सहायक** (Role in Economic Development & Planning)—वर्तमान समय में प्रत्येक देश ने अपने आर्थिक विकास के लिए आर्थिक नियोजन को अपना रखा है। आर्थिक नियोजन की सफलता में लोक व्यय का काफी महत्त्व है, क्योंकि—

TOUCH 'n PASS

(अ) आर्थिक नियोजन का संचालन करने के लिए लोक व्यय की राशि में वृद्धि करनी होती है।
(ब) आर्थिक नियोजन की सफलता के लिए विभिन्न मदों पर लोक व्ययों का उचित वितरण करना होता है।
(स) आर्थिक विकास की प्रक्रिया में सरकार को स्वयं अनेक आर्थिक एवं वाणिज्यिक उपक्रमों का संचालन करना पड़ता है, इसके लिए भी पर्याप्त मात्रा में लोक व्यय करना होता है।
(द) आर्थिक विकास के लिए पूँजी निर्माण की गति में वृद्धि करनी होती है, इसमें लोक व्यय की प्रभावशाली भूमिका रहती है।

2. **आय तथा सम्पत्ति के वितरण की असमानताओं में कमी** (Reduction in Disparities of Income & Wealth)—आज प्राय: प्रत्येक देश में आय तथा सम्पत्ति के वितरण की असमानताओं को कम करने पर जोर दिया जाता है। इस उद्देश्य की प्राप्ति में लोक व्यय की महत्त्वपूर्ण भूमिका रहती है। लोक व्यय की उचित नीति द्वारा निर्धन वर्गों पर अधिक व्यय करके उन्हें प्रगति की ओर प्रेरित किया जा सकता है।
3. **आर्थिक स्थायित्व** (Economic Stability)—आर्थिक स्थायित्व बनाये रखने में भी लोक व्यय का योगदान रहता है। मन्दी की स्थिति में लोक व्यय में इस प्रकार की वृद्धि की जाती है कि उससे विनियोग, पूँजी निर्माण और रोजगार में वृद्धि हो तथा अर्थव्यवस्था को मन्दी के प्रभावों से मुक्त किया जा सके। इसके विपरीत तेजी काल में लोक व्ययों को इस प्रकार समायोजित किया जाता है कि उत्पादक व्ययों को बढ़ाया जाए और शीघ्र फलदायक योजनाओं तथा उद्योगों में लोक व्यय किये जाएँ, जिससे देश में उत्पादन में वृद्धि हो और मूल्यों को नियन्त्रित किया जा सके।
4. **अविकसित एवं पिछड़े क्षेत्रों का विकास** (Development of Undeveloped and Backward Areas)—विकासशील देशों में अविकसित एवं पिछड़े क्षेत्रों के विकास की समस्या रहती है। लोक व्यय के माध्यम से इन क्षेत्रों में आधारभूत संरचना (Infrastructure) का निर्माण किया जा सकता है और विकास के लिए वित्तीय सहायता तथा उपादान (Assistance and Subsidy) प्रदान की जा सकती है, जिससे देश के सभी भागों के सन्तुलित विकास में सहायता मिलती है।
5. **सामाजिक सुधार** (Social Improvement)—सामाजिक स्तर के सुधार अर्थात् शिक्षा एवं स्वास्थ्य के स्तर में वृद्धि, सामाजिक कल्याण के कार्यक्रमों का संचालन, निर्धन तथा पिछड़े वर्गों का विकास इत्यादि में भी लोक व्यय की विशिष्ट भूमिका रहती है।

उपर्युक्त के अतिरिक्त देश में आन्तरिक शान्ति, न्याय, विदेशी आक्रमण से सुरक्षा तथा लोक उद्योगों के संचालन इत्यादि की दृष्टि से भी लोक व्ययों का महत्त्व रहता है।

प्र.2. सार्वजनिक व्यय में वृद्धि के विकासमूलक सिद्धान्त का उल्लेख कीजिए।
Explain in brief the Growth-oriented Theory of Public Expenditure.

उत्तर

सार्वजनिक व्यय में वृद्धि का विकासमूलक सिद्धान्त
(Growth-Oriented Theory of Public Expenditure)

प्रो० रोस्टोव एवं **प्रो० मसग्रेव** की धारणा थी कि सार्वजनिक व्यय में वृद्धि के कारणों की व्याख्या आर्थिक विकास के सन्दर्भ में की जानी चाहिए। यही कारण है कि इनकी व्याख्या को विकासमूलक सिद्धान्त कहा जाता है।

आर्थिक विकास की प्रारम्भिक अवस्थाओं में होने वाले कुल निवेश में सार्वजनिक क्षेत्र का अनुपात अधिक होता है। इसका कारण यह है कि आर्थिक विकास के लिए आवश्यक आधारभूत संरचना का विकास सार्वजनिक क्षेत्र के अन्तर्गत किया जाता है। उदाहरण के लिए—सड़क, रेल, यातायात, दूर-संचार, विद्युत-शक्ति, शिक्षा, सार्वजनिक स्वास्थ्य व सफाई आदि कार्यक्रमों पर व्यय सरकार द्वारा किया जाता है ताकि आर्थिक विकास एवं जनकल्याण कार्यक्रमों को गति प्रदान किया जा सके। आर्थिक विकास को गति प्रदान करने के लिए सरकार को हस्तक्षेप करना पड़ता है।

रोस्टोव के अनुसार, जब अर्थव्यवस्था परिपक्वता की अवस्था को प्राप्त कर लेती है, तब सार्वजनिक व्यय के स्वरूप में परिवर्तन आ जाता है। अब व्यय आधारभूत संरचनाओं के निर्माण पर नहीं किया जाता, बल्कि शिक्षा, स्वास्थ्य तथा अन्य कल्याणकारी कार्यक्रमों पर अधिकाधिक व्यय किया जाने लगता है। 'अधिकाधिक उपभोग' की अवस्था में आय अनुरक्षण कार्यक्रमों एवं कल्याण सम्बन्धी कार्यों के पुनर्वितरण से सम्बद्ध नीतियों का महत्त्व बढ़ जाता है। अब इन मदों पर राष्ट्रीय आय एवं सार्वजनिक व्यय का अधिकांश भाग व्यय किया जाने लगता है।

इसी तरह, मसग्रेव ने अपना मत व्यक्त किया कि आर्थिक विकास के प्रारम्भिक चरण में पूँजीगत वस्तुओं के निर्माण पर सार्वजनिक व्यय का अधिकांश भाग खर्च किया जाता है, परन्तु जैसे-जैसे अर्थव्यवस्था विकास के मार्ग पर अग्रसर होती जाती है, वैसे-वैसे आय में वृद्धि के साथ-साथ बचतों में वृद्धि होती है, जिससे निजी उद्योग एवं कृषि में पूँजी स्टॉक बढ़ता है, परन्तु मसग्रेव की धारणा है कि जब आर्थिक विकास काफी हो जाता है, तो उसके साथ कुछ ऐसी समस्याएँ भी उत्पन्न हो जाती हैं कि सार्वजनिक व्यय में वृद्धि करना आवश्यक हो जाता है; जैसे—औद्योगीकरण से शहरीकरण को बढ़ावा मिलता है, शहरीकरण से उत्पन्न जटिलताओं को दूर करने के लिए सरकार को आगे आना पड़ता है। सार्वजनिक व्यय मानव पूँजी के विकास के लिए आवश्यक समझा जाता है। स्वास्थ्य, शिक्षा, पेयजल आदि की व्यवस्था सरकार को करनी पड़ती है। यह सब सार्वजनिक व्यय में वृद्धि का कारण बनते हैं।

इस तरह, **रोस्टोव** तथा **मसग्रेव** दोनों ही अर्थशास्त्रियों के मॉडल विकास प्रक्रिया के फलस्वरूप सार्वजनिक व्यय के बढ़ते अनुपात पर व्यापक विचार प्रस्तुत करते हैं। विकास की प्रक्रिया में तत्पर विभिन्न विकासशील देशों के सार्वजनिक व्यय के आँकड़ों के अध्ययन एवं विश्लेषण से रोस्टोव एवं मसग्रेव की इस विचारधारा की पुष्टि होती है कि विकास की प्रक्रिया के दौरान न केवल सार्वजनिक व्यय के अनुपात में वृद्धि होती है, बल्कि सार्वजनिक व्यय के स्वरूप में भी परिवर्तन हो जाता है।

प्र.3. बढ़ते हुए सार्वजनिक व्यय के प्रति दृष्टिकोण की व्याख्या कीजिए।

Describe the attitude towards increasing Public Expenditure.

उत्तर

बढ़ते हुए सार्वजनिक व्यय के प्रति दृष्टिकोण
(Attitude Towards Public Expenditure)

देश की अर्थव्यवस्था में सरकार की निरन्तर बढ़ती जा रही भूमिका तथा उसके कल्याणकारी कार्यों में हो रही वृद्धि के फलस्वरूप राज्यों के व्यय में तेजी से वृद्धि होती जा रही है। राज्यों के इस तरह बढ़ते सार्वजनिक व्यय के प्रति कुछ लोगों ने निम्न आधारों पर चिन्ता व्यक्त की है—

(अ) सार्वजनिक व्यय प्रकृति से अनुत्पादक तथा अपव्ययपूर्ण होते हैं।

(ब) विरोधी दलों को यह शंका बनी रहती है कि सत्तारूढ़ दल सार्वजनिक धन का उपयोग अपने शासन को स्थायी बनाने के लिए तो नहीं कर रहा है।

(स) यह भी चिन्ता बनी रहती है कि सरकार के कार्यक्षेत्र में विस्तार से व्यक्तिगत स्वतन्त्रता तथा निजी उद्यम के क्षेत्र पर अतिक्रमण हो सकता है।

प्रथम चिन्ता इस धारणा पर आधारित है कि—1. प्रशासनिक दृष्टि से सरकार स्वभावत: अपव्ययी तथा अकुशल होती है, तथा 2. सरकारी कार्य लाभकारी न होकर समाज के ऊपर बोझ होते हैं। ये तर्क उचित नहीं प्रतीत होते हैं कि हर बड़ा संगठन चाहे वह सामाजिक, व्यावसायिक अथवा सरकारी हो, उसमें अपव्यय व अकुशलता का पाया जाना एक सामान्य बात हो सकती है। यह तर्क भी आधारहीन है कि सरकारी कार्य से जनता पर अनावश्यक बोझ बढ़ता है। सरकारी कार्य सामान्यतया उन सेवाओं के रूप में होते हैं, जो प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से समाज की उत्पादन क्षमता में वृद्धि करते हैं, भले ही उनसे सरकार को प्रत्यक्ष रूप से आय प्राप्त न होती हो। विरोधी दलों की इस चिन्ता में सत्यता का कुछ अंश परिलक्षित होता है कि सार्वजनिक व्यय का उपयोग शासक दल मतदाताओं को अपनी तरफ आकर्षित करने के लिए कर सकता है ताकि वह चुनाव में पुन: जीत सके। फिर भी इस आधार पर शासक दल द्वारा सार्वजनिक व्यय किये जाने की आलोचना नहीं की जा सकती। शासक दल जनता से मत प्राप्त कर शासन करने की शक्ति प्राप्त करता है। अत: सार्वजनिक व्यय की नीति अपनाने के पीछे जनता की स्वीकृति रहती है। इसी तरह, सरकारी क्षेत्र का विस्तार भी निजी उपक्रमों के लिए अभिशाप न होकर वरदान ही साबित हुआ है। आन्तरिक शान्ति व बाह्य आक्रमण से सुरक्षा तथा आर्थिक विकास हेतु आधारभूत संरचना का विकास; जैसे—यातायात एवं संचार के माध्यमों का विकास, शिक्षा एवं स्वास्थ्य पर किया गया व्यय, गैर-सरकारी अर्थव्यवस्था के विकास में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

प्र.4. सार्वजनिक व्यय की सीमाओं का उल्लेख कीजिए।

Explain the limitations of Public Expenditure.

उत्तर

सार्वजनिक व्यय की सीमाएँ
(Limitations of Public Expenditure)

आज विभिन्न कारणों से सार्वजनिक व्यय में तेजी से वृद्धि होती जा रही है। अत: यह प्रश्न उठना स्वाभाविक है कि सार्वजनिक व्यय की क्या सीमा होनी चाहिए? अथवा राष्ट्रीय आय का अधिकतम कितना भाग सार्वजनिक व्यय के रूप में होना चाहिए?

सार्वजनिक व्यय उस सीमा तक उचित समझा जाता है, जहाँ तक वह समाज को अधिकतम सामाजिक लाभ प्रदान करने में सक्षम होता है। प्रत्येक देश की सरकार को सरकारी धन खर्च करते समय कुछ मदों पर विशेष ध्यान रखना पड़ता है; जैसे—देश में आन्तरिक सुरक्षा तथा शासन व्यवस्था पर व्यय, देश की सीमाओं की रक्षा पर व्यय, सामाजिक कल्याण, आर्थिक विकास, अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों को अनुकूल बनाये रखने तथा अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार से सम्बन्धित व्यय आदि। **प्रो० व्युहलर** का मत है कि "राष्ट्रीय आय का कोई निश्चित प्रतिशत सार्वजनिक व्यय के लिए निश्चित नहीं किया जा सकता, क्योंकि यह सीमा समाज की इच्छा तथा आवश्यकताओं पर सार्वजनिक व्यय प्रभावों तथा उसे पूरा करने के लिए उपलब्ध साधनों तथा सम्पत्ति व आय के वितरण पर आर्थिक स्थिति एवं अन्य तत्त्वों पर निर्भर करती है।" इस तरह, सार्वजनिक व्यय की सीमा निर्धारण करना सहज नहीं है, क्योंकि यह अनेक कारकों से प्रभावित होता है; जैसे—

1. समाज की आवश्यकताएँ तथा इच्छाएँ,
2. जनसंख्या का आकार तथा गुण,
3. जनता की करदान क्षमता,
4. देश के आर्थिक विकास की अवस्था,
5. जन-कल्याण में वृद्धि हेतु सरकार की इच्छा शक्ति,
6. जनता की राज्य पर निर्भरता की मात्रा,
7. देश का पड़ोसी देशों से सम्बन्ध, आदि।

इस सम्बन्ध में **ब्रिचलर** ने लिखा है कि, "कुछ व्यक्तियों की दृष्टि में सार्वजनिक व्यय की प्रत्येक तुलनात्मक वृद्धि एक अभिशाप है, जबकि कुछ की दृष्टि में यह प्रसन्नता की बात मानी जाती है और कुछ इसके प्रति उदासीन हैं। सरकारी व्यय की समुचित सीमा के रूप में राष्ट्रीय आय के किसी निश्चित प्रतिशत का नाम लेना असम्भव है, क्योंकि ऐसी सीमा तुलनात्मक परिस्थितियों पर निर्भर करती है।"

प्र.5. लोक व्यय के अन्य प्रभावों का उल्लेख कीजिए।
Mention the other effects of Public Expenditure.

उत्तर

लोक व्यय के अन्य प्रभाव
(Other Effects of Public Expenditure)

लोक व्यय के अन्य प्रभावों का अध्ययन निम्नलिखित शीर्षकों के अन्तर्गत किया जाता है—

1. **लोक व्यय एवं आर्थिक स्थायित्व** (Public Expenditure and Economic Stability)—अर्थव्यवस्था में आर्थिक क्रियाओं को उचित स्तर पर बनाये रखने की दृष्टि से आर्थिक स्थायित्व की प्राप्ति पर जोर दिया जाता है। आर्थिक स्थायित्व का आशय मन्दी और तेजी काल को नियन्त्रित करने से है। इन दोनों की दृष्टि से लोक व्ययों को प्रभावशाली ढंग से अपनाया जा सकता है—
   (अ) **लोक व्यय एवं मन्दी काल** (Public Expenditure and Depression)—मन्दी काल में वस्तुओं और सेवाओं के मूल्य गिर जाते हैं, उद्योगों की हानि होती है और बेरोजगारी का दुश्चक्र प्रारम्भ हो जाता है। इस स्थिति में लोक व्यय क्षतिपूरक व्यय (Compensatory Finance) के रूप में कार्य करता है। क्षतिपूरक व्यय का आशय किसी व्यय की कमी को दूर करने के लिए लोक व्ययों का प्रतिस्थापन है। मन्दी काल की समस्या का समाधान करने के लिए लोक व्यय को निम्न वर्गों में विभाजित किया जा सकता है—
      (i) **जनता में माँग वृद्धि पर किया जाने वाला व्यय**—ऐसा व्यय जिससे जनता की क्रय शक्ति में वृद्धि हो और उसके द्वारा की जाने वाली प्रभावकारी माँग में वृद्धि हो सके।
      (ii) **निजी विनियोग को प्रोत्साहित करने वाला व्यय**—ऐसे व्यय जिससे उद्योगों में निजी विनियोग प्रोत्साहित हो सके। इसमें उद्योगों को प्रदान किया जाने वाला अनुदान एवं वित्तीय सहायता शामिल हो सकती है। यह सहायता हानि पर चलने वाले उद्योगों की हानि की पूर्ति के लिए तथा उद्योगों के नवीनीकरण एवं निर्यात प्रोत्साहन इत्यादि के लिए दी जा सकती है।
      (iii) **सार्वजनिक निर्माण एवं उद्योगों में विनियोजित राशि**—यहाँ यह उल्लेखनीय है कि मन्दी काल में लोक व्ययों की उचित भूमिका की दृष्टि से घाटे की वित्त-व्यवस्था का भी समर्थन किया जाता है।
   (ब) **लोक व्यय एवं स्फीति काल** (Public Expenditure and Inflation)—स्फीति काल मुद्रा एवं साख की मात्रा की अधिकता और वस्तुओं की पूर्ति में कमी के कारण मूल्यों में वृद्धि की स्थिति पायी जाती है। यद्यपि स्फीति काल में लोक व्यय की उतनी महत्त्वपूर्ण भूमिका नहीं होती, जितनी कि मन्दी काल में होती है, लेकिन फिर

TOUCH 'n' PASS

भी लोक व्यय की उचित नीति स्फीति काल में विभिन्न नियन्त्रक उपायों में से एक उपाय सिद्ध हो सकती है। इस दृष्टि से यह आवश्यक हो जाता है कि लोक व्ययों में कमी की जाए अनुत्पादक मदों पर लोक व्ययों में अधिकतम सम्भव कटौती की जाए तथा ऐसी मदों एवं योजनाओं पर अधिक व्यय किया जाए, जो कम समय में देश में वस्तुओं के उत्पादन में वृद्धि करके मुद्रा स्फीतिक प्रभावों को कम कर सके।

2. **लोक व्यय और रोजगार** (Public Expenditure and the Level of Employment)—देश में रोजगार स्तर को उठाने में लोक व्यय एक महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा सकते हैं। इस दृष्टि में लोक व्ययों में निम्न विशेषताएँ होनी चाहिए—
   (i) देश में उद्योगों एवं अन्य उत्पादक क्रियाओं को प्रोत्साहित किया जाए तथा बन्द होने की सम्भावना वाले उद्योगों को वित्तीय सहायता दी जाए,
   (ii) सरकार स्वयं कुछ उद्योगों का संचालन करे,
   (iii) सार्वजनिक निर्माण कार्य को प्रोत्साहित किया जाए,
   (iv) रोजगार उन्मुख कार्यक्रमों पर विशेष ध्यान दिया जाए।
   वास्तविकता यह है कि रोजगार स्तर पर लोक व्यय का प्रभाव बहुत कुछ इस तथ्य पर निर्भर करेगा कि उत्पादन और वितरण पर लोक व्यय का प्रभाव कैसा पड़ रहा है।
3. **लोक व्यय एवं आर्थिक विकास** (Public Expenditure and Economic Growth)—लोक व्यय और आर्थिक विकास का घनिष्ठ सम्बन्ध है। आर्थिक विकास की प्रारम्भिक अवस्था में जब बचत और पूँजी निर्माण की गति धीमी होती है, विकास के लिए निजी पहल का अभाव होता है, देश में आधारभूत संरचना का अभाव होता है तथा क्षेत्रीय विकास में काफी असन्तुलन होता है, लोक व्यय इन विभिन्न समस्याओं के सुलझाने में महत्त्वपूर्ण उपकरण का कार्य करता है।

खण्ड-स विस्तृत उत्तरीय प्रश्न

प्र.1. लोक व्यय के सिद्धान्त व इसमें वृद्धि के वैगनर के राज्य के बढ़ते क्रिया-कलापों के सिद्धान्त की विवेचना विस्तार से कीजिए।

Describe the principles of public expenditure and principle of increase in public expenditure in Wagner's Principle of Increasing State Activities.

उत्तर

लोक या सार्वजनिक व्यय का सिद्धान्त
(Principle of Public Expenditure)

कुछ लेखकों ने कुछ ऐसे नियमों को बनाने का प्रयास किया है, जो लोक व्यय की नीति और व्यवस्था का मार्गदर्शन कर सकें। इस सन्दर्भ में **फिण्डले शिराज** ने निम्न आठ सिद्धान्तों का स्पष्टीकरण किया है—

1. **लाभ का सिद्धान्त** (Principle of Benefit)—यह सिद्धान्त लोक व्यय का आधारभूत और अत्यन्त महत्त्वपूर्ण सिद्धान्त है तथा इसका आशय यह है कि सार्वजनिक व्यय इस प्रकार किये जाएँ, जिससे समाज को अधिकतम सन्तुष्टि प्राप्त हो और अधिकतम सामाजिक लाभ के लक्ष्य को प्राप्त किया जा सके। **प्रो० फिण्डले शिराज** के अनुसार, "अन्य बातें समान रहने पर लोक व्यय इस प्रकार होना चाहिए कि जिससे समाज को महत्त्वपूर्ण लाभ प्राप्त हो; जैसे—उत्पादन में वृद्धि हो, सम्पूर्ण समाज विदेशी आक्रमण और आन्तरिक अव्यवस्था से सुरक्षित रहे और जहाँ तक सम्भव हो, आय की असमानताएँ कम हो जाएँ।"
   लाभ का सिद्धान्त इस बात पर जोर देता है कि सार्वजनिक व्यय इस प्रकार हो, जिससे (अ) देश में उत्पादन में अच्छा प्रभाव पड़े, (ब) समाज को अधिकतम लाभ प्राप्त हो, (स) लोक व्यय किसी वर्ग विशेष के लाभ के लिए न होकर सम्पूर्ण समाज के लिए हो तथा (द) यह व्यय किसी निश्चित नीति या परम्परा से बाध्य हो।
2. **मितव्ययिता का सिद्धान्त** (Principle of Economy)—मितव्ययिता के सिद्धान्त का आशय यह है कि सरकार को केवल आवश्यक कार्यों पर ही व्यय करना चाहिए। सरकार का कोई भी व्यय ऐसा न हो, जो फिजूलखर्ची हो या जिससे

TOUCH 'n PASS

किसी प्रकार का आर्थिक या सामाजिक लाभ प्राप्त न हो। इस सिद्धान्त के आधार पर लोक व्ययों में निम्न नियमों का पालन करना चाहिए—

(i) किसी मद पर आवश्यकता से अधिक व्यय नहीं करना चाहिए,
(ii) व्यय इस प्रकार किये जाएँ, जिससे देश में उत्पादन शक्ति का विकास हो और कार्यक्षमता में वृद्धि हो,
(iii) जहाँ तक हो व्ययों में अपव्ययिता, अनियमितता और असावधानी नहीं होनी चाहिए, तथा
(iv) व्ययों के अन्तिम प्रभावों और परिणामों पर भी ध्यान देना चाहिए।

3. **स्वीकृति या अनुमोदन का सिद्धान्त** (Principle of Sanction)—स्वीकृति के सिद्धान्त का आशय यह है कि किसी भी लोक व्यय करने से पूर्व उचित अधिकारियों से उसकी स्वीकृति प्राप्त कर लेनी चाहिए। यही नहीं, जितनी राशि व्यय करने के लिए स्वीकृत हो, उससे अधिक व्यय नहीं करनी चाहिए। इसके साथ ही जिस कार्य, उद्देश्य एवं क्षेत्र के लिए व्यय करने की स्वीकृति मिली हो, व्यय उसी के लिए करना चाहिए। लोक व्यय के पूर्व व्यय एवं उसके मदों की वैधानिक एवं प्रशासकीय स्वीकृति आवश्यक है।
4. **बचत (या आधिक्य) का सिद्धान्त** (Principle of Surplus)—बचत के सिद्धान्त का अर्थ है कि सरकार को अपना आय-व्यय इस प्रकार सन्तुलित करना चाहिए, जिससे घाटे की अर्थव्यवस्था की आवश्यकता न हो। यहाँ यह स्पष्ट हो जाना चाहिए कि बचत के सिद्धान्त का अर्थ यह नहीं है कि सरकार के व्यय सदैव उसकी आय से कम होने चाहिए। वास्तव में यह नियम तो सामान्य परिस्थितियों के लिए है। संकट काल या विशेष परिस्थितियों में घाटे के बजट ही आवश्यक और लाभदायक सिद्ध हो सकते हैं।
5. **लोच का सिद्धान्त** (Principle of Elasticity)—लोच के सिद्धान्त का अर्थ यह है कि लोक व्यय की संरचना इस प्रकार होनी चाहिए कि उसमें आवश्यकता और परिस्थितियों के अनुसार कमी या वृद्धि की जा सके। संकट काल या मन्दी काल में लोक व्ययों में वृद्धि की आवश्यकता होती है और इसके विपरीत मुद्रा प्रसार की परिस्थितियों में लोक व्ययों को कम करना होता है। अत: लोक व्यवस्था में इस प्रकार का लोच रहे कि उसे एक ओर अर्थव्यवस्था की आवश्यकताओं और दूसरी ओर कर तथा आय के अन्य स्रोतों के अनुरूप उसमें समायोजन किया जा सके।
6. **उत्पादकता का सिद्धान्त** (Principle of Productivity)—उत्पादकता का सिद्धान्त इस बात पर जोर देता है कि लोक व्ययों को ऐसी मदों पर व्यय करना चाहिए, जिससे देश में उत्पादन शक्ति या उत्पदन की मात्रा में प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से वृद्धि हो। इस दृष्टि से पूँजी निर्माण की गति बढ़ाने, उद्योगों की स्थापना करने, उत्पादन कार्यों के लिए सहायता प्रदान करने तथा रोजगार प्रदान करने इत्यादि की दृष्टि से किये गये व्यय उत्पादक व्यय माने जाते हैं। प्रारम्भ में सुरक्षा व्यय को अनुत्पादक व्यय माना जाता था, लेकिन आज यह स्वीकार किया जाता है कि यह व्यय भी उत्पादक है, क्योंकि देश की सुरक्षा रहने पर देश में उत्पादन कार्यों में आसानी से प्रगति की जा सकती है।
7. **समान वितरण का सिद्धान्त** (Principle of Equitable Distribution)—इस सिद्धान्त के अनुसार, लोक व्ययों का नियोजन इस प्रकार करना चाहिए कि उससे देश में आय एवं सम्पत्ति का वितरण समानता की ओर बढ़े। इस आधार पर निर्धनों को लाभ पहुँचाने वाले कार्यों पर अधिक व्यय करना चाहिए। यह सिद्धान्त इस बात पर भी जोर देता है कि पिछड़े और कम विकसित क्षेत्रों के विकास पर अधिक व्यय किया जाना चाहिए।
8. **समन्वय का सिद्धान्त** (Principle of Coordination)—भारत जैसी संघात्मक (Federal) वित्त-व्यवस्था में लोक व्यय में समन्वय के सिद्धान्त पर भी जोर दिया जाता है। इस सिद्धान्त का अर्थ है कि विभिन्न सरकारों अर्थात् केन्द्रीय, राज्य एवं स्थानीय सरकारों के व्ययों में समन्वय रहना चाहिए, जिससे ऐसा न हो कि कुछ मदों पर तो व्यय में दोहरापन हो जाए और कुछ मदों पर व्यय ही न हो।

निष्कर्ष (Conclusion)—लोक व्यय के विभिन्न सिद्धान्तों की संक्षिप्त समीक्षा करते हुए **ब्यूहलर** ने लिखा है—

"अभी तक व्यय के सिद्धान्त उतने अधिक विकसित नहीं हैं, जितने कि करों के सिद्धान्त, लेकिन फिर भी कुछ स्पष्ट और साथ ही आधारभूत सिद्धान्तों का वर्णन किया जा सकता है, जो धारासभा के सदस्यों तथा जनता का उस समय तक पथ-प्रदर्शन कर सकते हैं, जब तक कि प्रमापों की खोज न कर ली जाए।"

TOUCH 'n PASS

सार्वजनिक व्यय में वृद्धि के सिद्धान्त
(Principles of Increase in Public Expenditure)

सार्वजनिक व्यय में निरन्तर होती जा रही वृद्धि के कारणों पर प्रकाश डालने के सम्बन्ध में जिन सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया गया है, उनमें से प्रमुख निम्नवत् हैं—

1. वैगनर का राज्य के बढ़ते क्रिया-कलापों का सिद्धान्त।
2. पीकॉक-वाइजमैन परिकल्पना।
3. सार्वजनिक व्यय में वृद्धि का विकास मूलक सिद्धान्त।

1. **वैगनर का राज्य के बढ़ते क्रिया-कलापों का सिद्धान्त** (Wagner's Law of Increasing State Activities)—सार्वजनिक व्यय में वृद्धि के सन्दर्भ में **जर्मन अर्थशास्त्री एडोल्फ वैगनर** ने 19वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में अनुभवजन्य विश्लेषण पर आधारित एक सिद्धान्त का प्रतिपादन किया जो **'वैगनर का राज्य के बढ़ते क्रिया-कलापों का (नियम) सिद्धान्त'** के नाम से जाना जाता है। इस सिद्धान्त के द्वारा वैगनर ने यह स्पष्ट करने का प्रयास किया कि आर्थिक विकास के स्तर में होने वाली वृद्धि के साथ-साथ राज्य के क्रिया-कलापों अर्थात् सार्वजनिक व्यय में तेजी से वृद्धि होती जाती है। **वैगनर** के अनुसार, "विभिन्न देशों तथा कालों का सामयिक विश्लेषण यह प्रकट करता है कि प्रगतिशील राष्ट्रों में केन्द्रीय तथा स्थानीय सरकारों की क्रियाओं में नियमित रूप से वृद्धि होने की प्रवृत्ति पायी जाती है। यह वृद्धि गहन तथा व्यापक दोनों प्रकार की होती है। केन्द्रीय तथा स्थानीय सरकारें एक तरफ नये कार्यों को अपनाती हैं, तो दूसरी तरफ पुराने कार्यों को वे पहले की अपेक्षा अधिक दक्षता व कुशलता के साथ सम्पन्न करती हैं।" इस तरह, इस नियम के अनुसार अर्थव्यवस्थाओं के विकास के साथ-साथ राज्य के व्यय के सभी मदों में वृद्धि हो जाती है।

वैगनर के अनुसार, राज्यों के विभिन्न मदों में वृद्धि की प्रवृत्ति के दो कारण हैं। **प्रथम**—राज्य की सेवाओं के प्रति माँग की लोच एक से अधिक होती है तथा **द्वितीय**—जैसे-जैसे आर्थिक विकास होता जाता है, सार्वजनिक क्षेत्र का महत्त्व निजी क्षेत्र की अपेक्षा बढ़ता जाता है। **वैगनर** ने राज्य के कार्यों को दो वर्गों में विभाजित किया है—1. आन्तरिक व बाह्य सुरक्षा सम्बन्धी कार्य तथा 2. कल्याणकारी कार्य। **वैगनर** की धारणा है कि आर्थिक विकास के साथ-साथ समाज में जटिलता तथा विषमता की वृद्धि होती है। समाज में अपराध बढ़ते हैं। इसके परिणामस्वरूप समाज में कानून व्यवस्था को बनाये रखने के लिए आन्तरिक व बाह्य सुरक्षा पर व्यय निरन्तर बढ़ाना पड़ता है। जैसा कि पूर्व में कहा जा चुका है कि आधुनिक समय में देश की प्रतिरक्षा हेतु किया जाने वाला व्यय निरन्तर बढ़ाना पड़ता है। जैसा कि पूर्व में कहा जा चुका है आधुनिक समय में देश की प्रतिरक्षा हेतु किया जाने वाला व्यय सार्वजनिक व्यय में वृद्धि का एक प्रमुख कारण है। राज्य के कल्याणकारी कार्यों में भी निरन्तर वृद्धि होती जा रही है। उदाहरण के लिए, शिक्षा एवं स्वास्थ्य पर व्यय करते हैं, क्योंकि एक ओर जहाँ औद्योगीकरण, नगरीकरण एवं जनघनत्व में वृद्धि के फलस्वरूप वातावरण प्रदूषित होता जा रहा है, वहीं दूसरी ओर उत्पादन एवं उत्पादकता में वृद्धि हेतु श्रमिकों को शिक्षित व कुशल बनाना आवश्यक हो गया है।

अर्थव्यवस्था में सार्वजनिक क्षेत्र का निरन्तर विकास भी आधुनिक राज्य की एक अनिवार्यता है। बाजार-तन्त्र समाज की आर्थिक आवश्यकताओं को पूरा करने में सक्षम नहीं है, यह एक तथ्यपरक कथन है।

यहाँ यह उल्लेखनीय है कि वैगनर का सिद्धान्त यह स्पष्ट नहीं करता कि राज्य की बढ़ती आर्थिक क्रियाओं अथवा सार्वजनिक व्यय में वृद्धि से तात्पर्य (i) सार्वजनिक व्यय के निरपेक्ष स्तर से था अथवा (ii) सकल राष्ट्रीय उत्पाद (GNP) के सार्वजनिक व्यय के प्रतिशत से था अथवा (iii) अर्थव्यवस्था में सार्वजनिक क्षेत्रों के अनुपात से था। यही कारण है कि वैगनर के नियम को अनेक रूपों में व्यक्त किया जा सकता है। इस सम्बन्ध में **फ्रेडरिक एल० प्रियर** (Frederic L. Pryor) का कथन है कि वैगनर का नियम इतना अस्पष्ट है कि इसकी व्याख्या कई रूपों में की जा सकती है।

इस तरह, वैगनर के नियम को विभिन्न अर्थशास्त्रियों ने भिन्न रूपों में देखा है; जैसे—**पीकॉक** एवं **वाइजमैन** वैगनर के नियम की व्याख्या करते हुए कहते हैं कि, "इस नियम के अनुसार, सार्वजनिक व्यय, सकल राष्ट्रीय उत्पाद की वृद्धि दर की अपेक्षा तेज दर से बढ़ता है। अन्य शब्दों में, सार्वजनिक व्यय सकल राष्ट्रीय उत्पाद का फलन होता है। (P. E. = f(GNP)) तथा सकल राष्ट्रीय उत्पाद के सन्दर्भ में सार्वजनिक व्यय की लोच एक से अधिक होती है।" इस प्रकार, जैसे-जैसे सकल राष्ट्रीय उत्पाद में वृद्धि होती है, सार्वजनिक व्यय में अपेक्षाकृत अधिक तेजी से वृद्धि होती जाती है।

TOUCH 'n' PASS

मसग्रेव के अनुसार, वैगनर के नियम को सार्वजनिक क्षेत्र के निरन्तर बढ़ते हुए हिस्से या सार्वजनिक व्यय का सकल राष्ट्रीय उत्पादन से अनुपात तथा किसी देश के निम्न प्रति व्यक्ति आय से उच्च प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि के साथ सम्बन्धित किया जाना चाहिए। इस तरह, मसग्रेव के अनुसर वैगनर का नियम इस धारणा पर आधारित है कि,

सार्वजनिक/सकल राष्ट्रीय उत्पाद = f (प्रति व्यक्ति आय)

यदि प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि की अनुक्रिया के फलस्वरूप सार्वजनिक व्यय का सकल राष्ट्रीय उत्पाद से अनुपात (P. E./GNP) में होने वाली वृद्धि का अनुपात जिसे सार्वजनिक व्यय की लोच कहा जा सकता है, इकाई से अधिक हो, तो वैगनर का नियम क्रियाशील होगा, अर्थात् यदि GNP में होने वाली वृद्धि की अपेक्षा P. E. (सार्वजनिक व्यय) में होने वाली वृद्धि अधिक होती है, तब वैगनर का नियम लागू होता है।

फ्रेडरिक एल० प्रायर वैगनर के नियम की व्याख्या करते हुए स्पष्ट करते हैं कि इस नियम के अनुसार प्रति व्यक्ति सार्वजनिक व्यय, प्रति व्यक्ति का आय फलन होता है। यदि सार्वजनिक व्यय की लोच को हम निम्नवत् व्यक्त करें, अर्थात्,

$$\text{सार्वजनिक व्यय की लोच} = \frac{\text{प्रति व्यक्ति सार्वजनिक व्यय में आनुपातिक परिवर्तन}}{\text{प्रति व्यक्ति आय में आनुपातिक परिवर्तन}}$$

तथा सार्वजनिक व्यय की यह लोच इकाई से अधिक हो, अर्थात् प्रति व्यक्ति आय में आनुपातिक परिवर्तन की अपेक्षा प्रति व्यक्ति सार्वजनिक व्यय में आनुपातिक परिवर्तन अधिक हो, तब वैगनर का नियम लागू होगा।

इस तरह, यह कहा जा सकता है कि वैगनर के नियम के अनुसार जैसे-जैसे देश का विकास होता जाता है तथा देश में जैसे-जैसे प्रति व्यक्ति आय बढ़ती है, उसके सार्वजनिक व्यय में अपेक्षाकृत तेजी से वृद्धि होती जाती है।

डाल्टन के अनुसार, वैगनर का नियम लागू होने के मुख्य तीन कारण हैं—

1. **अधिक कुशलता**—विकास की प्रक्रिया के कुछ क्षेत्र ऐसे होते हैं, जिसमें निजी संस्थाओं की तुलना में सरकारी संस्थाएँ कुशलता के साथ कार्य कर सकती हैं। **डाल्टन** का कथन है कि निजी एजेन्सियों की तुलना में सरकारी एजेन्सियों का चयन बुद्धिमत्तापूर्ण हो सकता है।
2. **निजी संस्थाओं की असमर्थता**—विकास की प्रक्रिया के कुछ क्षेत्र ऐसे होते हैं, जिसमें निजी क्षेत्र निवेश करने में रुचि नहीं दिखाते। इन क्षेत्रों में जो जनोपयोगी तथा आवश्यक होते हैं, सरकार को अनिवार्य रूप से व्यय करना पड़ता है। इसका एक उपयुक्त उदाहरण बड़े नगरों में जन-स्वास्थ्य सेवाओं से सम्बन्धित कार्य है।
3. **सामूहिक उपयोग**—सार्वजनिक व्यय का सम्बन्ध मुख्यत: सामूहिक उपयोगी वस्तुओं एवं सेवाओं से होता है, जबकि निजी व्यय का सम्बन्ध वस्तुओं एवं सेवाओं के व्यक्तिगत उपयोग से सम्बन्धित होता है। पार्क, अजायबघर, सार्वजनिक पुस्तकालय आदि जो सार्वजनिक उपयोग से सम्बन्धित हैं, पर व्यय सरकार द्वारा किया जाता है।

वैगनर के नियम की समीक्षा—सार्वजनिक व्यय में वृद्धि होने की वैगनर की अवधारणा में सत्यता के अंश परिलक्षित होते हैं। आज लगभग सभी विकसित, विकासशील तथा पिछड़े देशों के सार्वजनिक व्यय में बहुत तेजी से वृद्धि हुई है। इस आधार पर अनेक अर्थशास्त्रियों ने यह मत व्यक्त किया है कि वैगनर का नियम, जो उन्होंने जर्मनी के ऐतिहासिक प्रमाणों के आधार पर प्रतिपादित किया था, वह आज भी सभी देशों में समान रूप से लागू हो रहा है। **डब्ल्यू० ए० लेविस, जे० जी० विलियमसन** तथा **एलिसन मार्टिन** जैसे अर्थशास्त्रियों ने अपने अध्ययनों के आधार पर वैगनर की परिकल्पना की पुष्टि करते हुए स्पष्ट किया है कि जैसे-जैसे प्रति व्यक्ति सकल राष्ट्रीय उत्पाद बढ़ता जाता है, वैसे-वैसे सकल राष्ट्रीय उत्पाद में सार्वजनिक व्यय का भाग बढ़ता जाता है। इसके विपरीत, **मसग्रेव** ने अल्पविकसित देशों के सन्दर्भ में किये गये अध्ययन के आधार पर यह स्पष्ट करने का प्रयास किया है कि सार्वजनिक व्यय के हिस्से तथा प्रति व्यक्ति आय में सकारात्मक सम्बन्ध नहीं है अर्थात् प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि के साथ-साथ सार्वजनिक व्यय में वृद्धि होते जाना आवश्यक नहीं है।

वैगनर के सिद्धान्त की यथार्थता, ऐतिहासिक प्रमाण सिद्ध तो करते हैं, किन्तु इसका आधार व प्रमाण दोनों ही अपर्याप्त हैं। ऐतिहासिक प्रमाण के लिए वैगनर ने जो समयावधि ली है वह अपर्याप्त है तथा यह भी सम्भव नहीं है कि जो बात देशों के सम्बन्ध में सत्य हो, वह सभी देशों में भी समान रूप से लागू होगी। इसके अतिरिक्त यह सिद्धान्त सार्वजनिक व्यय में वृद्धि की प्रक्रिया पर भी स्पष्ट प्रकाश नहीं डालता।

TOUCH 'n PASS

वैगनर के सिद्धान्त के सम्बन्ध में यह बात भी उल्लेखनीय है कि यह सार्वजनिक व्यय की चिरकालिक प्रवृत्ति को तो स्पष्ट करता है, परन्तु सार्वजनिक व्यय के अन्य पहलुओं की उपेक्षा करता है; जैसे—सार्वजनिक व्यय की चिरकालिक प्रवृत्ति को तो वैगनर ने स्पष्ट किया है, परन्तु व्यय वृद्धि के कालिक संरूप पर वह ध्यान देने में असफल रहा।

उपरोक्त कमियों के बावजूद यह कहा जा सकता है कि सार्वजनिक व्यय के सम्बन्ध में वैगनर का नियम आज भी यथार्थ, उपयोगी एवं व्यावहारिक है। वर्तमान समय में लगभग सभी प्रगतिशील राज्य कल्याणकारी राज्य की भूमिका निभा रहे हैं, अत: आर्थिक विकास के साथ-साथ उनके सार्वजनिक व्यय में वृद्धि होते जाना अवश्यम्भावी है।

प्र.2. सार्वजनिक व्यय की वृद्धि में पीकॉक-वाइजमैन परिकल्पना का वर्णन कीजिए।

Describe the Peacock-Wiseman Hypothesis in Public Expenditure.

उत्तर पीकॉक-वाइजमैन परिकल्पना (Peacock-Wiseman Hypothesis)—**एलेन टी० पीकॉक** तथा **जैक वाइजमैन** नामक ब्रिटेन के दो अर्थशास्त्रियों ने 1890 से 1950 के दौरान ब्रिटेन के सार्वजनिक व्यय में होने वाले परिवर्तनों का अध्ययन कर सार्वजनिक व्यय में वृद्धि के सन्दर्भ में अपना एक अलग दृष्टिकोण प्रस्तुत किया, जिसे **पीकॉक-वाइजमैन परिकल्पना** के नाम से जाना जाता है। पीकॉक-वाइजमैन विश्लेषण सार्वजनिक व्यय निर्धारण के राजनैतिक सिद्धान्त पर आधारित है। उनके अनुसार, सार्वजनिक व्यय के बारे में निर्णय राजनैतिक आधार पर लिए जाते हैं। सार्वजनिक विचारधारा जो मतपेटी के माध्यम से व्यक्त होती है, सार्वजनिक व्यय के सम्बन्ध में लिए गये राजनैतिक निर्णयों को प्रभावित करती है। अन्य शब्दों में, सार्वजनिक व्यय का स्तर जनमत अथवा मतदान द्वारा प्रभावित होता है। यह कथन यथार्थपरक है, क्योंकि वास्तविक जीवन में हम देखते हैं कि सार्वजनिक व्यय को नागरिक अपने प्रतिनिधियों के माध्यम से प्रभावित करते हैं। चुनाव के पश्चात् गरीबी उन्मूलन हेतु किये जाने वाले व्यय-कार्यक्रम तथा किसी प्रतिनिधि विशेष के चुनाव क्षेत्र का विकास इसके उदाहरण हैं। प्रजातन्त्र में नागरिक उन प्रतिनिधियों का चयन करना चाहते हैं, जिनसे उन्हें अधिकतम लाभ मिल सकता हो, प्रतिनिधि भी राज्य के व्यय-कार्यक्रम को इस तरह प्रभावित करना चाहते हैं ताकि उनका प्रतिनिधित्व सरकार में बना रहे। **पीकॉक** एवं **वाइजमैन** की धारणा है कि मतदाता सार्वजनिक वस्तुओं एवं सेवाओं का लाभ तो प्राप्त करना चाहता है, परन्तु कर नहीं देना चाहता। अत: व्यय का निर्धारण करते समय सरकार यह ध्यान रखती है कि सम्बन्धित कराधान के प्रस्ताव पर मतदाताओं की क्या प्रतिक्रिया होगी। इस तरह, उनका विचार है कि कराधान का एक सहन स्तर होता है। इस स्तर से अधिक लोग कर नहीं देना चाहते, परन्तु आपातकाल परिस्थितियों; जैसे—युद्ध के समय लोग अधिक कर देने के लिए तैयार हो जाते हैं, फलत: सार्वजनिक व्यय में वृद्धि हो जाती है। यद्यपि युद्धोपरान्त सार्वजनिक व्यय में कमी आती है फिर भी वह युद्ध-पूर्व स्तर से अधिक ही रहता है, क्योंकि युद्ध की समाप्ति के बाद युद्ध के दौरान लगाये गये सभी कर समाप्त नहीं हो जाते तथा कुछ कर लगे ही रह जाते हैं। इस तरह, करारोपण तथा सार्वजनिक व्यय दोनों ही पुराने स्तर को नहीं प्राप्त होते, बल्कि कुछ उच्च स्तर पर स्थिर हो जाते हैं। सार्वजनिक व्यय की वृद्धि में इन अनिरन्तरताओं (Discontinuities) को ही **पीकॉक-वाइजमैन** ने 'विस्थापना प्रभाव' (Displacement Effect) की संज्ञा प्रदान की है।

उल्लेखनीय है कि वैगनर का नियम सकल राष्ट्रीय उत्पाद के सन्दर्भ में सार्वजनिक व्यय की दीर्घकालीन वृद्धि से सम्बन्धित था, जबकि पीकॉक-वाइजमैन की अवधारणा मूलत: सार्वजनिक व्यय की वृद्धि के स्वरूप तथा ढाँचे में परिवर्तन के विश्लेषण से सम्बन्धित रही। **पीकॉक** तथा **वाइजमैन** अपने अध्ययन के आधार पर निष्कर्ष पर पहुँचे थे कि 'युद्ध के उपरान्त ब्रिटेन के सरकारी व्यय में कमी आयी, परन्तु यह घटकर युद्ध के पूर्व के स्तर पर नहीं आयी तथा राष्ट्रीय उत्पाद में सरकारी व्यय का अनुपात युद्ध के तुरन्त पहले के स्तर की तुलना में बहुत अधिक रहा।' राष्ट्रीय उत्पाद में सार्वजनिक व्यय के अनुपात में इस स्थायी वृद्धि को पीकॉक तथा वाइजमैन ने विस्थापन प्रभाव कहा।

विस्थापन प्रभाव के कारण सार्वजनिक व्यय में स्थिर वृद्धि (Stable Growth) नहीं होती है, बल्कि अनियमित रूप से मकान की सीढ़ियों की तरह कई चरणों में होती है जैसा कि चित्र 1 में प्रदर्शित किया गया है—रेखाचित्र में बिन्दुकित क्षैतिज रेखाएँ सामान्य अवधि में सार्वजनिक व्यय के स्तर को तथा मोटी क्षैतिज रेखाएँ युद्धकाल के दौरान होने वाले सार्वजनिक व्यय को प्रदर्शित करती हैं। मान लीजिए युद्ध से पूर्व सामान्य दशा में सकल राष्ट्रीय उत्पाद के प्रतिशत के रूप में सार्वजनिक व्यय का स्तर AB है। युद्ध की दशा में आपातकालीन परिस्थितियों में अतिरिक्त करारोपण से सरकार की आय बढ़ जाने के फलस्वरूप सार्वजनिक व्यय में वृद्धि होती है, तब व्यय का स्तर ऊपर उठकर CD हो जाता है। अब युद्ध समाप्त होने के उपरान्त (मान लीजिए D समयावधि में युद्ध समाप्त हो जाता है) दो स्थितियाँ सम्भव हो सकती हैं। एक तो यह हो सकता है कि युद्ध के बाद भी कर का वही स्तर विद्यमान रहे, जो युद्ध के दौरान था, ऐसी दशा में सार्वजनिक व्यय का स्तर पूर्ववत् CD स्तर पर बना रहेगा। दूसरी दशा में इस बात की सम्भावना अधिक रहती है कि युद्ध के उपरान्त कुछ कर समाप्त कर दिये जाएँ (जिन्हें आपातकालीन

परिस्थितियों में करदाताओं ने बलात् देना स्वीकार किया हो) ऐसी दशा में, सार्वजनिक व्यय का स्तर CD से कुछ नीचे आ सकता है जैसा कि EF स्तर से प्रदर्शित है, परन्तु व्यय का यह स्तर अब भी AB स्तर से ऊपर है। ऐसी स्थितियों की पुनरावृत्ति सम्भव हो सकती है, जैसा कि चित्र में प्रदर्शित किया गया है।

पीकॉक-वाइजमैन की अवधारणा का अनुमोदन **मसग्रेव दम्पत्ति** ने भी किया है। उनके शब्दों में, "युद्ध जैसे राष्ट्रीय आपातकाल में सार्वजनिक व्यय में अस्थायी, परन्तु बलात् वृद्धि की आवश्यकता का अनुभव किया जाता है और इसके लिए मतदाता पुराने कर-देहली को पार करने को तैयार हो जाते हैं तथा कर के स्तर में ऐसी वृद्धि को स्वीकार कर लिया जाता है, जिसका पहले विरोध किया जाता था।" सार्वजनिक व्यय में वृद्धि के कारणों की व्याख्या के सिलसिले में युद्ध जैसे आपातकालीन संकट की भूमिका के महत्त्व को भी स्वीकार करते हैं। इस सन्दर्भ में **जे० एम० बुचानन** (Buchanan) का कथन है कि सार्वजनिक व्यय में वृद्धि के लिए सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण अकेला तत्त्व यदि कोई है, तो वह युद्ध की आशंका है। आधुनिक युद्ध तथा प्रतिरक्षा की लागत अत्यन्त बढ़ गयी है, जिसके कारण केन्द्रीय सरकारों के बजट का एक बड़ा भाग सेना के विभिन्न अंगों पर खर्च किया जाता है।

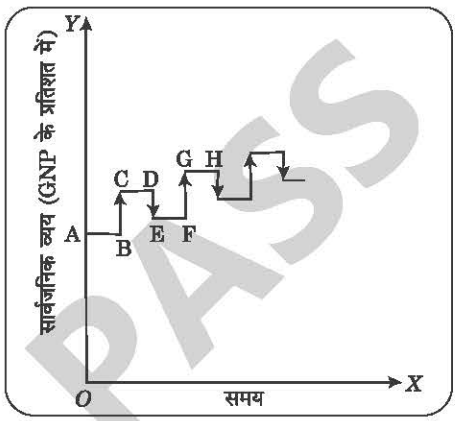

चित्र : 1

मसग्रेव ने अपनी पुस्तक *Fiscal System* में इस तथ्य के परीक्षण का प्रयास किया है कि युद्धकाल में सार्वजनिक व्यय में जो बलात् वृद्धि होती है, युद्धोपरान्त उस सार्वजनिक व्यय की प्रवृत्ति क्या होती है? सार्वजनिक व्यय उसी स्तर पर बना रहता है, युद्ध के पूर्व की स्थिति आ जाता है अथवा दोनों के बीच किसी स्तर को प्राप्त कर लेता है। इस स्थिति को चित्र 2 द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है।

रेखाचित्र में शान्ति के समय सामान्य परिस्थितियों में सार्वजनिक व्यय A बिन्दु के अनुरूप होता है, परन्तु युद्ध के कारण प्रतिरक्षा व्यय में बलात् वृद्धि होने के फलस्वरूप व्यय बढ़कर B बिन्दु पर पहुँच जाता है। अब प्रश्न यह उठता है कि युद्धोत्तर काल में सार्वजनिक व्यय का स्तर क्या हो? इस सम्बन्ध में तीन सम्भावनाएँ हो सकती हैं—

1. युद्धोपरान्त सार्वजनिक व्यय D बिन्दु पर आकर पुनः अपने पुराने स्तर DE को ग्रहण कर सकता है,
2. सार्वजनिक व्यय युद्धकालीन व्यय के स्तर पर युद्धोत्तर काल में भी CF पथ पर चलता रहे,
3. युद्धोत्तर काल में सार्वजनिक व्यय का पथ CF तथा DE के बीच CGH के अनुरूप रहे।

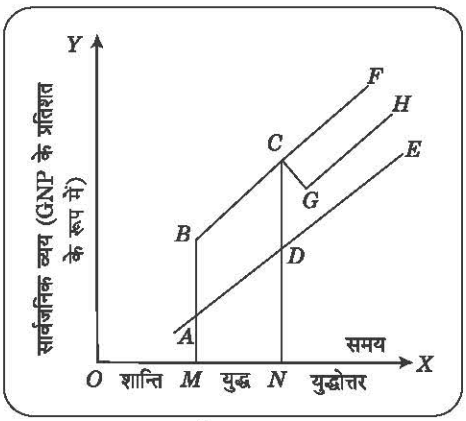

चित्र : 2

इससे यह प्रदर्शित होता है कि युद्ध के उपरान्त सार्वजनिक व्यय में कमी आती है फिर भी वह युद्धपूर्व के स्तर से अधिक रहता है। पीकॉक-वाइजमैन अवधारणा इसी सम्भावना को अधिक सही मानती है। युद्धकाल में लगाये गये नए करों में से कुछ युद्ध की समाप्ति के बाद भी लगे रह सकते हैं। परिणामस्वरूप युद्धोत्तर काल में सार्वजनिक व्यय में स्थायी वृद्धि हो जाएगी, परन्तु युद्धकाल की तुलना में कम।

पीकॉक-वाइजमैन परिकल्पना की आलोचना—पीकॉक वाइजमैन की धारणा है कि युद्ध आदि आपातकालीन परिस्थितियों में ही करारोपण व सार्वजनिक व्यय उच्च-स्तर प्राप्त करते हैं, जो स्थिति सामान्य होने पर भी उच्च स्तर पर बने रहते हैं। पीकॉक-वाइजमैन की अवधारणा के अनुसार यदि उपरोक्त परिस्थितियाँ उत्पन्न नहीं होतीं, तो सार्वजनिक व्यय में वृद्धि स्थिर गति से होगी, परन्तु ध्यानपूर्वक विचार करने से यह स्पष्ट होता है कि वर्तमान समय में सार्वजनिक व्यय में वृद्धि असामान्य घटनाओं अथवा परिस्थितियों के कारण नहीं, बल्कि राज्य के क्रियाकलापों में क्रमबद्ध व नियमित रूप से वृद्धि होने के कारण ही हो रही है। हाँ, युद्ध या संकटकालीन स्थितियाँ सार्वजनिक व्यय को प्रभावित करने वाली अनेक कारकों में एक हो सकती है। आज समस्त राष्ट्र आर्थिक विकास में सक्रिय योगदान करने के साथ-साथ कल्याणकारी पहलू के प्रति भी सचेष्ट है। बढ़ती हुई जनसंख्या,

TOUCH 'n' PASS

आधारभूत-संरचना का विकास, नगरीकरण, राज्य का कल्याणकारी स्वरूप, रोजगार के अवसरों में वृद्धि, बाजार यन्त्र की विफलता तथा मूल्य स्तर में वृद्धि आदि सार्वजनिक व्यय में वृद्धि का कारण बनते हैं, जिन्हें पीकॉक तथा वाइजमैन ने अनदेखा किया। 1960 के दशक के अन्तिम चरण में पश्चिमी देशों में सार्वजनिक व्यय में बहुत तेजी से वृद्धि हुई, जबकि उक्त अवधि में युद्ध या अन्य कोई संकटकालीन परिस्थिति इन देशों में उत्पन्न नहीं हुई थी। इस तरह, यह कहा जा सकता है कि पीकॉक-वाइजमैन अवधारणा सार्वजनिक वृद्धि के सन्दर्भ में मात्र संकेत करती है, इसकी कोई ठोस व्याख्या प्रस्तुत नहीं करती।
इसके अतिरिक्त, पीकॉक-वाइजमैन ने 'विस्थापन प्रभाव' की जो अवधारणा विकसित की, वह ब्रिटेन के सार्वजनिक व्यय के आँकड़ों सांख्यिकीय विश्लेषण पर आधारित थी। एक परिकल्पना एक सामान्य सिद्धान्त के रूप में तभी स्वीकार की जा सकती है, जब इसकी पुष्टि अन्य देशों में उपलब्ध आँकड़े भी करें।

प्र.3. लोक व्यय एवं उत्पादन पर इसके विभिन्न प्रभावों का वर्णन कीजिए।
Describe Public Expenditure and its different effects on production.

उत्तर लोक व्यय के प्रभावों का अध्ययन निम्न शीर्षकों के अन्तर्गत किया जा सकता है—(I) उत्पादन पर प्रभाव, (II) वितरण पर प्रभाव, तथा (III) अन्य प्रभाव।

लोक व्यय एवं उत्पादन
(Public Expenditure and Production)

किसी भी देश में वस्तुओं के उत्पादन की प्रकृति एवं मात्रा पर लोक व्ययों का महत्त्वपूर्ण प्रभाव पड़ता है। इन प्रभावों को दो भागों में विभाजित किया जा सकता है—(I) उत्पादन पर प्रत्यक्ष प्रभाव, तथा (II) उत्पादन पर अप्रत्यक्ष प्रभाव।

1. लोक व्यय का उत्पादन पर प्रत्यक्ष प्रभाव
(Directs Effects of Public Expenditure on Production)

सरकार निम्न रीतियों से लोक व्यय द्वारा उत्पादन को प्रत्यक्ष रूप से प्रभावित कर सकती है—

1. **प्रत्यक्ष रूप से उद्योगों की स्थापना करके**—आज प्राय: सभी देशों में किसी-न-किसी आधार पर सरकार स्वयं कुछ उद्योगों की स्थापना का उत्तरदायित्व लेती है और इस प्रकार वह उन उद्योगों की स्थापना पर व्यय करके उत्पादन में वृद्धि कर सकती है।
2. **अनुदान एवं आर्थिक सहायता**—सरकार उद्योगों को अनुदान एवं आर्थिक सहायता देकर भी उत्पादन वृद्धि में प्रत्यक्ष योगदान दे सकती है। इस प्रकार की सहायता प्राय: नवीन उद्योगों, हानि पर चलने वाले उद्योगों या विदेशी प्रतिस्पर्द्धा से कुप्रभावित उद्योगों को प्रदान की जाती है।
3. **प्रभावशाली माँग** (Effective Demand) **में वृद्धि करके**—सरकार अपने व्ययों को इस प्रकार कर सकती है, जिससे देश में प्रभावशाली माँग में वृद्धि हो सके और यह वृद्धि उत्पादन में वृद्धि को प्रेरित कर सके।
4. **औद्योगिक अनुसन्धान**—सरकार औद्योगिक अनुसन्धानों पर व्यय करके भी उत्पादन वृद्धि में सहयोग दे सकती है। औद्योगिक अनुसन्धान से ऐसे उपाय विकसित किये जा सकते हैं, जिससे उत्पादन में नवीन तकनीकों का प्रयोग करके उत्पादन और उत्पादकता में वृद्धि की जा सके।

2. लोक व्यय का उत्पादन पर अप्रत्यक्ष प्रभाव
(Indirect Effects of Public Expenditure on Production)

लोक व्यय अप्रत्यक्ष रूप से भी उत्पादन वृद्धि में सहायक हो सकता है। इस दृष्टि से **डाल्टन** ने लोक व्ययों के प्रभावों का अध्ययन निम्न तीन शीर्षकों के अन्तर्गत किया है—

1. **कुशलता प्रभाव या कार्य करने तथा बचत और विनियोग करने की क्षमता** (Ability) **पर प्रभाव** (Efficiency Effect)—लोक व्यय कार्य करने तथा बचत और विनियोग करने की क्षमता को निम्न प्रकार से प्रभावित कर सकता है—
   (अ) **क्रय शक्ति** (Purchasing Power) **में वृद्धि**—लोक व्यय में नागरिकों की क्रय शक्ति में वृद्धि होती है। सरकार वेतन, मजदूरी, भत्ते, पेन्शन का भुगतान तथा वस्तुएँ और सेवाएँ खरीदकर जनता को क्रय शक्ति प्रदान करती है और उसमें वृद्धि करती है। इससे जनता को अधिक वस्तुएँ खरीदने और फलस्वरूप जीवन स्तर को

TOUCH 'n PASS

ऊँचा उठाने में सहायता मिलती है। जीवन स्तर ऊँचा होने से कार्य-कुशलता बढ़ती है और यह वृद्धि में सहायक होती है। यह तथ्य निर्धन व्यक्तियों की दशा में अधिक सत्य रह सकता है।

इस प्रभाव के सन्दर्भ में एक आलोचना भी की जाती है कि यदि निर्धन वर्ग की क्रय शक्ति में वृद्धि होती है, तो यह वर्ग अपनी अशिक्षा, अज्ञानता और दृष्टिकोण के कारण या तो कुछ समय के लिए काम करना स्थगित कर सकता है या शराब, जुआ इत्यादि में बर्बाद कर सकता है। यह आलोचना कुछ सीमा तक सही भी हो सकती है, लेकिन इस सन्दर्भ में निम्न दो बातों पर ध्यान दिया जा सकता है—(i) क्रय शक्ति में वृद्धि एक साथ या आकस्मिक रूप से न होकर धीरे-धीरे की जाए तथा (ii) यदि सम्भव हो तो क्रय शक्ति में वृद्धि नकदी में प्रदान करके वस्तुओं के रूप में प्रदान की जाए।

(ब) **वस्तुओं एवं सेवाओं की व्यवस्था**—लोक व्यय के माध्यम से सरकार जनता को नि:शुल्क या रियायती मूल्य पर वस्तुओं और सेवाओं को प्रदान करके भी उनकी कार्य करने की कुशलता और योग्यता में वृद्धि कर सकती है। इन वस्तुओं में उपभोग की आधारभूत वस्तुएँ; जैसे—मकान, खाद्यान्न, ईंधन इत्यादि तथा सेवाओं में शिक्षा और स्वास्थ्य पर किया गया व्यय महत्त्वपूर्ण रहता है।

(स) **उत्पादन वृद्धि में सहायक सुविधाएँ विकसित करना**—लोक व्यय से सरकार ऐसी सुविधाओं को विकसित कर सकती है, जो उत्पादन कार्य को उचित प्रकार से चलाने में सहायक होती है। इनमें रेल, सड़क, सिंचाई तथा शक्ति की सुविधाएँ उल्लेखनीय हैं।

(द) **बचत करने की शक्ति में वृद्धि**—लोक व्यय से जनता की आय में वृद्धि होती है। इससे बचत करने का सीमान्तर (margin) बढ़ जाता है और जनता की बचत करने की शक्ति में वृद्धि हो जाती है। इस शक्ति का उचित प्रयोग इस बात पर निर्भर करता है कि बचत को एकत्रित करने तथा इन्हें लाभदायक एवं उत्पादक कार्यों में विनियोग करने की कितनी सुविधाएँ उपलब्ध हैं।

2. **प्रेरणात्मक प्रभाव या कार्य करने, बचत करने तथा विनियोग करने की इच्छा** (Desire) **पर प्रभाव** (Incentive Effect)—किसी देश का उत्पादन केवल कार्य करने, बचत करने तथा विनियोग करने की शक्ति से नहीं वरन् इसके लिए जनता की इच्छा से भी प्रभावित होता है। लोक व्यय का जनता की कार्य करने, बचत करने तथा विनियोग करने की इच्छा पर क्या प्रभाव पड़ेगा, इसका मूल्यांकन करना कठिन होता है, क्योंकि यह एक मनोवैज्ञानिक प्रश्न है, लेकिन फिर भी इसका सामान्य अध्ययन निम्न दो शीर्षकों के अन्तर्गत किया जा सकता है—

(अ) **वर्तमान व्ययों का प्रभाव**—सामान्यत: सरकार के व्ययों में वृद्धि होने से जनता की क्रय शक्ति में वृद्धि होती है। इससे यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि कार्य करने की इच्छा कम हो सकती है, क्योंकि वे यह अनुभव कर सकते हैं कि बढ़ी हुई क्रय शक्ति से वे अपना सामान्य जीवन-स्तर निर्वाह कर सकते हैं, लेकिन स्वभाव से मनुष्य महत्त्वाकांक्षी होता है और निरन्तर वह अपने जीवन-स्तर तथा सम्पत्ति में वृद्धि करना चाहता है। इस दृष्टि से लोक व्ययों का जनता के कार्य करने इत्यादि की इच्छा पर विपरीत प्रभाव नहीं पड़ना चाहिए। इसके अतिरिक्त लोक व्यय से देश में कार्य करने की अधिक अनुकूल सुविधाएँ प्राप्त होती हैं तथा जन सामान्य के शिक्षा और स्वास्थ्य स्तर में सुधार होता है, जिनका कार्य करने इत्यादि की इच्छाओं पर अच्छा प्रभाव पड़ना चाहिए।

(ब) **सम्भावित व्ययों पर प्रभाव**—यदि व्यक्तियों को यह विश्वास हो जाए कि भविष्य में वृद्धावस्था, किसी दुर्घटना या अन्य किसी संकट के समय सरकार उन्हें वित्तीय सहायता प्रदान करेगी, तो सामान्यत: उनमें बचत करने की इच्छा कम होने का अनुमान लगाया जा सकता है लेकिन व्यवहार में प्रत्येक व्यक्ति अपनी सम्पत्ति में वृद्धि की इच्छा रखता है और इस दृष्टि से सरकार से सम्भावित लाभों के आधार पर भी उसकी बचत या कार्य करने की इच्छा में कमी नहीं होगी। यदि कुछ सीमा तक ऐसी सम्भावना पाये जाने की सम्भावना रहे, तो भावी लाभों को लाभ प्राप्त करने वाले व्यक्तियों के वर्तमान अंशदान से सम्बन्धित किया जा सकता है, जैसा कि प्रॉविडेण्ट फण्ड इत्यादि में होता है।

3. **बण्टन प्रभाव या आर्थिक साधनों के पुनर्वितरण** (Re-allocation) **पर प्रभाव** (Allocative Effect)—लोक व्यय से आर्थिक साधनों का पुनर्वितरण होता है, जिसका उत्पादन पर प्रभाव पड़ता है। यदि यह पुनर्वितरण (सरल शब्दों

TOUCH 'n' PASS

में स्थानान्तरण) उचित दिशा में है, तो उत्पादन पर अनुकूल प्रभाव डालता है और यदि यह गलत दिशा में है, तो उत्पादन पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। लोक व्यय के फलस्वरूप आर्थिक साधनों का पुनर्वितरण निम्न प्रकार से हो सकता है—

(अ) **प्रत्यक्ष पुनर्वितरण** (Direct Re-allocation)—आर्थिक साधनों का प्रत्यक्ष पुनर्वितरण चार प्रकार से हो सकता है—

(i) **सुरक्षा कार्यों एवं उत्पादकों की ओर**—प्रत्येक देश अपनी सुरक्षा के लिए अपने आर्थिक साधनों का एक भाग सुरक्षा से सम्बन्धित व्यवस्था और साज-सामान पर व्यय करता है। प्रत्यक्ष रूप से इस व्यय से सामान्य उत्पादन में वृद्धि नहीं होती, लेकिन अप्रत्यक्ष रूप से सुरक्षा की उचित व्यवस्था रहने से देश की अर्थव्यवस्था के फलने-फूलने का अवसर प्राप्त होता है।

(ii) **नागरिक व्यय**—नागरिक व्यय में आन्तरिक शान्ति, न्याय एवं प्रशासन पर किया गया व्यय शामिल है। यद्यपि प्रत्यक्ष रूप से यह व्यय भी उत्पादन वृद्धि नहीं करता, लेकिन अप्रत्यक्ष रूप से यह व्यय उत्पादन व्यवस्था को समुचित रूप से चलने की दृष्टि से लाभकारी प्रभाव डालता है।

(iii) **सामाजिक कल्याण सेवाओं पर व्यय**—इस व्यय में श्रम कल्याण, सामाजिक सुरक्षा, स्वास्थ्य, शिक्षा इत्यादि शामिल हैं। इस व्यय से लोगों की कार्यक्षमता पर अच्छा प्रभाव पड़ता है और उत्पादन में वृद्धि होती है।

(iv) **उत्पादन कार्यों के लिए प्रत्यक्ष सहायता**—सरकार स्वयं उद्योगों की स्थापना करके या कुछ विशिष्ट उद्योगों को अनुदान या सहायता देकर भी आर्थिक साधनों का पुनर्वितरण करती है। इस पुनर्वितरण का उत्पादन पर सामान्यत: अच्छा प्रभाव ही पड़ता है।

(ब) **प्रेरित पुनर्वितरण** (Induced Re-allocation)—इसमें आर्थिक साधनों का पुनर्वितरण सरकार स्वयं नहीं करती, लेकिन वह अपने व्यय इस प्रकार करती है कि आर्थिक साधन उत्पादक कार्यों या लाभदायक कार्यों की ओर हस्तान्तरित होने लगते हैं। इस दृष्टि से रेल-सड़क यातायात का विकास, शक्ति संसाधनों का विकास, उत्पादन में सम्बन्धित तकनीकी एवं अन्य सूचनाओं का एकत्रण तथा वितरण, गुण चिह्नांकन योजना, कुछ आवश्यक वस्तुओं को निर्मित करने वाले उद्योगों को प्रेरणा प्रदान करने पर किया गया व्यय उल्लेखनीय है।

(स) **एक स्थान से दूसरे स्थान को पुनर्वितरण** (Regional Re-allocation)—लोक व्यय के माध्यम से अविकसित एवं पिछड़े क्षेत्रों का विकास करके एवं वहाँ पर उत्पादन कार्यों के लिए प्रेरणा प्रदान करके आर्थिक साधनों का स्थानीय स्थानान्तरण किया जा सकता है। इससे देश में उत्पादन पर अनुकूल प्रभाव पड़ता है।

प्र.4. लोक व्यय एवं वितरण तथा लोक व्यय और आर्थिक विकास की विवेचना कीजिए।
Explain Public Expenditure and distribution and economic development.

उत्तर

लोक व्यय एवं वितरण
(Public Expenditure and Distribution)

लोक व्यय का समाज में सम्पत्ति और आय के वितरण पर महत्त्वपूर्ण प्रभाव पड़ता है। वितरण पर लोक व्यय के प्रभावों की दृष्टि से लोक व्ययों को तीन भागों में बाँटा जाता है—प्रगतिशील (Progressive), प्रतिगामी (Regressive) और आनुपातिक (Proportional)। 1. प्रगतिशील व्यय वे हैं, जिनका अधिकांश लाभ निर्धन वर्ग को मिलता है, (2) प्रतिगामी व्यय वे हैं जिनका अधिकांश लाभ धनी वर्ग को मिलता है और 3. आनुपातिक व्यय वे हैं, जिनका लाभ धनी एवं निर्धन वर्ग को उनकी स्थिति के अनुपात में मिलता है। **प्रो० डाल्टन** के शब्दों में, "लोक व्यय की वह व्यवस्था सर्वोत्तम है, जो कि आय की असमानता को दूर करने में अत्यन्त शक्तिशाली प्रवृत्ति रखती है।"

लोक व्यय द्वारा आय एवं सम्पत्ति के वितरण में असमानताओं को कम करने के लिए निम्नलिखित उपाय अपनाये जा सकते हैं—

1. **निर्धन वर्ग के लिए नि:शुल्क व्यवस्था**—सार्वजनिक व्यय की नीति में यह व्यवस्था की जानी चाहिए कि निर्धन वर्ग के लिए शिक्षा, चिकित्सा एवं बच्चों के लिए पौष्टिक भोजन की नि:शुल्क व्यवस्था होनी चाहिए। इस व्यवस्था को "नि:शुल्क अनुदान" (Free Grants) कहा जाता है।
2. **उपादान** (Subsidies)—सरकार उत्पादकों और वितरकों को उपादान प्रदान करके यह व्यवस्था कर सकती है कि निर्धन और मध्यम वर्ग के लोगों के लिए खाद्यान्न, वस्त्र एवं मकानों को उचित रियायती दरों पर उपलब्ध कराया जाए।

3. **नकद अनुदान** (Cash Grants)—कुछ विशिष्ट वर्गों को दिये जाने वाले नकद अनुदान धन की वितरण व्यवस्था को सन्तुलित बनाने में योगदान देते हैं। इनमें वृद्धावस्था के लिए पेन्शन, बीमारी भत्ता, बेरोजगारी भत्ता, मातृत्त्व भत्ता, विधवाओं के लिए पेन्शन, अपंगों के लिए सहायता इत्यादि का उल्लेख किया जा सकता है।
4. **पिछड़े क्षेत्रों पर अधिक व्यय**—देश में धन के वितरण की असमानता को कम करने के लिए यह भी आवश्यक है कि सरकार द्वारा अविकसित एवं पिछड़े क्षेत्रों के विकास पर पर्याप्त ध्यान देना चाहिए। इससे वहाँ के लोगों के जीवन-स्तर में सुधार होता है और आर्थिक क्रियाओं में वृद्धि को प्रोत्साहन मिलता है।
5. **लघु एवं कुटीर उद्योगों को प्रोत्साहन**—यदि सरकार विभिन्न वित्तीय सहायता एवं प्रेरणाओं द्वारा लघु और कुटीर उद्योगों को प्रोत्साहित करती है, तो उससे भी सम्पत्ति के वितरण में सुधार होता है।
6. **उचित वेतन, मजदूरी एवं भत्ते**—सरकार को यह देखना चाहिए कि वेतन भोगी वर्ग को उचित वेतन, मजदूरी एवं भत्ते मिलें। इसके लिए सरकार को निश्चित रूप से व्ययों में वृद्धि करनी होगी। दूसरी ओर निजी उपक्रमों में इस प्रभाव से उद्योगपतियों से कर्मचारी वर्ग के आय का उचित प्रवाह होता रहता है।

लोक व्यय और आर्थिक विकास
(Public Expenditure and Economic Development)

वर्तमान समय में, प्रत्येक राष्ट्र विकास कार्यों और योजनाओं में संलग्न है और यह निश्चित है कि विकास कार्यों में लोक व्ययों की अपनी विशिष्ट भूमिका है। आर्थिक विकास पर लोक व्यय के प्रभावों को निम्न शीर्षकों के अन्तर्गत रखा जा सकता है—

1. **देश में उत्पादक क्रियाओं को प्रोत्साहन**—लोक व्यय सामान्यत: लोगों की कार्य, बचत और विनियोग करने की योग्यता तथा इच्छा में वृद्धि करता है। इससे देश में उत्पादन और उत्पादक क्रियाओं में वृद्धि होती है तथा रोजगार बढ़ता है। इन सभी से आर्थिक विकास को गति मिलती है।
2. **आधारभूत आर्थिक ढाँचा**—सरकार लोक व्ययों के द्वारा सड़कों, रेलों, पुलों, संदेशवाहन के साधनों, शक्ति योजनाओं और बाँध परियोजनाओं इत्यादि के निर्माण पर व्यय करके देश में आर्थिक विकास के लिए एक आधारभूत आर्थिक ढाँचा प्रदान करती है। इस प्रकार के ढाँचे से देश में कृषि, उद्योग और व्यापार सभी के विकास में सहायता मिलती है।
3. **भौतिक पूँजी निर्माण**—लोक व्यय सामान्यत: लोगों की कार्य, बचत और विनियोग करने की योग्यता तथा इच्छा को प्रोत्साहित करता है। इससे देश में उत्पादन, रोजगार और आय में वृद्धि होती है। इससे देश में भौतिक पूँजी निर्माण (Physical Capital Formation) को प्रोत्साहन मिलता है, जो आर्थिक विकास के लिए गतिप्रेरक का कार्य करता है।
4. **उत्पादक क्रियाओं को सहायता एवं स्वयं प्रारम्भ करना**—लोक व्यय के माध्यम से आर्थिक सहायता (Subsidies) प्रदान करके देश में उत्पादक साधनों को कम उपयोगी प्रयोगों से आर्थिक विकास की दृष्टि से अधिक उपयोगी प्रयोगों में हस्तान्तरित किया जा सकता है। आर्थिक सहायता की व्यवस्था से सरकार देश के पिछड़े और अविकसित क्षेत्रों में विनियोग को प्रोत्साहित कर सकती है, निर्यात प्रोत्साहन और आयात-प्रतिस्थापन की योजनाएँ बना सकती है, कृषि एवं उद्योग के क्षेत्र में उत्पादन वृद्धि के लिए विभिन्न प्रकार की प्रेरणाएँ दे सकती है तथा देश में बैंकों और वित्तीय संस्थाओं की स्थापना में सहयोग दे सकती है।
   यह उल्लेखनीय है कि अधिक पूँजी विनियोग लेकिन कम आय प्रदान करने वाले उद्योगों में निजी क्षेत्र की रुचि नहीं होती, जबकि ऐसे आधारभूत और पूँजीगत उद्योग देश के आर्थिक विकास के लिए अत्यन्त आवश्यक होते हैं। सरकार स्वयं इन उद्योगों की स्थापना करके आर्थिक विकास का आधार तैयार कर सकती है। इन उद्योगों में लोहे एवं इस्पात, भारी रसायन, भारी इन्जीनियरिंग इत्यादि का उल्लेख किया जा सकता है।
5. **मानवीय पूँजी निर्माण**—आर्थिक विकास में मानवीय पूँजी निर्माण की भी विशिष्ट भूमिका होती है। लोक व्ययों के द्वारा देश में शिक्षा, स्वास्थ्य, प्रशिक्षण, तकनीकी विकास इत्यादि को प्रोत्साहित करके मानवीय पूँजी निर्माण में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया जा सकता है।
6. **आर्थिक स्थायित्व**—आर्थिक विकास की सतत् गति बनाये रखने के लिए यह भी आवश्यक होता है कि देश में तेजी और मन्दी की तीव्र चक्रों को नियन्त्रित करते हुए आर्थिक स्थायित्व बनाये रखा जाए। लोक व्ययों के द्वारा मन्दी के समय सार्वजनिक निर्माण योजनाओं के संचालन, बेरोजगारी भत्ता तथा राहत कार्यों पर व्यय करके तथा तेजी के समय उत्पादन को प्रोत्साहन देने वाली योजनाओं पर व्यय करके आर्थिक स्थायित्व बनाये रखने में सहायता मिलती है।

TOUCH 'n PASS

7. **निजी क्षेत्र को सहायता**—अर्द्धविकसित देशों के आर्थिक विकास की दृष्टि से यह उल्लेखनीय है कि प्रत्यक्ष सार्वजनिक व्यय से ही सम्पूर्ण आर्थिक विकास नहीं किया जा सकता। इसके लिए निजी क्षेत्र को भी साथ लेकर चलना होता है। अत: लोक व्यय द्वारा निजी क्षेत्र को भी प्रोत्साहित करना चाहिए। इस दृष्टि से निम्न कार्य किये जा सकते हैं—
   (अ) निजी क्षेत्रों में उनकी आवश्यकतानुसार ऋण और आर्थिक सहायता प्रदान करना,
   (ब) निजी उद्योगों की वित्तीय कठिनाइयों को दूर करने के लिए कम ब्याज पर ऋण उपलब्ध कराना तथा व्यापारिक कार्यों के लिए वित्तीय संस्थाओं की स्थापना करना तथा उन्हें सहायता देना,
   (स) उद्योगों की स्थापना के लिए उत्पादन या अनुदान (subsidies or grants) प्रदान करना,
   (द) निजी क्षेत्र को बाजार सम्बन्धी सूचनाओं के एकत्रण, उत्पादन सम्बन्धी अनुसन्धान तथा निर्यात में प्रतियोगिता का सामना करने के लिए आर्थिक सहायता प्रदान करना।

स्पष्ट है कि लोक व्यय आर्थिक विकास में एक महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है, लेकिन केवल लोक व्यय ही किसी देश के सम्पूर्ण आर्थिक विकास के लिए कार्य नहीं कर सकता है। इसके लिए करारोपण, लोक ऋण, प्रशुल्क तथा मौद्रिक नीतियों के बुद्धिमत्तापूर्ण मिश्रण का सहारा भी आवश्यक है।

बहुविकल्पीय प्रश्न

प्र.1. यह कथन किसका है ''सार्वजनिक व्यय इस ढंग से किया जाना चाहिए कि सीमान्त सामाजिक लाभ प्रत्येक दिशा में समान हो।''
(a) नक्र्से का (b) रिजले का (c) डाल्टन का (d) पीगू का

उत्तर (c) डाल्टन का

प्र.2. निम्न में कौन-सा लोक व्यय है—
(a) आर्थिक विकास पर व्यय (b) आवश्यकताओं की सन्तुष्टि पर व्यय
(c) दूसरे देशों की सहायता पर व्यय (d) ये सभी

उत्तर (d) ये सभी

प्र.3. निम्न में से किसमें लोक व्ययों का महत्त्व नहीं है—
(a) आन्तरिक शान्ति (b) विदेशी आक्रमण से सुरक्षा
(c) भ्रष्टाचार उन्मूलन (d) इनमें से कोई नहीं

उत्तर (c) भ्रष्टाचार उन्मूलन

प्र.4. जब अर्थव्यवस्था में परिपक्वता की अवस्था आ जाती है तब सार्वजनिक व्यय किस कार्यक्रम पर अधिकाधिक होता है—
(a) शिक्षा पर (b) स्वास्थ्य पर
(c) जनकल्याणकारी कार्यक्रमों पर (d) ये सभी

उत्तर (d) ये सभी

प्र.5. किसने मत व्यक्त किया–आर्थिक विकास के प्रारम्भिक चरण में पूँजीगत वस्तुओं के निर्माण पर सार्वजनिक व्यय का अधिकांश भाग व्यय किया जाता है?
(a) डाल्टन (b) नक्र्से (c) रोस्टोव (d) मसग्रेव

उत्तर (d) मसग्रेव

प्र.6. सार्वजनिक व्यय की सीमा को निर्धारित करने में कौन-सा कारक प्रभावी नहीं है—
(a) जनता की करदान क्षमता (b) जनता की नैतिक क्षमता
(c) देश के आर्थिक विकास की अवस्था (d) देश का पड़ोसी देशों से सम्बन्ध

उत्तर (b) जनता की नैतिक क्षमता

TOUCH 'n PASS

प्र.7. लोक वित्त निम्न में से किस प्रकार रोजगार स्तर बढ़ा सकते हैं—

(a) उत्पादक क्रियाओं के प्रोत्साहन से (b) सार्वजनिक निर्माण कार्यों के प्रोत्साहन से
(c) सरकार स्वयं कुछ उद्योगों का संचालन करे (d) ये सभी

उत्तर (d) ये सभी

प्र.8. अधिकतम लाभ के सिद्धान्त के अन्तर्गत आता है—

(a) उत्पादन में वृद्धि हो
(b) समाज विदेशी आक्रमण और आन्तरिक अव्यवस्था से सुरक्षित रहे
(c) आय की असमानताएँ कम हो जाएँ
(d) उपरोक्त सभी

उत्तर (d) उपरोक्त सभी

प्र.9. मितव्ययिता के सिद्धान्त के अन्तर्गत कौन शामिल नहीं है?

(a) आवश्यकता से अधिक व्यय नहीं
(b) मूल्यों में विश्वास
(c) उत्पादन शक्ति का विकास
(d) व्ययों के अन्तिम प्रभावों और परिणामों पर भी ध्यन देना चाहिए

उत्तर (b) मूल्यों में विश्वास

प्र.10. लोक व्यय की संरचना इस प्रकार होनी चाहिए कि उसमें आवश्यकता और परिस्थितियों के अनुसार कमी या वृद्धि की जा सके—

(a) बचत का सिद्धान्त (b) अनुमोदन का सिद्धान्त
(c) लोच का सिद्धान्त (d) उत्पादकता का सिद्धान्त

उत्तर (c) लोच का सिद्धान्त

प्र.11. समान वितरण हेतु कौन-सा नहीं है—

(a) आय और वितरण समानता की ओर बढ़े (b) निर्धन को पहुँचाने वाले कार्यों पर अधिक व्यय
(c) पिछड़े और अविकसित क्षेत्रों पर अधिक व्यय (d) घाटे का बजट हो

उत्तर (d) घाटे का बजट हो

प्र.12. किसके अनुसार राज्य की सेवाओं के प्रति माँग लोच एक से अधिक होती है—

(a) वैगनर (b) पीगू (c) फ्रेडरिक एल० प्रियर (d) पीकॉक एवं वाइजमैन

उत्तर (a) वैगनर

प्र.13. यह कथन किसका है ''निजी एजेन्सियों की तुलना में सरकारी संस्थाएँ कुशलता के साथ कार्य कर सकती हैं।''

(a) फ्रेडरिक (b) डाल्टन (c) पीगू (d) मसग्रेव

उत्तर (b) डाल्टन

प्र.14. लोक व्यय को कितने भागों में बाँटा जाता है?

(a) 2 (b) 3 (c) 4 (d) 5

उत्तर (b) 3

प्र.15. नकद अनुदान के अन्तर्गत कौन-सा नहीं आता—

(a) नैतिकता के नियम (b) वृद्धावस्था पेन्शन
(c) बीमारी भत्ता (d) अपंगों के लिए सहायता

उत्तर (a) नैतिकता के नियम

TOUCH 'n PASS

प्र.16. सरकार निर्धन और मध्यम वर्ग के लोगों के लिए खाद्यान्न, वस्त्र एवं मकानों को उचित रियायती दरों पर उपलब्ध कराये, किसके अन्तर्गत आयेगा?

(a) नकद अनुदान (b) उपादान (c) नि:शुल्क व्यवस्था (d) इनमें से कोई नहीं

उत्तर (b) उपादान

प्र.17. लोक व्यय से क्रय शक्ति निम्न में से किससे बढ़ती है?

(a) मजदूरी (b) पेशा (c) वेतन (d) ये सभी

उत्तर (d) ये सभी

प्र.18. Fiscal System पुस्तक के लेखक कौन हैं?

(a) पीगू (b) जे०एम० बुकानन (c) मसग्रेव (d) डाल्टन

उत्तर (c) मसग्रेव

प्र.19. डाल्टन के अनुसार वैगनर का नियम लागू होने का कौन-सा कारण है—

(a) अधिक कुशलता (b) सामूहिक उपयोग
(c) निजी संस्थाओं की असमर्थता (d) ये सभी

उत्तर (d) ये सभी

प्र.20. किसका मत है कि युद्ध आदि आपातकालीन परिस्थितियों में ही करारोपण व सार्वजनिक व्यय उच्च-स्तर प्राप्त कर सकते हैं जो स्थिति सामान्य होने पर भी उच्च स्तर पर बने रहते हैं।

(a) मसग्रेव (b) पीगू (c) पीकॉक एवं वाइजमैन (d) जे०एम० बुकानन

उत्तर (c) पीकॉक वाइजमैन

प्र.21. किसका कथन है कि सार्वजनिक व्यय में वृद्धि के लिए सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण अकेला तत्त्व यदि कोई है, तो वह युद्ध की आशंका है—

(a) फ्रेडरिक एल० प्रायर (b) डाल्टन (c) मसग्रेव (d) जे०एम० बुकानन

उत्तर (d) जे०एम० बुकानन

प्र.22. यह मत किसका है कि आर्थिक विकास के साथ-साथ समाज में जटिलता तथा विषमता की वृद्धि होती है—

(a) मसग्रेव (b) फ्रेडरिक एल० प्रियर (c) वैगनर (d) एलिसन मार्टिन

उत्तर (c) वैगनर

प्र.23. यह कथन किसका है "जैसे-जैसे आर्थिक विकास होता जाता है, सार्वजनिक क्षेत्र का महत्त्व निजी क्षेत्र की अपेक्षा बढ़ता जाता है—

(a) वैनगर (b) पीकॉक एवं वाइजमैन (c) मसग्रेव (d) पीगू

उत्तर (a) वैनगर

प्र.24. वे व्यय कौन-से हैं जिनका अधिकांश लाभ निर्धन वर्ग को मिलता है?

(a) आनुपातिक व्यय (b) प्रतिगामी व्यय (c) प्रगतिशील व्यय (d) इनमें से कोई नहीं

उत्तर (c) प्रगतिशील व्यय

प्र.25. वे व्यय कौन-से हैं जिनका लाभ धनी एवं निर्धन वर्ग को उनकी स्थिति के अनुपात में मिलता है—

(a) प्रतिगामी कर (b) आनुपातिक कर (c) प्रगतिशील कर (d) इनमें से कोई नहीं

उत्तर (b) आनुपातिक कर

TOUCH 'n' PASS

UNIT-VII

कराधान
Taxation

खण्ड-अ अतिलघु उत्तरीय प्रश्न

प्र.1. सार्वजनिक अथवा लोक आगम से क्या आशय है?
What is the meaning of Public Revenue?

उत्तर 'लोक आगम' शब्द का प्रयोग संकुचित और विस्तृत दोनों अर्थों में किया जा सकता है—
विस्तृत अर्थ में, लोक आगम के अन्तर्गत सभी प्राप्तियों (receipts) को शामिल किया जाता है। इस अर्थ में लोक ऋणों के रूप में प्राप्त धन तथा उपहार या क्षतिपूर्ति के रूप में प्राप्त राशि इत्यादि को भी लोक आगम में सम्मिलित किया जाएगा। इसके विपरीत, लोक आगम के संकुचित अर्थ में, केवल वे प्राप्तियाँ शामिल की जाती हैं जोकि सामान्य रूप से 'आगम' (revenue) के अन्तर्गत आती हैं।
सरल शब्दों में, लोक आगम से आशय सरकार की उन सभी प्राप्तियों से है, जिनसे सरकार के दायित्वों (liabilities) में कोई वृद्धि नहीं होती, अर्थात् जिन प्राप्तियों को सरकार द्वारा भविष्य में लौटाना नहीं होता।

प्र.2. कर और कीमत में अन्तर बताइए।
Give the differences between tax and price.

उत्तर कर तथा कीमत के मध्य निम्न आधारों पर अन्तर किया जाता है—

1. **अनिवार्यता**—कर एक अनिवार्य अंशदान है, जिसका भुगतान प्रत्येक ऐसे व्यक्ति को करना पड़ता है, जिस पर यह लगाया जाता है। इसके विपरीत कीमत का भुगतान ऐच्छिक होता है। इसका भुगतान उसी व्यक्ति को करना होता है, जो सरकार द्वारा उत्पन्न वस्तुओं या सम्पादित की जाने वाली सेवाओं का उपयोग करना चाहता है।
2. **प्रत्यक्ष लाभ**—कर के बदले करदाता को प्रत्यक्ष रूप से कोई वस्तु या सेवा प्राप्त नहीं होती, जबकि कीमत का भुगतान करने पर उसके बदले प्रत्यक्ष रूप से वस्तु या सेवा की प्राप्ति होती है।
3. **लाभ और लागत में सम्बन्ध**—कर में कर राशि के भुगतान और करदाता को सरकार से मिलने वाले लाभों के मध्य कोई निश्चित सम्बन्ध नहीं होता, जबकि कीमत के भुगतान और उसके बदले में प्राप्त वस्तु या सेवा की लागत या लाभ के मध्य एक निश्चित सम्बन्ध रहता है।

प्र.3. कर और शुल्क अथवा फीस में अन्तर लिखिए।
Write the differences between tax and duties.

उत्तर कर तथा शुल्क के मध्य निम्न आधारों पर अन्तर किया जाता है—

1. **अनिवार्यता**—कर अनिवार्य है, जबकि शुल्क ऐच्छिक है।
2. **प्रत्यक्ष लाभ या सुविधा**—कर के बदले करदाता को कोई प्रत्यक्ष लाभ प्राप्त नहीं होता, लेकिन शुल्क के बदले सरकार शुल्कदाता को विशेष लाभ, सुविधा का अधिकार प्रदान करती है।
3. **उद्देश्य**—कर की वसूली जन-सामान्य के हित में किये जाने वाले व्ययों की पूर्ति के लिए की जाती है, शुल्क को सिद्धान्त सम्बन्धित सेवा की लागत को पूरा करने के लिए लगाया जाता है।

TOUCH 'n PASS

प्र.4. मसग्रेव ने 'करदेय योग्यता के सिद्धान्त' के बारे में क्या लिखा है?
What has Musgrave written about the Principle of Taxability?

उत्तर मसग्रेव ने लिखा है, "करदेय योग्यता दृष्टिकोण में यह श्रेष्ठता निहित है कि यह कर की अनिवार्य प्रकृति को स्वीकार करता है, लेकिन यह दृष्टिकोण हमें यह नहीं बता पाता कि कर-भार को किस प्रकार वितरित किया जाना चाहिए।

प्र.5. विपणन उधार क्या है?
What is marketing lending?

उत्तर सरकार द्वारा लोक ऋण लेने की एक महत्त्वपूर्ण तकनीकी निश्चित तिथि वाले ऋणी का निर्गमन करना है। इसमें सरकार की निश्चित तिथि या वर्ष में भुगतान होने वाले ऋण-पत्र, बॉण्ड या ऋण का निर्गमन करती है।

प्र.6. विदेशी या बाह्य ऋण में कौन-से स्त्रोतों को शामिल किया गया है?
Which sources are included in External Debt?

उत्तर विदेशी ऋणों में तीन स्त्रोतों को शामिल किया जाता है—

1. विदेशी जनता
2. विदेशी सरकारें
3. विशिष्ट वित्तीय संस्थाएँ

खण्ड-ब लघु उत्तरीय प्रश्न

प्र.1. गैर-कर आगम से आशय तथा महत्त्व बताइए।
Give the meaning and importance of Non-tax Revenue.

उत्तर

गैर-कर आगम
(Non-Tax Revenue)

गैर-कर आगम से आशय तथा महत्त्व (Meaning and Importance of Non-tax Revenue)

गैर-कर आगम से आशय सरकार की उन आयों से है, जो कर के अतिरिक्त सरकार को प्राप्त होती है। प्रारम्भ में आय के इस स्त्रोत का अधिक महत्त्व नहीं था, क्योंकि अर्थव्यवस्था में राजकीय हस्तक्षेप न के बराबर था और सरकार अपनी आय के अधिकांश भाग की पूर्ति करों द्वारा ही कर लेती थी, लेकिन वर्तमान समय में गैर-कर आगम का महत्त्व भी बढ़ता जा रहा है।

गैर-कर आगम के महत्त्व में वृद्धि के कारण

वर्तमान समय में गैर-कर आगम के महत्त्व में वृद्धि होने के मुख्य कारण निम्नलिखित हैं—

1. **सरकार के कार्यों में वृद्धि**—सरकार के कार्यों में निरन्तर वृद्धि हो रही है और इसके लिए व्ययों की पूर्ति केवल कर आगम से होना सम्भव नहीं है, जिससे गैर-कर आगम का महत्त्व बढ़ा है।
2. **आर्थिक नियन्त्रण के उपकरण**—गैर-कर आगम आर्थिक नियन्त्रण की दृष्टि से उपयोगी उपकरण सिद्ध हुए हैं। सरकार अनेक नियमों और नियन्त्रणों को फीस, लाइसेन्स और जुर्माने इत्यादि द्वारा ही लागू करती है।
3. **लोक उद्योगों के क्षेत्र का विस्तार**—वर्तमान समय में प्रत्येक देश में लोक उद्योगों का महत्त्व और क्षेत्र बढ़ रहा है। अब ये उद्योग केवल सुरक्षात्मक और आधारभूत उद्योगों तक ही सीमित नहीं रहे हैं वरन् सामान्य औद्योगिक, वाणिज्यिक और व्यापारिक क्षेत्र में भी कार्य कर रहे हैं। इनके इस प्रकार के कार्य संचालन में गैर-कर आगम में महत्त्वपूर्ण वृद्धि होती है।
4. **करदान क्षमता की सीमा**—करों से आय प्राप्त करने की एक वांछनीय सीमा होती है। यदि इस सीमा से अधिक कर लगाये जाते हैं, तो देश में उत्पादन, रोजगार तथा आर्थिक स्थायित्व पर विपरीत प्रभाव पड़ने की सम्भावना रहती है। ऐसी परिस्थिति में इस सीमा को ध्यान देते हुए सरकार को गैर-कर आगम स्त्रोतों का प्रयोग करना होता है।

प्र.2. गैर-कर आगम का वर्गीकरण दीजिए।
Give the classification of Non-tax Revenue.

उत्तर **गैर-कर आगम का वर्गीकरण** (Classification of Non-tax Revenue)—गैर-कर आगम की विभिन्न मदों को अग्र समूहों के आधार पर वर्गीकृत किया जा सकता है—

TOUCH 'n PASS

1. **लोक उद्योगों एवं लोक सेवाओं से आय** (Revenues from Public Enterprises and Utilities)—इस आय को सरकार की वाणिज्यिक आय भी कहा जाता है। वर्तमान समय में प्राय: प्रत्येक देश में सरकारों द्वारा किसी-न-किसी मात्रा में औद्योगिक, वाणिज्यिक एवं व्यापारिक क्रियाओं का संचालन किया जाता है। इनमें रेल, डाक-तार, विद्युत पूर्ति, परिवहन के अन्य साधन एवं निर्माणी उद्योगों को शामिल किया जाता है और इनसे प्राप्त आय को लोक उद्योगों एवं लोक सेवाओं में रखा जाता है।
2. **प्रशासनिक कार्यों या सेवाओं से आय** (Revenues from Administrative Functions or Services)—इस वर्ग में गैर-कर आगम के मुख्य स्रोत निम्न हैं—(i) फीस, (ii) लाइसेन्स फीस, (iii) विशेष कर-निर्धारण, तथा (iv) अर्थ-दण्ड और जुर्माने।
3. **ब्याज से आय** (Revenues from Interest)—गैर-कर आगम में सरकार को ब्याज से भी आय प्राप्त होती है। ब्याज की प्राप्ति दो प्रकार से हो सकती है। **प्रथम**, सरकार की जो धनराशि विभिन्न बैंकों तथा वित्तीय संस्थाओं के पास जमा होती है, उस पर ब्याज मिलता है। **दूसरे**, सरकार ऋण प्रदान करके उन पर ब्याज प्राप्त कर सकती है।
4. **सार्वजनिक अधिकार क्षेत्र से प्राप्त आय** (Revenues from Public Domain)—इसमें सरकार की निम्न आयों को शामिल किया जाता है—(i) भूमि, खनिज और सम्पत्ति अधिकारों के विक्रय से आय, (ii) भूमि से किराया, तथा (iii) खनिज और सम्पत्ति अधिकारों से प्राप्त अधिकार शुल्क (Royalties)।
5. **स्वामित्व हरण से आय** (Revenues from Expropriation)—इस आय में निजी सम्पत्ति के स्वामित्व हरण से प्राप्त होने वाली आय (Expropriate Revenues) तथा उत्तराधिकारी के अभाव में सम्पत्ति पर कब्जा कर लेने से होने वाली प्राप्तियों को शामिल किया जाता है।
6. **उपहारों और अनुदानों से आय** (Revenues from Gifts and Grants)—अनुदान में वे आय शामिल हैं, जो एक सरकार द्वारा किसी विशिष्ट कार्य को किसी विशिष्ट प्रकार से पूरा करने के लिए वित्तीय सहायता के रूप में दी जाती है। यह सहायता राशि प्राप्त करने वाली सरकार के लिए आय होती है। भारत में राज्य सरकारों को केन्द्रीय सरकार से और स्थानीय सरकारों को राज्य सरकारों से अनुदानों की प्राप्ति होती है।
   उपहारों में व्यक्तियों या संस्थाओं से प्राप्त या ऐच्छिक अंशदानों को शामिल किया जाता है। यह राशि प्राय: युद्ध, प्राकृतिक संकट या विशेष राहत कार्यों के लिए प्राप्त की जाती है। वर्तमान समय में अन्तर्राष्ट्रीय संगठनों एवं विदेशी सरकारों से भी अनुदान तथा उपहारों की प्राप्ति होती है।
7. **अन्य गैर-कर आगम** (Other Non-tax Revenue)—इस आय में लॉटरियों से आय इत्यादि का उल्लेख किया जा सकता है।

प्र.3. कर की विशेषताओं का उल्लेख कीजिए।
Explain the characteristics of tax.

उत्तर

कर की विशेषताएँ
(Characteristics of Tax)

1. **कर एक अनिवार्य भुगतान है**—कर की एक आधारभूत विशेषता यह है कि यह एक अनिवार्य भुगतान है। इसका अर्थ यह है कि यदि किसी व्यक्ति को आय, सम्पत्ति या व्यय पर करों के नियम के अन्तर्गत कर देना है तो वह कर देने से मना नहीं कर सकता। यदि वह कर देने से मना करता है, तो इसके बदले उस पर दण्ड किया जा सकता है। कर के अनिवार्य भुगतान की एक सीमा अवश्य है कि जिस कार्य या वस्तु पर कर लगाया गया है व्यक्ति द्वारा उसी को छोड़ दिया जाए। उदाहरण के लिए, शराब पर कर लगाया जाता है, तो कोई व्यक्ति शराब के उपभोग को छोड़कर शराब पर लगे कर से बच सकता है, लेकिन यदि वह शराब का प्रयोग करता है, तो उसे कर अवश्य देना होगा।
2. **सामान्य हित में किये गये व्ययों की पूर्ति के लिए भुगतान**—सरकार को करों से जो राशि प्राप्त होती है वह जन-सामान्य के हित में किये जाने वाले व्ययों की पूर्ति के लिए प्रयोग की जाती है, अर्थात् करों से प्राप्त राशि ऐसे व्ययों की पूर्ति के लिए प्रयोग की जाती है, जिससे समाज के सभी व्यक्तियों को कुछ-न-कुछ मात्रा में लाभ अवश्य मिलता है।

TOUCH 'n PASS

3. **बदले में प्राप्त लाभ के मध्य विशिष्ट सम्बन्ध नहीं**—कर की एक महत्त्वपूर्ण विशेषता यह भी है कि इसके भुगतान और उस भुगतान के बदले करदाता को मिलने वाले लाभ के मध्य कोई विशिष्ट या आनुपातिक सम्बन्ध नहीं होता। **टॉजिग** (Taussig) ने लिखा है कि "करदाता और सरकार के मध्य प्रत्यक्ष प्रतिफल (quid pro quo) का अभाव ही कर की वास्तविकता है।"
4. **व्यक्तिगत उत्तरदायित्व**—कर एक व्यक्तिगत उत्तरदायित्व है। इसका अर्थ यह है कि कर व्यक्ति, वस्तु, आय या सम्पत्ति किसी पर भी लगाये जा सकते हैं, लेकिन इनका भुगतान व्यक्तियों द्वारा ही किया जाता है।

प्र.4. करारोपण के उद्देश्यों को बताइए।
Give the objectives of taxation.

उत्तर

करारोपण के उद्देश्य
(Objectives of Taxation)

वर्तमान समय में सरकार की आयों में करों का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण स्थान है। प्राचीन काल में कर का एकमात्र उद्देश्य लोक व्ययों की पूर्ति करना था, लेकिन वर्तमान समय में इसका प्रयोग कुछ अन्य उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए भी किया जाता है। **फिलिप टेलर** द्वारा दिये गये करारोपण के मुख्य उद्देश्य निम्न प्रकार हैं—

1. **आय प्राप्त करना** (To Raise Revenue)—करारोपण का एक महत्त्वपूर्ण उद्देश्य आय प्राप्त करना है। यद्यपि वर्तमान समय में करों द्वारा कुछ अन्य उद्देश्यों की भी पूर्ति की जाती है, लेकिन फिर भी आय प्राप्त करने के उद्देश्य को सर्वाधिक प्राथमिकता दी जाती है।
2. **नियमन एवं नियन्त्रण** (Regulation and Control)—करों का दूसरा उद्देश्य नियमन एवं नियन्त्रण है और वर्तमान समय में इस उद्देश्य ने भी एक महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त कर लिया है। **प्रो० टेलर** ने इस उद्देश्य से लगाये गये करों को 'नियामक कर' (Sumpturay Taxation) का नाम दिया है। उन्होंने स्पष्ट किया है कि यद्यपि इस शब्द का आशय निजी व्ययों का नियमन एवं नियन्त्रण करना होता है, लेकिन राजस्व में गैर-आगम उद्देश्य से लगाये गये करों को नियामक कर के नाम से सम्बोधित किया जाता है। इन उद्देश्यों में हानिकारक वस्तुओं के उपभोग पर नियन्त्रण आयात प्रतिबन्ध, निर्यात प्रोत्साहन, किसी विशेष वस्तु या क्षेत्र में उत्पादन का नियमन इत्यादि उद्देश्यों को शामिल किया जा सकता है।
3. **धन के वितरण में असमानताओं को कम करना** (To reduce Inequalities in Income and Wealth)—वर्तमान समय में समाजवादी समाज एवं लोक कल्याणकारी राज्य की स्थापना के उद्देश्यों के सन्दर्भ में करारोपण का उद्देश्य यह भी बन गया है कि इससे देश में आय और सम्पत्ति के वितरण में विद्यमान असमानताओं को कम किया जाए। इस दृष्टि से प्रगतिशील कर पद्धति को अपनाने पर जोर दिया जाता है।
4. **राष्ट्रीय आय को उचित स्तर पर बनाये रखना** (To Maintain an Adequate Level of National Income)—**प्रो० ए० पी० लर्नर** और कुछ अर्थशास्त्रियों ने करारोपण के उद्देश्यों में इस बात पर सर्वाधिक जोर दिया है कि राष्ट्रीय आय का एक उपयुक्त स्तर बनाये रखा जाना चाहिए। उनका कहना है कि "राजस्व को कार्यात्मक वित्त होना चाहिए, जिसमें प्रत्येक अन्य उद्देश्य को राष्ट्रीय आय के एक उपयुक्त स्तर पर बनाये रखने को प्राथमिकता देनी चाहिए।" इस प्रकार की विचारधारा वाले अर्थशास्त्रियों का मत है कि करारोपण किसी भी उद्देश्य से किया जाए, परन्तु इसका परिणाम यही होना चाहिए कि राष्ट्रीय आय का एक पर्याप्त स्तर बना रहे।
5. **पूँजी निर्माण को प्रोत्साहित करना** (Promotion of Capital Formation)—अर्द्ध-विकसित और विकासशील देशों के सन्दर्भ में करारोपण का एक अधिक महत्त्वपूर्ण उद्देश्य बचत को गतिशील बनाना तथा पूँजी निर्माण को प्रोत्साहित करना भी होता है। आर्थिक बचत का आशय चालू आय एवं आवश्यक उपभोग के अन्तर से है। अर्द्ध-विकसित देशों में यह बचत स्वयं आसानी से उत्पादक कार्यों की ओर प्रोत्साहित नहीं हो पाती, लेकिन करारोपण द्वारा यह कार्य सुगमता से किया जा सकता है।

TOUCH 'n PASS

प्र.5. आन्तरिक एवं बाह्य ऋणों के स्त्रोतों का उल्लेख कीजिए।
Mention the sources of Internal and External debt.

उत्तर

आन्तरिक एवं बाह्य ऋणों के स्त्रोत
(Sources of Internal and External Debts)

भारत में सार्वजनिक ऋण को निर्गमन करने या प्राप्त करने की विभिन्न रीतियों को निम्न प्रकार रखा जा सकता है—

(I) आन्तरिक ऋण (Internal Debts)

आन्तरिक ऋण की दृष्टि से सरकार निम्नलिखित तकनीकों और स्त्रोतों से ऋण की प्राप्ति करती है—

1. **विपणन उधार** (Market Borrowing)—सरकार द्वारा लोक ऋण लेने की एक महत्त्वपूर्ण तकनीकी निश्चित तिथि वाले ऋणों (Dated Loans) का निर्गमन करना है। इसमें सरकार की निश्चित तिथि या वर्ष में भुगतान होने वाले ऋण-पत्र, बॉण्ड या ऋण (Debenture, Bond or Loan) का निर्गमन करती है। इन पर ब्याज की दर भी निश्चित रहती है। यह ऋण सामान्य रूप से विक्रय के लिए होते हैं और जन-सामान्य द्वारा खरीदे जाते हैं, लेकिन इनका अधिकांश भाग व्यापारिक बैंकों, बीमा कम्पनियों और गैर-बैंकिंग वित्तीय संस्थाओं द्वारा क्रय किया जाता है।
2. **लघु बचतें** (Small Savings)—सरकार जन-सामान्य से ऋण प्राप्त करने की दृष्टि से लघु बचत तकनीक का प्रयोग करती है। इसके लिए विभिन्न प्रकार के ऋण प्रमाण-पत्रों (Debt Certificates) का निर्गमन किया जाता है। इस प्रकार के ऋण को प्राप्त करने के लिए सरकार आय-कर में भी छूट प्रदान करती है और कभी-कभी इन बचतों में राशि लगाना अनिवार्य भी कर दिया जाता है।
3. **अकोषित ऋण** (Unfunded Debt)—सरकार प्रॉविडेण्ट फण्ड, अनिवार्य बचत योजनाएँ, एन्यूटी जमा इत्यादि के आधार पर भी अकोषित ऋण प्राप्त कर लेती है।
4. **ट्रेजरी बिलों का निर्गमन** (Treasury Bills)—सरकार के हाथ में ऋण प्राप्त करने का एक विशिष्ट साधन ट्रेजरी बिल होते हैं। इनमें से अधिकांश ट्रेजरी बिलों का प्रयोग रिजर्व बैंक से ऋण प्राप्त करने में किया जाता है।

लोक ऋण प्रवर्तन की उपर्युक्त तकनीकों के अतिरिक्त राज्य सरकारों द्वारा निम्न स्त्रोतों का भी प्रयोग किया जाता है—

1. **केन्द्रीय सरकार के ऋण और अग्रिम** (Loans and Advances from the Central Government)—राज्य सरकारों के ऋणों का एक बड़ा भाग केन्द्रीय सरकार से ऋण और अग्रिम के रूप में प्राप्त किया जाता है। ये ऋण और अग्रिम नियोजन और गैर-नियोजन (Plan and Non-plan) दोनों उद्देश्यों से लिए जाते हैं।
2. **बैंकों और अन्य संस्थाओं से ऋण** (Loans from Banks and other Institutions)—राज्य सरकारें बैंकों और अन्य संस्थाओं से भी ऋण और अग्रिम प्राप्त करती हैं। इनमें व्यापारिक बैंक, राष्ट्रीय कृषि साख (दीर्घकालीन क्रियान्वयन) कोष, राष्ट्रीय सहकारी विकास निगम और जीवन बीमा निगम का नाम उल्लेखनीय है।
3. **रिजर्व बैंक से ऋण और अधिविकर्ष** (Loans and Overdrafts from the Reserve Bank)—राज्य सरकारें रिजर्व बैंक से "Ways and Means advances from the Reserve Bank of India" योजना के अन्तर्गत ऋण और अधिविकर्ष भी प्राप्त करती हैं।

(II) विदेशी या बाह्य ऋण (External Debts)

विदेशी ऋणों में तीन स्त्रोतों को शामिल किया जाता है—1. विदेशी जनता, 2. विदेशी सरकारें एवं 3. विशिष्ट वित्तीय संस्थाएँ। विदेशी जनता से ऋण प्राप्ति लगभग नगण्य रहती है, लेकिन विदेशी सरकारों तथा विशिष्ट वित्तीय संस्थाओं से पर्याप्त मात्रा में ऋण प्राप्त किया जाता है। विशिष्ट वित्तीय संस्थाओं में अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष (I.M.F.), विश्व बैंक (IBRD), अन्तर्राष्ट्रीय विकास परिषद् (I.D.A.) तथा एशियन विकास बैंक (A.D.B.) का उल्लेख किया जा सकता है।

TOUCH n PASS

खण्ड-स विस्तृत उत्तरीय प्रश्न

प्र.1. लोक आगम के विभिन्न स्रोतों का वर्णन कीजिए।
Describe the different sources of Public Revenue.

उत्तर

लोक आगम के विभिन्न स्रोत
(Sources of Public Revenue)

टेलर द्वारा किये गये लोक आगम के वर्गीकरण के आधार पर लोक आगम के प्रमुख स्रोत निम्न प्रकार हैं—(I) कर, (II) वाणिज्यिक आय, (III) प्रशासनिक आय, तथा (IV) उपहार और अनुदान।

1. कर (Taxes)

वर्तमान समय में लोक आगम का प्रमुख स्रोत कर है। इसको परिभाषित करते हुए **प्लेहन** (Plehn) ने लिखा है, "कर सामान्य धन (wealth) के रूप में दिया गया वह अनिवार्य अंशदान है, जो राज्य के निवासियों को सामान्य लाभ पहुँचाने के लिए किये गये व्ययों को पूरा करने के लिए प्राकृतिक अथवा समामेलित व्यक्तियों से लिया जाता है।" **सैलिगमैन** के अनुसार, "कर एक व्यक्ति का उन व्ययों को पूरा करने के लिए सरकार को एक अनिवार्य अंशदान है, जो सामान्य हित में किये जाते हैं तथा जिनका सम्बन्ध कोई विशेष लाभ प्राप्त करने से नहीं होता।" **डाल्टन** के शब्दों में, "कर एक अनिवार्य अंशदान है, जो किसी सरकार द्वारा लगाया जाता है और जिसका करदाता को बदले में प्राप्त होने वाली सेवाओं की मात्रा से कोई सम्बन्ध नहीं होता।" **फिलिप ई० टेलर** के अनुसार, "कर सरकार को किया गया अनिवार्य भुगतान है, जिससे करदाता किसी प्रत्यक्ष लाभ की आशा नहीं रखता।" कुल मिलाकर सरल शब्दों में यह कहा जा सकता है कि "कर एक अनिवार्य भुगतान है, जो सरकार व्यक्तियों से (जो प्राकृतिक या समामेलित कर सकते हैं) सामान्य अहित की दृष्टि से प्राप्त करती है और इसके बदले करदाता को कोई प्रत्यक्ष सेवा, सुविधा या वस्तु प्रदान नहीं की जाती।

2. वाणिज्यिक आय (Commercial Revenues)

वर्तमान समय में प्राय: प्रत्येक देश में सरकारों द्वारा किसी-न-किसी मात्रा में औद्योगिक, वाणिज्यिक क्रियाओं का संचालन किया जाता है। इसमें रेल, डाक-तार, विद्युत आपूर्ति, परिवहन के अन्य साधन एवं निर्माणी उद्योगों को शामिल किया जा सकता है। इन क्रियाओं से प्राप्त आगम को वाणिज्यिक आय कहा जाता है। **प्रो० टेलर** के अनुसार, "वाणिज्यिक आय वे आमदनियाँ हैं जोकि सरकार को अपने द्वारा उत्पादित वस्तुओं अथवा सेवाओं की कीमतों से प्राप्त होती हैं।" वाणिज्यिक आय की दो मुख्य विशेषताएँ हैं, जो इसको लोक आगम को अन्य स्रोतों से पृथक करती हैं—1. इसमें कीमत का भुगतान करने वाले व्यक्ति को उस कीमत के बदले प्रत्यक्ष रूप से कोई वस्तु या सेवा प्राप्त होती है तथा 2. भुगतान की राशि और उसके बदले में प्राप्त वस्तु या सेवा की लागत या लाभ के मध्य एक निश्चित सम्बन्ध होता है। इस प्रकार स्पष्ट है कि सरकारी उद्योगों से प्राप्त आय वाणिज्यिक आय का महत्त्वपूर्ण भाग होता है।

3. प्रशासनिक आय (Administrative Revenues)

सरकार द्वारा प्रशासनिक कार्यों के कारण प्राप्त होने वाली आयों को प्रशासनिक आय कहा जाता है। इसमें मुख्य रूप से फीस, लाइसेन्स फीस, विशेष कर-निर्धारण, अर्थदण्ड इत्यादि को शामिल किया जाता है। इनका संक्षिप्त वर्णन निम्न प्रकार है—

1. **फीस** (Fees)—फीस को परिभाषित करते हुए **सैलिगमैन** ने लिखा है, "फीस उस भुगतान को कहते हैं, जो सरकार द्वारा सामान्य हित में प्रदान की जाने वाली प्रत्येक आवर्ती सेवा (recurring service) की लागत को अदा करने के लिए दिया जाता है। फीस भुगतान करने वाले को एक ऐसा विशेष लाभ पहुँचाती है, जिसको मापा जा सके।" मुख्य विशेषताएँ निम्न हैं—
   (i) फीस का भुगतान सरकार द्वारा की जाने वाली किसी व्यापारिक सेवा के लिए नहीं, वरन् सरकार द्वारा प्रदान की जाने वाली प्रशासनिक और न्यायिक सेवाओं के लिए किया जाता है।
   (ii) फीस में "जैसे को तैसा" (quo pro quo) का सम्बन्ध रहता है, क्योंकि फीस का भुगतान उन्हीं व्यक्तियों द्वारा किया जाता है जो फीस के बदले मिलने वाली सेवा को प्राप्त करना चाहते हैं।
   (iii) फीस के बदले उसके भुगतानकर्त्ता को प्रत्यक्ष लाभ के लिए साथ ही इसमें सार्वजनिक लाभ का उद्देश्य भी निहित होता है।

TOUCH 'n PASS

2. **लाइसेन्स फीस** (Licence Fees)—लाइसेन्स फीस सरकार को उन अवस्थाओं में प्राप्त होती है, जबकि सरकारी अधिकारी स्वयं कोई कार्य अथवा सेवा न करके अन्य व्यक्ति को कार्य करने की अनुमति प्रदान करता है या कार्य अथवा सेवा का अधिकार सौंप देता है। उदाहरण के लिए, दवाई की बिक्री करने की अनुमति प्राप्त करने के लिए दी जाने वाली लाइसेन्स फीस। लाइसेन्स फीस की विशेषताओं में सरकारी नियमन और नियन्त्रण का अंश भी रहता है।
3. **विशेष कर-निर्धारण** (Special Assessment)—जब सरकारी व्ययों के कारण किसी व्यक्ति की सम्पत्ति के मूल्य में वृद्धि हो जाए, तो इस वृद्धि पर सरकार द्वारा लगाए जाने वाला कर विशेष कर-निर्धारण कहलाएगा। उदाहरण के लिए, सरकार किसी गाँव में नहर खुदवा दे और उसमें वहाँ की कृषि भूमि के मूल्यों में वृद्धि हो जाए तथा इस वृद्धि पर सरकार कर लगाए, तो इसे विशेष कर-निर्धारण कहा जाएगा। विशेष निर्धारण की उन्नति लेवी (Betterment Levy) या विकास लेवी (Development Levy of Charges) के नाम से भी सम्बोधित किया जाता है। विशेष निर्धारण की मुख्य विशेषताएँ इस प्रकार हैं—
   (i) यह किसी स्थान विशेष के विकास की लागत को पूरा करने के लिए लगाया जाता है।
   (ii) यह विकास सामान्य हित में किया जाता है।
   (iii) इस विकास के फलस्वरूप सम्पत्ति के मूल्य में वृद्धि होती है।
   (iv) इसका भुगतान अनिवार्य होता है, तथा
   (v) यह भुगतान सामान्यतः प्राप्त लाभ के अनुपात में करना होता है।
4. **अर्थ-दण्ड और जुर्माने** (Fines and Penalties)—सरकारी आय के इस स्रोत का उद्देश्य अनुचित या नियमों के विरुद्ध कार्य करने के लिए दण्ड देना और अपराधों पर नियन्त्रण करना होता है।
   प्रशासनिक आय में उपर्युक्त आयों के साथ ही जमानत या सम्पत्ति का जब्त होना और मृतक के उत्तराधिकारी न होने पर उसकी सम्पत्तियों की प्राप्ति से आय भी शामिल की जाती है।

प्र.2. एडम स्मिथ के करारोपण के विभिन्न सिद्धान्तों का वर्णन कीजिए।
Describe the different Canons of Taxation of Adam Smith.

उत्तर

करारोपण के सिद्धान्त
(Canons or Principles of Taxation)

अध्ययन की दृष्टि से करारोपण के सिद्धान्तों को दो मुख्य वर्गों में विभाजित किया जा सकता है—
(I) एडम स्मिथ के कर सिद्धान्त एवं (II) करारोपण के अन्य सिद्धान्त।

(I) एडम स्मिथ के कर सिद्धान्त (Canons of Taxation of Adam Smith)

एडम स्मिथ ने करारोपण के चार सिद्धान्तों का वर्णन किया है, जिनका विवरण निम्न प्रकार है—

1. **समानता अथवा समता का सिद्धान्त** (Canon of Equality or Equity)—समानता अथवा समता के सिद्धान्त का अर्थ यह है कि विभिन्न करदाताओं पर कर इस प्रकार से लगाया जाए कि सभी करदाताओं पर कर के भार में समानता रहे। भार में समानता का अर्थ समय-समय पर बदलता रहा है। प्रारम्भ में समान कर को भार में समानता का आधार माना गया। इसके पश्चात् वाकर, मेकुलाच (Meculloch) तथा सीनियर इत्यादि अर्थशास्त्रियों ने इस पद्धति के आधार पर आनुपातिक कर (Proportional Tax) का सुझाव दिया, लेकिन सैलिगमैन और कोहन (Saligman and Cohn) इत्यादि अर्थशास्त्रियों के विचार में इस सिद्धान्त का अर्थ प्रगतिशील करारोपण से है। वर्तमान समय में, समानता या समता के सिद्धान्त के अन्तर्गत कर देने की योग्यता के आधार पर कर लगाने, अर्थात् प्रगतिशील करारोपण से ही स्वीकार किया जाता है।
2. **निश्चितता का सिद्धान्त** (Canon of Certainty)—निश्चितता के सिद्धान्त को स्पष्ट करते हुए **एडम स्मिथ** ने लिखा है कि "प्रत्येक व्यक्ति को जो कर देना है, वह निश्चित होना चाहिए, मनमाना नहीं। भुगतान का समय, भुगतान की विधि, भुगतान की जाने वाली राशि करदाता और प्रत्येक अन्य व्यक्ति को स्पष्ट होना चाहिए।" अर्थात् करदाता तथा कर वसूल करने वाले दोनों पक्षकारों को यह स्पष्ट होना चाहिए कि कर की राशि क्या होगी? इसके भुगतान का समय क्या होगा तथा इसके भुगतान की विधि क्या होगी? निश्चितता के सिद्धान्त में यह बात भी शामिल है कि कर नियम भी स्पष्ट और निश्चित होने चाहिए और उनके निर्वचन या व्याख्या में किसी प्रकार की भिन्नता या मतभेद नहीं रहना चाहिए।

TOUCH 'n PASS

3. **सुविधा का सिद्धान्त** (Canon of Convenience)—सुविधा के सिद्धान्त को स्पष्ट करते हुए **एडम स्मिथ** ने लिखा है कि "प्रत्येक कर ऐसे समय पर या इस ढंग से लगाया जाए कि करदाता को भुगतान करने में वह अत्यधिक सुविधाजनक हो।" दूसरे शब्दों में, सरकार को कर प्रणाली इस प्रकार की बनानी चाहिए, जिसमें करदाता को कर चुकाने में सुविधा रहे। कृषि में फसल के बाद लगान वसूल करना, वेतनभोगी वर्ग की आय में उद्गम स्थान पर कर की कटौती (deduction at source) इत्यादि बातें सुविधा के नियम के पालन का उदाहरण है। सरल शब्दों में, यह कहा जा सकता है कि कर के—
   (अ) भुगतान का समय सुविधाजनक होना चाहिए,
   (ब) भुगतान की विधि सुविधाजनक होनी चाहिए, तथा
   (स) भुगतान का स्थान सुविधाजनक होना चाहिए।
4. **मितव्ययिता का सिद्धान्त** (Canon of Economy)—मितव्ययिता के नियम का अर्थ है कि करों की वसूली में कम-से-कम व्यय हो। दूसरी ओर करदाता को भी कर की राशि निर्धारित करने में कम-से-कम व्यय करना पड़े। **डाल्टन** ने इस सिद्धान्त के महत्त्व को स्पष्ट करते हुए लिखा है कि "सर्वोत्तम कर प्रणाली वह है, जिसके अन्तर्गत कर वसूल करने की लागत एकत्रित आय के अनुपात में न्यूनतम हो।

(II) करारोपण के अन्य सिद्धान्त (Others Canons of Taxation)

1. **उत्पादकता का सिद्धान्त** (Canon of Productivity)—इस सिद्धान्त का प्रतिपादन **बैस्टेबिल** द्वारा किया गया था। इस सिद्धान्त के अर्थ दो दृष्टिकोणों से लगाये जाते हैं—कर की दृष्टि से और कर के प्रभाव की दृष्टि से। कर की दृष्टि से उत्पादकता का अर्थ यह है कि सरकार को निरन्तर एवं दीर्घ काल तक पर्याप्त आय प्रदान करते रहें। इस सन्दर्भ में इसको पर्याप्तता का सिद्धान्त (Canon of Sufficiency or Adequacy) भी कहा जाता है। कर के प्रभाव की दृष्टि से करों के प्रकार और उनका भार इस प्रकार का होना चाहिए कि देश में वस्तुओं एवं सेवाओं के उत्पादन पर विपरीत प्रभाव न पड़े।
2. **लोच का सिद्धान्त** (Canon of Elasticity or Flexibility)—**प्रो० बैस्टेबिल** ने लोच के सिद्धान्त पर भी पर्याप्त महत्त्व दिया है। यद्यपि लोच का अर्थ करों में वृद्धि और कमी दोनों से होता है, लेकिन व्यावहारिक दृष्टि से लोच के सिद्धान्त का अर्थ यह है कि कर प्रणाली ऐसी होनी चाहिए कि किसी भी आवश्यकता या संकट के समय में करों से प्राप्त आय में आवश्यकतानुसार वृद्धि की जा सके।
3. **विविधता का सिद्धान्त** (Canon of Diversity)—इस सिद्धान्त का मूल आधार यह है कि 'एक-कर प्रणाली' (Single-tax system) के स्थान पर 'बहु-कर प्रणाली' (Multiple-tax system) को अपनाया जाए। दूसरे शब्दों में, कर प्रणाली में विविध प्रकार के प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष करों का समावेश होना चाहिए, जिससे सभी श्रेणियों के व्यक्तियों का अंशदान प्राप्त हो सके। यह ध्यान रहे कि विविधता के सिद्धान्त का यह अर्थ कदापि नहीं है कि करों के प्रकारों को अनावश्यक रूप से बढ़ा दिया जाए।
4. **सरलता का सिद्धान्त** (Canon of Simplicity)—इस सिद्धान्त का प्रतिपादन **आरमिटेज स्मिथ** (Armitage Smith) ने किया है। इस सिद्धान्त के अनुसार कर प्रणाली एवं इससे सम्बन्धित नियम सरल होने चाहिए, ताकि करदाता कर के सम्बन्ध में विभिन्न बातों को सरलता से समझ सकें। यह महत्त्वपूर्ण है कि कर प्रणाली सरल होने पर करदाता कर का कम भार अनुभव करते हैं। इसके विपरीत कर प्रणाली जटिल होने पर करदाताओं में अनावश्यक असन्तोष उत्पन्न होता है और वे कर को अधिक भार पूर्ण समझने लगते हैं।
5. **एकरूपता का सिद्धान्त** (Canon of Uniformity)—एकरूपता के दो अर्थ हो सकते हैं। **प्रथम,** एक-कर प्रणाली में विभिन्न करों में कर लगाने की पद्धति, समय, भुगतान व्यवस्था इत्यादि के दृष्टिकोणों से एकरूपता होनी चाहिए। **दूसरे,** संघीय वित्त व्यवस्था के सन्दर्भ में विभिन्न राज्यों की कर प्रणाली में एकरूपता रहनी चाहिए।
6. **वांछनीयता का सिद्धान्त** (Canon of Desirability)—प्रजातन्त्रात्मक देशों में इस सिद्धान्त का काफी महत्त्व है। यह सिद्धान्त इस बात पर जोर देता है कि प्रत्येक कर लगाने का कोई-न-कोई औचित्य होना चाहिए और इसे स्पष्ट रूप से समझना चाहिए अन्यथा जनता किसी कर विशेष को अनावश्यक भार समझ सकती है।

TOUCH 'n PASS

7. **समन्वय का सिद्धान्त** (Canon of Coordination)—इस सिद्धान्त के आधार पर कर प्रणाली में एक ही सरकार के विभिन्न करों और विभिन्न सरकारों के करों में इस प्रकार का समन्वय बना रहना चाहिए, जिससे किसी एक वस्तु, आय या सम्पत्ति पर अनुचित रूप से पुन: कर न लग सके।

यह निश्चय है कि किसी भी एक कर प्रणाली में उपर्युक्त सभी गुण नहीं पाये जाते हैं। प्राय: कोई भी कर ऐसा नहीं होता, जिस पर उपरोक्त सभी सिद्धान्त लागू हो सकें। यदि एक में विभिन्न सिद्धान्तों के मध्य विरोध पाया जाए, तो ऐसी दशा में कम महत्त्वपूर्ण सिद्धान्तों की अपेक्षा अधिक महत्त्वपूर्ण सिद्धान्तों पर जोर देने की नीति अपनानी चाहिए।

प्र.3. उत्पादन पर करारोपण के प्रभावों का विस्तार से उल्लेख कीजिए।
Elaborate the effects of taxation on production.

उत्तर वर्तमान समय में सरकार के कार्यों में निरन्तर वृद्धि हो रही है, जिनको पूरा करने के लिए विशाल धनराशि की आवश्यकता होती है। सरकार की आय का मुख्य स्रोत कर ही है, लेकिन इसका प्रयोग मनमाने ढंग से नहीं किया जा सकता। कर लगाते समय सरकार को यह देखना होता है कि इसका देश में उत्पादन, उपभोग और वितरण पर क्या प्रभाव पड़ेगा? क्योंकि **डाल्टन** के अनुसार, "आर्थिक दृष्टिकोण से एक श्रेष्ठ कर प्रणाली वही है, जिसके आर्थिक प्रभाव सबसे अच्छे हों या यदि कोई बुरा प्रभाव भी पड़े तो वह न्यूनतम हो।" करारोपण के प्रभावों का अध्ययन तीन शीर्षकों में विभाजित करके किया जा सकता है—(I) उत्पादन पर प्रभाव (II) वितरण पर प्रभाव, तथा (III) अन्य प्रभाव।

(I) उत्पादन पर करारोपण का प्रभाव
(Effects of Taxation on Production)

उत्पादन पर करारोपण के प्रभावों का अध्ययन करने की दृष्टि से डाल्टन ने इन प्रभावों को तीन भागों में विभाजित किया है—
(A) कार्य करने और बचत करने की योग्यता पर प्रभाव,
(B) कार्य करने तथा बचत करने की इच्छा पर प्रभाव,
(C) आर्थिक साधनों के स्थानान्तरण पर प्रभाव।

(A) कार्य करने और बचत करने की योग्यता पर प्रभाव (Effects on Ability to Work and Save)

1. करारोपण का अर्थ है कि व्यक्तिगत हाथों से सरकार की ओर क्रय-शक्ति का अन्तरण। इसका स्पष्ट अर्थ है कि करारोपण के फलस्वरूप जनता की क्रय-शक्ति में कमी होती है। हाँ, इतना अवश्य है कि धनिक वर्ग के पास अत्यधिक या अतिरिक्त क्रय-शक्ति होने से उनके कार्य करने की योग्यता पर करारोपण से क्रय-शक्ति में होने वाली कमी का अपेक्षाकृत कम या नगण्य प्रभाव पड़ता है, लेकिन निर्धन वर्ग पर इसका प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। निर्धन वर्ग की आय पर या उनके द्वारा उपभोग की जाने वाली वस्तुओं पर कर लगने से उनकी वास्तविक आय (अर्थात् क्रय शक्ति) कम हो जाती है, जिससे विभिन्न वस्तुओं और सेवाओं का उपभोग घट जाता है, जीवन-स्तर पर विपरीत प्रभाव पड़ता है और अन्त में कार्य करने की शक्ति में कमी होने लगती है।
2. यदि कर विलासिता या आरामदायक वस्तुओं पर लगाये जाते हैं, तो उनका कार्य करने की शक्ति पर इतना प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ता, जितना प्रतिकूल प्रभाव जीवन-रक्षक, कुशलता रक्षक या आवश्यकता की वस्तुओं पर कर लगाने का पड़ता है।
3. यदि ऐसी वस्तुओं पर कर लगाया जाता है, जिनके उपभोग से शारीरिक अथवा मानसिक स्वास्थ्य की हानि होती है; जैसे—शराब, भांग इत्यादि, तो ऐसी दशा में कार्य-कुशलता या कार्य करने की योग्यता पर अनुकूल प्रभाव पड़ने की सम्भावना रहती है।
4. जहाँ तक बचत करने की योग्यता का प्रश्न है, लगभग सभी प्रकार के करों का बचत करने की योग्यता पर बुरा प्रभाव पड़ता है। कर देने के पश्चात् आय की मात्रा घट जाती है कर देने के कारण आय घटती है फलस्वरूप बचत की योग्यता कम हो जाती है।

(B) कार्य करने पर तथा बचत करने की इच्छा पर प्रभाव
(Effects on Willingness to Work and Save)

कार्य करने की इच्छा पर करारोपण के भावों का अध्ययन करने के लिए दो घटकों का अध्ययन करना होगा—1. करदाताओं की मनोवैज्ञानिक प्रतिक्रिया, तथा 2. करों की प्रकृति या दर।

TOUCH 'n PASS

1. करदाताओं की मनोवैज्ञानिक प्रतिक्रिया (Psychological Reactions of Taxpayers)

करदाताओं की मनोवैज्ञानिक प्रतिक्रिया को प्रभावित करने वाला मुख्य घटक यह है कि उनकी आय की माँग सम्बन्धी लोच किस प्रकार की है। आय की माँग की लोच निम्न तीन प्रकार की होती है—

(अ) **आय की बेलोचदार माँग** (Inelastic Demand of Income)—आय की बेलोच माँग का अर्थ यह है कि व्यक्ति आय की एक निश्चित राशि हमेशा प्राप्त करना चाहता है। कर लगने पर व्यक्ति अतिरिक्त कार्य करके अपनी पूर्व राशि को बनाये रखना चाहता है। उदाहरण के लिए, एक व्यक्ति अपने जीवन स्तर को बनाये रखने के लिए ₹ 5,000 मासिक व्यय करता है। अब यदि उस पर ₹ 500 मासिक कर का भार डाल दिया जाए, तो वह ₹ 5,500 मासिक अर्जित करने का प्रयास करेगा, क्योंकि विद्यमान जीवन स्तर के लिए उसकी ₹ 5,000 की बेलोचदार माँग है। अत: करारोपण से ₹ 500 कम आय होने पर अतिरिक्त आय अर्जित करने के लिए करदाता की कार्य करने की इच्छा में वृद्धि होगी।

(ब) **आय की लोचदार माँग** (Elastic Demand of Income)—आय की लोचदार माँग उस स्थिति को कहते हैं, जिसमें करदाता के मन में प्रत्येक स्थिति में एक निश्चित आय बनाये रखने की लालसा नहीं होती। यदि कर लगने के कारण उसकी शुद्ध आय में कमी होती है, तो वह अनेक बार सोचता है कि आय में कमी की पूर्ति के लिए अधिक कार्य करे या न करें। उदाहरण के लिए, कर से पूर्व एक व्यक्ति की पूर्ण आय ₹ 10,000 है। अब यदि उस पर ₹ 1,000 का कर भार पड़ जाए, तो शुद्ध आय ₹ 9,000 रह जाएगी। आय की लोचदार माँग होने की स्थिति में वह यह सोच सकता है कि ₹ 9,000 से ही काम चला लेगा। ऐसी स्थिति में करारोपण के कारण उसकी कार्य करने की इच्छा में वृद्धि नहीं होगी।

(स) **आय की माँग लोच इकाई के बराबर** (Demand for Income equal to Elastic Demand of Income)—आय की माँग लोच इकाई के बराबर होने का अर्थ है कि कर लगे या न लगे, व्यक्तियों में कार्य करने और बचत करने की इच्छा बराबर बनी रहे। समाज में अधिकांश व्यक्तियों की स्थिति यही होती है। इसके दो कारण हैं—**प्रथम,** व्यक्तियों में कार्य करने और बचत करने की आदत पड़ जाती है। चाहे कर की दर कितनी ही अधिक क्यों न हो, वे एक निश्चित गति के साथ कार्य और बचत करते रहते हैं। **द्वितीय,** अधिकांश व्यक्तियों में जन्मजात प्रतियोगिता की भावना होती है और प्रत्येक व्यक्ति आय और धन में दूसरे के आगे बढ़ना चाहता है।

व्यावहारिकता में यही पाया जाता है कि अधिकांश करदाताओं की आय की माँग बेलोचदार होती है, जिससे करारोपण का कार्य करने की इच्छा पर अच्छा प्रभाव पड़ता है।

2. करों की प्रकृति (Nature of Taxes)

करों की प्रकृति का भी कार्य करने की इच्छा पर प्रभाव पड़ता है, जो निम्न प्रकार हो सकता है—

(i) आकस्मिक या असाधारण लाभों पर लगने वाले करों का कार्य करने की इच्छा पर कोई विपरीत प्रभाव नहीं पड़ता। इन करों में असाधारण लाभों पर कर, उत्तराधिकार कर, भूमि के मूल्यों में होने वाली विशेष वृद्धियों पर कर, लॉटरी से आय इत्यादि मुख्य हैं। (ii) एकाधिकारी लाभों पर लगाये जाने वाले कर का प्रभाव भी तटस्थ रहता है, क्योंकि एकाधिकारी अपने उत्पादन को ऐसे बिन्दु पर समायोजित करता है, जिस बिन्दु पर उसे सर्वाधिक लाभ होता है। (iii) सामान्यत: प्रत्यक्ष करों से कार्य करने एवं बचत करने की इच्छा पर विपरीत प्रभाव पड़ता है, लेकिन अप्रत्यक्ष करों का कार्य करने की इच्छा पर विपरीत प्रभाव अपेक्षाकृत बहुत कम पड़ता है। (iv) करों की दरें जितनी अधिक प्रगतिशील होती हैं, कार्य करने की इच्छा पर उतना ही अधिक प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है।

करारोपण से बचत करने की इच्छा पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है, क्योंकि करारोपण से व्यक्ति को अपने उपभोग पर अधिक क्रय शक्ति देनी होती है तथा साथ ही व्यक्ति के पास करारोपण के बाद क्रय शक्ति घट जाती है जिससे बचत करने की इच्छा भी घट जाती है।

(C) **आर्थिक साधनों के स्थानान्तरण पर प्रभाव** (Effects on the Transfer of Economic Resources)—करों के फलस्वरूप आर्थिक साधनों का अन्तरण निम्न प्रकार का हो सकता है—

1. **लाभदायक स्थानान्तरण** (Profitable Transfer)—यदि उपभोग की दृष्टि से हानिकारक तथा विलासिता की वस्तुओं पर अधिक कर लगाये जाते हैं, तो इन उद्योगों में लगे साधन उपभोग की दृष्टि से आवश्यक और आरामदायक उद्योगों की ओर प्रवाहित होने लगेंगे और यह अन्तरण एक लाभदायक अन्तरण होगा।
2. **हानिकारक स्थानान्तरण** (Harmful Transfer)—यदि सामान्य उपभोग और अनिवार्य आवश्यकता की वस्तुओं पर कर लगाये जाते हैं, तो इससे एक ओर तो इन वस्तुओं के मूल्यों में वृद्धि होने से इनके उपभोग में कमी आएगी, जिसका प्रतिकूल प्रभाव उत्पादन क्षमता पर पड़ेगा।

3. **वर्तमान उपयोगों से भावी उपयोगों को स्थानान्तरण** (Transfer of Means from One Place to Another)—यदि उपभोग पर कर लगाये जाते हैं और बचतों को प्रोत्साहित किया जाता है, तो उत्पत्ति के साधनों का अन्तरण वर्तमान उपयोगों से भावी उपयोगों की ओर होने लगता है। प्राय: विकास की प्रारम्भिक अवस्था या नियोजन काल में ऐसा अन्तरण किया जाता है।
4. **एक स्थान से दूसरे स्थान को साधनों का स्थानान्तरण** (Transfer from Present uses to Future Uses)—विभिन्न राज्यों में विभिन्न प्रकार के करों या एक ही कर की विभिन्न दरों के कारण उत्पत्ति के साधन ऐसे स्थान या राज्यों की ओर अन्तरित होने लगते हैं, जहाँ कर-भार तुलनात्मक रूप से कम होता है। इसके साथ ही केन्द्रीय सरकार भी औद्योगिक दृष्टि से पिछड़े क्षेत्र में कर सुविधाएँ प्रदान करके उत्पत्ति के साधनों को उन क्षेत्रों में अन्तरित होने के लिए प्रोत्साहित कर सकती है।

(II) वितरण पर करारोपण के प्रभाव
(Effects of Taxation on Distribution)

वितरण पर करारोपण का प्रभाव दो बातों से प्रभावित है—1. करों की प्रकृति या दरें, एवं 2. करों के प्रकार।

1. **करों की प्रकृति या कर की दरें** (Nature of Taxation or Tax Rates)—करों की प्रकृति का अर्थ यह है कि समाज के विभिन्न वर्गों पर कर-भार किस अनुपात में पड़ रहा है? इस दृष्टि से कर तीन प्रकार के होते हैं—(अ) प्रगतिशील कर, (ब) आनुपातिक कर, एवं (स) प्रतिगामी कर। यदि करों की प्रकृति प्रगतिशील (Progressive) है, अर्थात् आय या सम्पत्ति में वृद्धि होने पर करों की दरें बढ़ती जाती हैं, तो आय एवं सम्पत्ति के वितरण में असमानताएँ कम होंगी। यदि करों की प्रकृति आनुपातिक (Proportional) है, तो आय एवं सम्पत्ति के वितरण की स्थिति यथावत् बनी रहेगी। यदि करों की प्रकृति प्रतिगामी (Regressive) है, अर्थात् आय एवं सम्पत्ति में वृद्धि होने पर करों की दरें घटने लगती हैं, तो आय एवं सम्पत्ति के वितरण में असमानताएँ बढ़ने लगती हैं।
2. **करों के प्रकार** (Kinds of Taxes)—इस सन्दर्भ में प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष करों का उल्लेख किया जा सकता है। आय एवं सम्पत्ति के वितरण में असमानताओं को कम करने के लिए सामान्यत: प्रगतिशील प्रत्यक्ष करों का प्रयोग किया जाता है। जहाँ तक अप्रत्यक्ष करों का प्रश्न है, ऊपरी तौर पर सामान्यत: यह आनुपातिक रूप में लगाये जाते हैं प्रतिगामी और करारोपित वस्तु की दृष्टि से यह कर प्रगतिशील या प्रतिगामी सिद्ध हो सकते हैं। यदि ये कर आवश्यक वस्तुओं पर अधिक लगाये जाते हैं, तो प्रतिगामी सिद्ध होते हैं और यदि धनी वर्ग द्वारा प्रयोग की जाने वाली वस्तुओं पर लगाये जाते हैं, तो प्रगतिशील सिद्ध होते हैं। कुल मिलाकर अनुभव यह किया जाता है कि अप्रत्यक्ष करों का आय एवं सम्पत्ति के वितरण की असमानताओं को कम करने में विशेष प्रभाव नहीं पड़ता।

(III) करारोपण के अन्य प्रभाव
(Other Effects of Taxation)

करारोपण के कुछ अन्य प्रमुख प्रभाव निम्न हैं—

1. **करारोपण और आर्थिक स्थायित्व** (Taxation and Economic Stability)—आर्थिक स्थायित्व बनाये रखने की दृष्टि से मुद्रा स्फीति और मन्दी काल में करों की भिन्न भूमिका रहती है, जो निम्न प्रकार स्पष्ट की जा सकती है—
   (अ) **करारोपण और मुद्रा प्रसार** (Taxation and Inflation)—मुद्रा प्रसार में मूल्य-स्तर में वृद्धि होती है। इसका कारण यह होता है कि जनता के हाथों में मुद्रा के रूप में क्रय-शक्ति अधिक होती है, जिससे वस्तुओं की माँग बढ़ जाती है, लेकिन इस माँग के अनुरूप उत्पादन में वृद्धि न होने से मुद्रा स्फीतिक स्थिति बन जाती है। इस परिस्थिति में आवश्यकता इस बात की होती है कि जनता के हाथों में विद्यमान क्रय या व्यय करने की शक्ति को कम किया जाए। इसके लिए विद्यमान करों की दर बढ़ायी जा सकती है या नये कर लगाये जा सकते हैं, जिससे जनता के हाथों की अतिरिक्त क्रय-शक्ति सरकार को हस्तान्तरित हो सके और मुद्रा स्फीतिक प्रवृत्ति को नियन्त्रित किया जा सके। इस दृष्टि से आय-कर और व्यय-कर काफी प्रभावशाली सिद्ध हुए हैं।
   आय कर से आय को कम करके क्रय-शक्ति को कम किया जा सकता है तथा व्यय-कर से अधिक व्यय को हतोत्साहित करके वस्तुओं की माँग को कम किया जा सकता है। बिक्री-कर या उत्पादन शुल्क भी व्यय को

TOUCH 'n' PASS

हतोत्साहित कर सकते हैं, लेकिन इन करों से वस्तुओं के मूल्य में वृद्धि हो जाती है, जिससे मुद्रा स्फीतिक स्थिति पर नियन्त्रण का उद्देश्य असफल हो सकता है।

मुद्रा स्फीति का एक कारण उत्पादन में आशानुकूल वृद्धि न होना भी होता है। अत: कर प्रणाली को इस प्रकार से समायोजित किया जा सकता है, जिससे देश में उत्पादन क्रियाओं और वस्तुओं की उपलब्धता में वृद्धि कर सके। इस दृष्टि से नये औद्योगिक उपक्रमों को करों की छूट दी जा सकती है, गत उत्पादन से अधिक उत्पादन पर करों की दर को कम किया जा सकता है एवं आवश्यक वस्तुओं के आयातों पर करों में कमी तथा निर्यातों पर करों में वृद्धि की जा सकती है।

(ब) **करारोपण और मन्दी काल** (Taxation and Depression)—मन्दी काल में करों को भिन्न भूमिका निभानी पड़ती है। इस काल में करों की दरों को बढ़ाना या नये करों को लगाना अच्छा नहीं समझा जाता, क्योंकि इससे उपभोग और विनियोग की मात्रा में कमी आ सकती है। मन्दी काल में निर्धन व्यक्ति पर पड़ने वाले कर-भारों को कम करना होता है, जिससे देश में उपभोग की प्रवृत्ति (Propensity to consume) बढ़ सके। इसके अतिरिक्त संचयी बचतों को हतोत्साहित किया जाता है तथा बचतों के विनियोग को प्रेरित किया जाता है।

2. **उपभोग पर प्रभाव** (Effects on Consumption)—सामान्यत: करारोपण से उपभोग के कम होने की प्रवृत्ति होती है। प्रत्यक्ष करों से आय या सम्पत्ति में कमी होने से उपभोग कम होता है और अप्रत्यक्ष करों से वस्तुओं के मूल्य बढ़ने से उपभोग कम हो जाते हैं।

   उपभोग में कमी होना हमेशा हानिकारक नहीं होता है। यदि ऐसी वस्तुओं के उपभोग में कमी होती है, जो स्वास्थ्य की दृष्टि से हानिकारक या फिजूल खर्चों को प्रोत्साहित करने वाली हो, तो विकासशील दृष्टि से लाभदायक ही सिद्ध होता है।

3. **रोजगार पर प्रभाव** (Effects on Employment)—सामान्यत: यह सोचा जाता है कि करारोपण का रोजगार पर विपरीत प्रभाव पड़ना चाहिए, क्योंकि कर लगने से जनता की आय एवं बचत कम होती है, जिससे विनियोग के लिए प्रेरणा कम होती है, किन्तु यदि सरकार करारोपण द्वारा उत्पादन वृद्धि करने तथा आय और सम्पत्ति में वितरण की असमानताओं को कम करने में सफल हो जाती है, तो रोजगार पर करारोपण का अनुकूल प्रभाव पड़ता है।

प्र.4. प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष कर से आप क्या समझते हैं? तथा इनके गुणों व दोषों का भी वर्णन कीजिए।
What do you understand by Direct and Indirect Tax? also describe their merits and demerits.

उत्तर

प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष कर
(Direct and Indirect Taxes)

प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष कर की परिभाषाएँ (Definitions of Direct and Indirect Tax)

करों का सबसे महत्त्वपूर्ण और सर्वाधिक प्रचलित वर्गीकरण प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष कर हैं। इनकी प्रमुख परिभाषाएँ निम्नलिखित हैं—

1. **डाल्टन** के अनुसार, "एक प्रत्यक्ष कर वास्तव में उस व्यक्ति द्वारा चुकाया जाता है, जिस पर वह वैधानिक रूप से लगाया जाता है, जबकि अप्रत्यक्ष कर एक व्यक्ति पर लगाया जाता है, लेकिन उसे पूर्णतया या आंशिक रूप से अन्य व्यक्तियों द्वारा चुकाया जाता है। ...इस प्रकार, अप्रत्यक्ष कर वह है जिसे विवर्तित (shift or pass on) किया जा सके जबकि प्रत्यक्ष कर वह है, जिसे विवर्तित नहीं किया जा सकता।"
2. **जे० के० मेहता** के मतानुसार, "प्रत्यक्ष कर वह कर है जोकि पूर्णतया उसी व्यक्ति द्वारा चुकाया जाता है, जिस पर कि वह लगाया गया है। अप्रत्यक्ष कर वह है जिसे चुकाने वाला व्यक्ति पूर्णतया या आंशिक रूप से कुछ अन्य व्यक्तियों पर टाल देता है।"

प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष करों के स्पष्टीकरण के सम्बन्ध में **टेलर** के यह विचार उल्लेखनीय हैं कि, "प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष करों के शब्दों के अर्थ में अन्तिम रूप से भेद करके विवर्तनीयता के आधार पर ही किया जा सकता है।" अर्थात् यदि किसी कर का कराघात (Impact) और करापात (Incidence) एक ही व्यक्ति पर पड़ता है, तो वह प्रत्यक्ष कर कहलाएगा और जिस कर का कराघात और करापात भिन्न-भिन्न व्यक्तियों पर पड़ता है, उसे अप्रत्यक्ष कर कहा जाएगा।

TOUCH 'n' PASS

प्रत्यक्ष करों के गुण (Merits of Direct Taxes)

1. **न्यायशीलता एवं करदेय योग्यता** (Equity and Ability to Pay) **के अनुकूल**—ये कर आय और सम्पत्ति पर आधारित होते हैं, अत: करदेय योग्यता के सिद्धान्त की पूर्ति करते हैं। इनकी दर को प्रगतिशील बनाकर अमीरों से तुलनात्मक रूप में अधिक कर लिया जा सकता है, जिससे न्यायशीलता के सिद्धान्त की पूर्ति होती है।
2. **उत्पादकता** (Productivity)—इन करों में उत्पादकता का गुण होता है, क्योंकि देश में आय और सम्पत्ति में वृद्धि होने के साथ ही इन करों से प्राप्त आय में भी वृद्धि की जाती है। इन करों को उत्पादक इस आधार पर भी कहा जाता है कि अनेकों अप्रत्यक्ष करों के स्थान पर कुछ ही प्रत्यक्ष करों से पर्याप्त आय प्राप्त हो जाती है।
3. **निश्चितता** (Certainty)—इन करों में करदाताओं के लिए यह निश्चित होता है कि उन्हें कब, किस प्रकार और किस दर से कर देना है? इसी प्रकार, सरकार भी निश्चित रहती है कि उसे करों से कितनी आय प्राप्त होने वाली है?
4. **लोच** (Elasticity)—इन करों में लोचता भी पर्याप्त मात्रा में पायी जाती है और आवश्यकतानुसार करों की दरों में परिवर्तन करके कर आय में परिवर्तन किया जा सकता है। मुद्रा प्रसार और मुद्रा संकुचन की स्थिति में सुधार की दृष्टि से इस लोचता का पूरा लाभ उठाया जा सकता है।
5. **आर्थिक विषमताओं को कम करने में सहायक** (Helpful in Reducing Economic Disparity)—प्रत्यक्ष करों में यह लाभ भी मिलता है कि आय और सम्पत्ति पर प्रगतिशील दरों से कर लगाकर देश में आय और सम्पत्ति के वितरण में असमानताओं को कम किया जा सकता है।

प्रत्यक्ष करों के दोष (Demerits of Direct Taxes)

1. **असुविधाजनक** (Inconvenience)—प्रत्यक्ष कर की गणना में प्राय: असुविधा होती है तथा कर अधिकारियों द्वारा अनेक दशाओं में करदाता का आर्थिक शोषण किया जाता है। इन करों में करदाताओं को अधिक असुविधा होती है।
2. **करों की चोरी** (Tax Evasion)—प्रत्यक्ष करों में करदाता आय और सम्पत्ति के झूठे विवरण दिखाकर करों की चोरी कर सकता है। यदि करों की दर प्रगतिशील होती है, तो करों की चोरी को और प्रोत्साहन मिलता है। इन करों के सम्बन्ध में यह कहा जाता है कि "प्रत्यक्ष कर ईमानदारी पर कर (Tax on Honesty) होते हैं।" यह भी स्पष्ट है कि करों में चोरी से देश में भ्रष्टाचार में वृद्धि होती है।
3. **करों की मनमानी दर** (Arbitrary Rates)—इन करों में दरों का निर्धारण मनमाने दर से होता है। यद्यपि करों को करदान योग्यता के आधार पर लगाया जाता है, लेकिन कर की दरें राजनैतिक दृष्टिकोण से प्रभावित होती है। एक पूँजीवादी सरकार करों की सीमान्त दरें तुलनात्मक रूप से कम रखती है, जबकि एक समाजवादी सरकार करों की सीमान्त दरें तुलनात्मक रूप से अधिक रखती है।
4. **करों में अधिक घर्षणात्मक शक्ति** (Frictional Forces in Taxes)—प्रत्यक्ष करों में घर्षणात्मक शक्ति होती है, अर्थात् करदाताओं को इन करों के देने में कष्ट और त्याग का अनुभव होता है।
5. **सभी वर्गों का योगदान न रहना** (No Contribution of All the Classes)—प्रत्यक्ष करों से सरकार द्वारा प्रदान की जाने वाली सेवाओं और सुविधाओं के लिए देश के सभी वर्गों का योगदान प्राप्त नहीं किया जा सकता, क्योंकि ये कर एक निश्चित सीमा से अधिक आय या सम्पत्ति पर ही लगाये जाते हैं।
6. **बेलोच और अमितव्ययी** (Inelastic and Non-frugal)—इन करों में प्राय: लोच का अभाव रहता है, क्योंकि इनकी दरों में वृद्धि से लोगों में असन्तोष पनपता है, अत: सरकार सुविधा के साथ करों में वृद्धि नहीं कर पाती। कर एकत्र करने के तन्त्र में प्रशासनिक व्यय अधिक होने के कारण प्रत्यक्ष कर अमितव्ययी होते हैं।

अप्रत्यक्ष करों के गुण (Merits of Indirect Taxes)

1. **सुविधाजनक** (Convenience)—इन करों को सामान्यत: वस्तुओं के क्रय करते समय थोड़ी-थोड़ी मात्रा में चुकाया जाता रहता है, अत: करदाताओं को कर चुकाने में सुविधा रहती है।
2. **न्यायशीलता सम्भव** (Equity may be Observed)—निर्धन वर्ग द्वारा प्रयोग होने वाली और आवश्यक वस्तुओं पर कम दर से कर लगाकर तथा धनी वर्ग द्वारा प्रयोग होने वाली और विलासिता की वस्तुओं पर अधिक दर से कर लगाकर इन करों में न्यायशीलता लाई जा सकती है।

TOUCH 'n' PASS

3. **करवंचन में कठिनाई** (Difficult to Evade)—इन करों में करवंचन में कठिनाई रहती है, क्योंकि यदि उपभोक्ता कर लगी हुई वस्तु का प्रयोग करता है, तो उसे कर देना ही पड़ेगा।
4. **अधिक लोच** (More Elastic)—अप्रत्यक्ष करों में प्रत्यक्ष करों की तुलना में अधिक लोच रहती है। विशेष रूप से आवश्यक वस्तुओं पर लगाये जाने वाले करों में पर्याप्त लोच रहती है।
5. **हानिकारक वस्तुओं के प्रयोग पर रोक** (Prevention of Use of Harmful Things)—अप्रत्यक्ष करों द्वारा मादक पदार्थों तथा अन्य हानिकारक वस्तुओं पर ऊँची दर से कर लगाकर उनके प्रयोग को नियन्त्रित किया जा सकता है।
6. **समाज के सभी वर्गों पर कर** (Taxes on All Classes of the Society)—अप्रत्यक्ष करों से समाज के सभी वर्गों से कुछ-न-कुछ कर की प्राप्ति अवश्य होती है। इस प्रकार करों का आधार प्रत्यक्ष करों की तुलना में विस्तृत हो जाता है।
7. **विकासशील देशों में विशिष्ट महत्त्व** (Special Importance in Developing Countries)—विकासशील देशों में इन करों का विशिष्ट महत्त्व होता है, क्योंकि आय का स्तर नीचा होने के कारण प्रत्यक्ष करों से पर्याप्त आय सम्भव नहीं हो पाती। दूसरे, उपभोग को नियन्त्रित करने तथा पूँजी निर्माण को प्रोत्साहित करने में अप्रत्यक्ष कर विशेष सहायक होते हैं।

अप्रत्यक्ष करों के दोष (Demerits of Indirect Taxes)

1. **निर्धनों पर अधिक भार** (More Burden on the Poor)—यदि इन करों को सामान्य उपभोग की वस्तुओं पर लगाया जाता है, तो धनी व्यक्तियों की तुलना में निर्धन वर्ग पर कर का वास्तविक भार अधिक पड़ता है। इस प्रकार ये कर स्वभाव से प्रतिगामी (regressive) होते हैं और यह कहा जाता है कि ये कर न्याय-संगत नहीं होते।
2. **अनिश्चितता** (Uncertainty)—इन करों से प्राप्त आय के बारे में अधिक अनिश्चितता रहती है, क्योंकि करों के परिवर्तन से वस्तु की माँग और पूर्ति पर प्रभाव पड़ता है, जिसका पहले से सही-सही अनुमान नहीं लगाया जा सकता। इसके कारण कर की राशि के बारे में भी अनिश्चितता रहती है।
3. **सामाजिक चेतना को उत्पन्न करने में प्रभावहीन** (Effectless in Creating Social Consciousness)—अप्रत्यक्ष करों में प्राय: करदाता को कर देने का अनुभव नहीं होता, जिससे उसमें कर देने के बदले वांछनीय सामाजिक चेतना उत्पन्न नहीं होती।
4. **मन्दीकाल में हानिप्रद** (Harmful in Deppression)—अर्थव्यवस्था में मन्दी के समय अप्रत्यक्ष कर उत्पादक नहीं होते। मन्दी के समय लोगों की क्रय शक्ति कम होती है और वे अपनी आय से आवश्यक वस्तुएँ तक नहीं खरीद पाते। ऐसी स्थिति में अप्रत्यक्ष करों का कोई महत्त्व नहीं रह जाता।
5. **मुद्रा स्फीति की प्रवृत्ति को जन्म** (Rise in the Nature of Inflation)—अप्रत्यक्ष करों से वस्तुओं के मूल्यों में वृद्धि होती है, जिससे मुद्रा स्फीति की प्रवृत्ति को जन्म मिल सकता है।

प्र.5. आनुपातिक, प्रगतिशील, प्रतिगामी और अधोगामी कर का विस्तार से वर्णन कीजिए।

Explain in detail proportional, progressive, regressive and downward tax.

उत्तर

आनुपातिक, प्रगतिशील, प्रतिगामी और अधोगामी कर
(Proportional, Progressive, Regressive and Degressive Taxes)

करों का यह वर्गीकरण कर की दरों के आधार (Tax base) पर किया जाता है। सरल शब्दों में, जब आय में वृद्धि के साथ करों की दरें भी बढ़ें, तो उसे प्रगतिशील कर, कर की दरें स्थिर रहें, तो आनुपातिक कर और यदि कर की दरें घटें, तो प्रतिगामी कर कहते हैं। इन करों का विस्तृत विश्लेषण निम्न प्रकार है—

1. आनुपातिक कर (Proportional Tax)

आनुपातिक कर वे हैं, जिनमें कर एक निश्चित अनुपात में ही लगाया जाता है, अर्थात् कर की एक ही दर रहती है चाहे आय कम हो या अधिक हो। उदाहरण के लिए, यह तय कर दिया जाए कि कर की दर 10% होगी, तो जिस व्यक्ति की आय ₹ 5,000 होगी, वह ₹ 500 कर देगा और जिस व्यक्ति की आय ₹ 20,000 होगी, वह ₹ 2,000 कर देगा।

TOUCH 'n' PASS

आनुपातिक कर के गुण (Merits of Proportional Tax)—आनुपातिक कर के निम्नलिखित गुण हैं—

1. **सरलता**—आनुपातिक कर के आधार पर करों की गणना में सरलता रहती है।
2. **धन का वितरण पूर्ववत् रहना**—आनुपातिक करों में करों से पूर्व और करों के पश्चात् धन के वितरण का अनुपात समान रहता है। उदाहरण के लिए, A और B की आय ₹ 5,000 तथा ₹ 20,000 है। इन पर 10% से ₹ 500 और ₹ 2,000 कर लगता है, तो कर लगाने के पश्चात् शेष राशि ₹ 4,500 और ₹ 18,000 में वही अनुपात है, जो कर लगने से पूर्व की राशि ₹ 5,000 और ₹ 20,000 में है।

आनुपातिक करों के दोष (Demerits of Proportional Tax)—आनुपातिक करों के निम्नलिखित दोष हैं—

1. **न्याय के सिद्धान्त के विरुद्ध**—आनुपातिक कर पद्धति सामाजिक न्याय के सिद्धान्त के विरुद्ध है, क्योंकि धनी व्यक्ति के लिए रुपये की सीमान्त उपयोगिता कम होती है, अत: आय के अनुपात में कर लगा देने से ही गरीब और धनी व्यक्तियों का वास्तविक त्याग आनुपातिक नहीं हो जाता। इससे तो धनी व्यक्तियों का वास्तविक त्याग निर्धन व्यक्तियों के वास्तविक त्याग की तुलना में आनुपातिक रूप से कम बैठता है।
2. **लोच की कमी**—आनुपातिक करों में लोच की कमी रहती है, क्योंकि सभी व्यक्तियों पर एक ही दर से कर लगने के कारण दर को आसानी से घटाया-बढ़ाया नहीं जा सकता।
3. **धन की वितरण की असमानता यथावत् रहना**—इन करों से आय और सम्पत्ति के वितरण में विद्यमान असमानताओं को कम नहीं किया जा सकता।
4. **मितव्ययिता की कमी**—प्रगतिशील करों की तुलना में आनुपातिक कर पद्धति कम मितव्ययी होती है, क्योंकि कर की दरें चाहे जो भी हों उनके वसूली व्यय लगभग समान होते हैं।

2. प्रगतिशील कर (Progressive Tax)

प्रगतिशील कर वह है, जिसमें आय में वृद्धि के साथ करों की दरें भी बढ़ जाती हैं। इसको निम्न तालिका द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है—

प्रगतिशील करारोपण

आय (₹)	कर दर (%)	कर की मात्रा (₹)
1,000	20	200
2,000	30	600
3,000	40	1,200
4,000	50	2,000

प्रगतिशील कर के गुण (Merits of Progressive Tax)—प्रगतिशील कर के निम्नलिखित गुण हैं—

1. **करदेय योग्यता के अनुकूल**—इस कर पद्धति में धनिकों से ऊँची दर से कर लेकर देय योग्यता का पालन किया जाता है। **टेलर** के अनुसार, "प्रगतिशील करों से व्यक्तिगत कर-भार का अनुकूलतम बण्टन (Optimum individual allocation of tax burden) होता है।"
2. **आय और सम्पत्ति के वितरण की असमानताओं में कमी**—प्रगतिशील करों से देश में आय और सम्पत्ति के वितरण में विद्यमान असमानताओं में कमी आती है।
3. **सामाजिक सन्तुष्टि की न्यूनतम हानि**—प्रगतिशील करों से समाज का कुल त्याग न्यूनतम रहता है, क्योंकि धनी व्यक्तियों पर अधिक दर से कर लगाने पर भी सन्तुष्टि का त्याग उस मात्रा में कम रहता है, जितना कि उतनी ही राशि प्राप्त करने के लिए आनुपातिक कर लगाने के कारण होता है।
4. **लोचता**—प्रगतिशील करों में आनुपातिक करों की तुलना में अधिक लोचता पायी जाती है, क्योंकि इसमें कर की दरों में परिवर्तन सरलता से किया जा सकता है।

TOUCH 'n' PASS

प्रगतिशील कर के दोष (Demerits of Progressive Tax)—प्रगतिशील करों में निम्नलिखित दोष पाये जाते हैं—

1. **प्रगतिशील करारोपण के आधार की सही माप सम्भव नहीं है**—प्रगतिशील कर इस मान्यता पर आधारित है कि निर्धन व्यक्ति की तुलना में धनी व्यक्ति के लिए द्रव्य की सीमान्त उपयोगिता कम होती है। यह तथ्य काफी सीमा तक सही है, लेकिन उपयोगिता एक मानसिक स्थिति है, जिसे सही-सही मापा नहीं जा सकता।
2. **बचत और उत्पादन का प्रतिकूल प्रभाव**—प्रगतिशील करों से आय का अधिकांश भाग कर के रूप में चला जाता है, जिससे बचत पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है और इससे विनियोग में कमी आती है। इन दोनों से उत्पादन पर भी प्रतिकूल प्रभाव पड़ने की सम्भावना रहती है।
3. **प्रगतिशील कर निर्धारण का वैधानिक आधार नहीं**—कुछ आलोचकों का मत है कि प्रगतिशील कर की दरों के निर्धारण का कोई निश्चित आधार नहीं होता और इनको प्राय: मनमाने ढंग से निर्धारित किया जाता है।
4. **ईमानदारी, मितव्ययिता और मेहनत को दण्ड**—प्रगतिशील कर का एक दोष यह है कि यह कर ईमानदारी, मितव्ययिता और मेहनत से कार्य करने के लिए दण्ड है।
5. **कर-चोरी की भावना में वृद्धि**—कर की प्रगतिशील दरें करदाताओं में कर-चोरी की भावना को जन्म देती हैं और प्रोत्साहित करती हैं।
6. **संचय और पूँजी निर्माण पर बुरा प्रभाव**—प्रगतिशील कर देश में बचत और संचय की प्रवृत्ति को हतोत्साहित करते हैं, जिसका पूँजी निर्माण पर बुरा प्रभाव पड़ता है।

3. प्रतिगामी कर (Regressive Tax)

प्रतिगामी कर प्रगतिशील कर के विपरीत होता है। इसमें आय में वृद्धि के साथ करों की दरों में कमी होती जाती है। उदाहरण के लिए, यदि ₹ 10,000 तक 10%, ₹ 10,000 से ₹ 20,000 तक 8% और ₹ 20,000 से ₹ 30,000 तक 5% की दर से कर लगाया जाए, तो इसे प्रतिगामी कर कहा जाएगा।

प्रतिगामी कर के लाभ (Advantage of Regressive Tax)—प्रतिगामी कर के निम्नलिखित लाभ हैं—

1. **नशीले और हानिकारक पदार्थों पर रोक**—प्रतिगामी करों को लगाना उस समय लाभदायक माना जाता है, जबकि निर्धन वर्ग द्वारा ऐसी वस्तुओं का उपयोग बढ़ाया जाता है, जिनसे उनका आर्थिक और नैतिक स्तर गिरने लगता है। इसीलिए गांजा, भांग, शराब इत्यादि नशीले पदार्थों पर प्रतिगामी प्रभाव वाले कर लगाये जाते हैं।
2. **आर्थिक स्थिति में सुधार**—प्रतिगामी प्रभाव वाले करों से निर्धन वर्ग द्वारा विलासिता वाली और हानिकारक प्रभाव वाली वस्तुओं के उपयोग में कमी की जाती है, जिससे एक ओर अपनी बचतों को अन्य उपयोगी कार्यों में लगा सकते हैं और दूसरी ओर स्वास्थ्य की स्थिति में सुधार कर सकते हैं।

प्रतिगामी कर की हानियाँ (Disadvantages of Regressive Tax)—प्रतिगामी कर से निम्नलिखित हानियाँ हैं—

1. **अन्यायपूर्ण**—यदि प्रत्यक्ष करों या आवश्यक उपयोग की वस्तुओं पर प्रतिगामी प्रभाव वाली दरों को अपनाया जाता है, तो निर्धन वर्ग की दृष्टि से वे कर अन्यायपूर्ण माने जाएँगे।
2. **अनुत्पादक और अमितव्ययी**—कर एकत्रण की दृष्टि से यह कर अधिक उत्पादक नहीं होते और कर संग्रहण की लागत तुलनात्मक रूप से अधिक आती है।

4. अधोगामी कर (Degressive Tax)

अधोगामी कर वह कर होता है, जिसमें एक सीमा तक तो कर की दरें प्रगतिशील होती हैं और उसके पश्चात् आनुपातिक हो जाती हैं। इसको निम्न तालिका द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है—

आय	कर की दर
₹ 5,000 तक	5%
₹ 5,000 से ₹ 10,000	10%
₹ 10,000 से ₹ 20,000	15%
₹ 20,000 से ऊपर	15%

TOUCH 'n' PASS

अधोगामी कर के लाभ (Advantages of Degressive Tax)—अधोगामी कर के निम्नलिखित लाभ हैं—

1. **आनुपातिक और प्रगतिशील करों के लाभ**—अधोगामी कर में आनुपातिक और प्रगतिशील दोनों प्रकार के करों की विशेषताओं का मिश्रण होता है। इस कारण इस कर में दोनों ही प्रकार के करों के लाभ पर्याप्त सीमा तक प्राप्त किये जा सकते हैं।
2. **धनी वर्ग पर कम प्रभाव**—अधोगामी करों का धनी वर्ग पर कम प्रभाव पड़ता है, तो पूँजी निर्माण और विनियोग प्रोत्साहन की दृष्टि से लाभकारी होता है।

अधोगामी कर की हानियाँ (Disadvantages of Degressive Tax)—अधोगामी करों से निम्नलिखित हानियाँ हैं—

1. **न्यायसंगत न होना**—अधोगामी कर एक सीमा के पश्चात् प्रतिगामी कर का रूप ले लेते हैं, जिससे निर्धन वर्ग पर कुल कर भार अधिक पड़ता है।
2. **आय विषमता में धीमा सुधार**—अधोगामी कर अपनाने में देश में आय और सम्पत्ति की विषमताओं में धीमी गति से सुधार होता है।

प्र.6. लोक ऋण से आप क्या समझते हैं? इसके महत्त्व का वर्णन कीजिए।
What do you understand by Public Debt? Describe its importance.

उत्तर

लोक ऋण का आशय
(Meaning of Public Debt)

लोक ऋण में सरकार द्वारा लिए गये ऋणों को शामिल किया जाता है। सरकार में केन्द्रीय, प्रान्तीय और स्थानीय सरकारें आती हैं। ये ऋण अपने ही देश में से या विदेशों से लिया जा सकता है। सामान्यत: ऋण को एक निश्चित अवधि के पश्चात् एक निश्चित ब्याज की दर सहित लौटाना होता है और ऋण का प्रदान करना ऋणदाता के लिए ऐच्छिक होता है, लेकिन लोक ऋण के सम्बन्ध में निम्न बातें भी उल्लेखनीय हैं—

1. लोक ऋण अनिवार्य हो सकते हैं।
2. लोक ऋण ब्याजरहित हो सकते हैं, लेकिन ब्याजरहित लोक ऋण तभी होने की सम्भावना रहती है, जबकि लोक ऋण अनिवार्य हो, क्योंकि स्वेच्छा होने पर बिना ब्याज के लोक ऋण मिलने की सम्भावना बहुत कम रहती है।
3. सरकार अपने ऋणों का भुगतान मानकर ऋण दायित्व से मुक्त हो सकती है, यद्यपि सामान्यत: ऐसा होता नहीं है।
4. लोक ऋण से प्राप्त राशि को पूँजीगत प्रकृति की प्राप्ति माना जाता है। अत: इसे बजट में पूँजीगत प्राप्ति (Capital Receipts) में दिखाया जाता है।

लोक ऋण का महत्त्व
(Importance of Public Debt)
अथवा
लोक ऋण के उद्देश्य या कारण
(Objectives or Causes of Public Debt)

वर्तमान समय में लोक ऋण का व्यापक समर्थन किया जाता है, क्योंकि इससे अनेक आर्थिक उद्देश्यों की पूर्ति होती है और इससे अर्थव्यवस्था की अनेक आवश्यकताएँ पूरी की जा सकती हैं। सामान्यत: निम्नलिखित उद्देश्यों के लिए लोक ऋण लिये जाते हैं—

1. **प्राकृतिक संकटों से देश की रक्षा करने के लिए** (To save the Country from Natural Calamities)—प्रत्येक देश को समय-समय पर अनेक प्राकृतिक संकटों; जैसे—बाढ़, अकाल, भूकम्प इत्यादि का सामना करना पड़ता है। इन परिस्थितियों में अतिरिक्त वित्त की आवश्यकता पड़ती है, जो देश में संकट के कारण सामान्य वित्तीय साधनों से पूरी नहीं हो पाती और सरकार को लोक ऋण की आवश्यकता पड़ जाती है।
2. **युद्धकालीन वित्त-व्यवस्था के लिए** (To Meet the Need of War Finance)—वर्तमान समय में युद्ध-वित्त अत्यन्त महँगा हो गया है। प्रतिरक्षा सम्बन्धी उपकरणों और व्यवस्थाओं का व्यय इतना अधिक बढ़ गया है कि युद्धकालीन स्थिति में केवल करारोपण से इनकी पूर्ति नहीं हो पाती और लोक ऋण एक अनिवार्य आवश्यकता बन जाता है।

TOUCH 'n PASS

3. **आर्थिक नियोजन की वित्त-व्यवस्था के लिए** (To Finance Economic Planning)—आज का युग आर्थिक नियोजन का युग है और प्रत्येक देश अपने तीव्र आर्थिक विकास के लक्ष्य को ध्यान में रखकर किसी-न-किसी रूप में आर्थिक नियोजन को अपना रहा है। आर्थिक नियोजन में व्यय और विनियोग के लिए अधिक राशि की आवश्यकता होती है, जिसकी पूर्ति के लिए लोक ऋण लेना होता है।
4. **सार्वजनिक निर्माण कार्यों के लिए** (For Financing Public Works Programmes)—सरकार को सार्वजनिक निर्माण कार्यों; जैसे—सड़क निर्माण, रेलवे विकास, बाँध निर्माण इत्यादि पर भारी राशि व्यय करनी होती है। इस राशि की पूर्ति आय के सामान्य साधनों से नहीं की जा सकती और न ही साधनों की कमी के कारण इन कार्यों को अधिक समय तक स्थगित किया जा सकता है। अत: इन कार्यों की वित्त-व्यवस्था के एक साधन के रूप में लोक ऋण को भी अपनाया जाता है।
5. **सरकारी उद्योगों की वित्तीय आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए** (To Meet the Financial Needs of Public Enterprises)—आज प्रत्येक देश विभिन्न कारणों से अपने यहाँ सरकारी उद्योगों का क्षेत्र विस्तृत कर रहा है। इन उद्योगों की स्थापना पर होने वाला व्यय पूँजीगत व्यय होता है और जिससे भविष्य में प्रत्यक्ष आय अर्जन की सम्भावना भी रहती है। अत: इन उद्योगों की वित्तीय आवश्यकताओं के एक बड़े भाग की पूर्ति लोक ऋण के आधार पर की जाती है।
6. **आर्थिक स्थायित्व के लिए** (For Maintaining Economic Stability)—अर्थव्यवस्था में आर्थिक स्थायित्व लाने की दृष्टि से लोक ऋण का महत्त्वपूर्ण स्थान है। **प्रो० लर्नर** का विचार है कि सरकार को केवल धन प्राप्त करने के लिए कभी ऋण नहीं लेना चाहिए। धन तो सरकार नोट छापकर भी प्राप्त कर सकती है। ऋण तो सरकार को तभी प्राप्त करना चाहिए, जब वह उस ऋण द्वारा आर्थिक दशा पर प्रभाव डालना चाहे। लोक ऋण के माध्यम से मुद्रा प्रसार और मुद्रा संकुचन दोनों स्थितियों के समाधान में सहयोग मिलता है।
7. **बजट में अस्थायी घाटों की पूर्ति के लिए** (To Meet Temporary Budget Deficits)—कभी-कभी सरकार को अपने व्यय करने और उनके लिए आय करने की अवधि के अन्तर में अस्थायी घाटों की समस्या का सामना करना पड़ता है। इस घाटे की पूर्ति के लिए भी सरकार अल्पकालीन ऋण प्राप्त कर सकती है।
8. **अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग** (International Cooperation)—वर्तमान समय में एक देश द्वारा दूसरे देश से ऋण प्राप्त करने में जहाँ अनेक आर्थिक दृष्टिकोण रहते हैं वहाँ दूसरी ओर अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग की भावना के आधार पर भी यह ऋण लिए जाते हैं। विदेशी ऋणों से विदेशी विनिमय की समस्या के समाधान में भी सुविधा मिलती है।

अर्द्ध-विकसित या विकासोन्मुख अर्थव्यवस्था में सार्वजनिक ऋण का महत्त्व
(Role of Public Debt in Under-developed or Developing Economy)

अर्द्ध-विकसित अथवा विकासोन्मुख राष्ट्र वे हैं, जो अपने यहाँ विकास की प्रक्रिया आरम्भ कर चुके हैं, लेकिन पूर्ण विकास के लिए लक्ष्य एवं योजनाएँ निर्मित की जा रही हैं। विकास की किसी भी योजना में वित्त की विशिष्ट भूमिका होती है और इसमें सार्वजनिक ऋण का अपना विशिष्ट स्थान होता है, जैसा कि निम्न तथ्यों से स्पष्ट है—

1. **प्राकृतिक संसाधनों के उचित प्रयोग के लिए वित्त-व्यवस्था** (Financing for Proper Utilisation of Natural Resources)—अर्द्ध-विकसित देशों की एक महत्त्वपूर्ण विशेषता यह होती है कि इनमें प्राकृतिक संसाधन अप्रयुक्त तथा अर्द्ध-प्रयुक्त (Unutilised or Under Utilised) अवस्था में होते हैं। सरकार ऋणों के माध्यम से धन एकत्र कर इन संसाधनों के उचित प्रयोग की व्यवस्था कर सकती है।
2. **आर्थिक विकास की योजनाओं के लिए वित्त-व्यवस्था** (Financing for the Plans of Economic Development)—अर्द्ध-विकसित देशों में विकास कार्यक्रमों के संचालन के लिए अनेक योजनाएँ संचालित की जाती हैं, जिनके लिए विशाल धनराशि की आवश्यकता पड़ती है, जिन्हें सरकार आगम के सामान्य स्रोतों से पूरा नहीं कर सकती और सार्वजनिक ऋण का सहारा लेना होता है।
3. **पूँजी निर्माण में सहायक** (Helpful in Capital Formation)—विकासोन्मुख देशों में एक महत्त्वपूर्ण आवश्यकता यह होती है कि पूँजी निर्माण की दर में वृद्धि की जाए। सार्वजनिक ऋण के माध्यम से सरकार जनता में प्रयोग न होने वाली बचतों को प्राप्त कर उत्पादक योजनाओं में विनियोग कर सकती है। इससे पूँजी निर्माण की दर में वृद्धि होती है।

TOUCH 'n' PASS

4. **अनावश्यक उपभोगों पर प्रतिबन्ध** (Restricting Unnecessary Consumptions)—अर्द्ध-विकसित राष्ट्रों में विनियोगों को वांछित दिशा में प्रवाहित करने की दृष्टि से यह आवश्यक होता है कि जनता में अनावश्यक और अत्यधिक विलासिता सम्बन्धी उपभोगों पर प्रतिबन्ध लगाया जाए। सार्वजनिक ऋण के द्वारा सरकार जनता की क्रय-शक्ति का एक भाग कुछ समय के लिए वापस ले सकती है और जनता में अनावश्यक उपभोगों की प्रवृत्ति को नियन्त्रित कर सकती है।
5. **विदेशी तकनीक और प्रबन्धकीय कुशलता का लाभ** (Benefit of Foreign Technology and Managerial Efficiency)—बाहरी ऋणों को प्राप्त करने से केवल वित्त की समस्या ही हल नहीं होती, वरन् विदेशी तकनीक और प्रबन्धकीय कुशलता का लाभ भी मिलता है, जो इन देशों में विकास कार्यों में काफी सहायक होता है।
6. **सीमित करदान क्षमता की समस्या का समाधान** (Solution of the Problem of Limited Taxable Capacity)—अर्द्ध-विकसित देशों में आय का सामान्य स्तर नीचा होने के कारण करदान क्षमता कम होती है और कर भार में अनुचित वृद्धि से उत्पादन तथा रोजगार पर विपरीत प्रभाव पड़ सकता है। अत: इस समस्या को हल करने में सार्वजनिक ऋण का प्रयोग काफी सहायक होता है।

लोक ऋण के प्रकार एवं वर्गीकरण
(Forms and Classification of Public Debt)

लोक ऋण के प्रकार एवं वर्गीकरण का अध्ययन निम्न आधारों पर किया जाता है—

(I) निर्गमन अथवा स्त्रोत के आधार पर (On the Basis of Issue or Sources)

निर्गमन के आधार पर लोक ऋण दो प्रकार का हो सकता है—

1. **आन्तरिक ऋण** (Internal Debt)—यदि लोक ऋण अपने देश की सीमा के अन्दर रहने वाले व्यक्तियों का कार्य करने वाली संस्थाओं से प्राप्त किये जाते हैं, तो ये ऋण आन्तरिक ऋण कहे जाते हैं। **डाल्टन** के अनुसार, "एक ऋण आन्तरिक है, यदि वह उन व्यक्तियों या संस्थाओं द्वारा दिया जाता है जो उस क्षेत्र में जिसे ऋण लेने वाली लोक सत्ता (Public Authority) द्वारा नियन्त्रित किया जाता है।"
2. **बाहरी या विदेशी ऋण** (External or Foreign Debt)—यदि लोक ऋण विदेशों में रहने वाले व्यक्तियों या संस्थाओं से प्राप्त किये जाते हैं, तो वे ऋण बाहरी या विदेशी ऋण कहलाते हैं। **डाल्टन** के अनुसार, "ऋण बाहरी होगा, यदि वह उन व्यक्तियों या संस्थाओं द्वारा दिया जाता है जो उस क्षेत्र से बाहर रहते हैं जिसे ऋण लेने वाली लोक सत्ता द्वारा नियन्त्रित किया जाता है।"

आन्तरिक एवं बाहरी ऋणों में अन्तर (Differences between Internal and External Debt)

आन्तरिक एवं बाहरी ऋणों में अन्तर को निम्न प्रकार स्पष्ट किया जा सकता है—

1. **मुद्रा** (Currency)—आन्तरिक ऋण सामान्यत: अपने देश की मुद्रा में लिया जाता है, जबकि बाहरी ऋण सामान्यत: विदेशी मुद्रा में प्राप्त किये जाते हैं।
2. **ऐच्छिक अथवा अनिवार्य** (Voluntary or Compulsory)—आन्तरिक ऋण ऐच्छिक अथवा अनिवार्य हो सकते हैं, जबकि बाहरी ऋण ऐच्छिक होते हैं।
3. **धन का हस्तान्तरण** (Transfer of Wealth)—आन्तरिक ऋण में धन का हस्तान्तरण एक देश में ही एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति की ओर होता है, जबकि बाह्य ऋण में धन का हस्तान्तरण एक देश से दूसरे देश को होता है।
4. **प्राथमिकता** (Priority)—सामान्यत: सरकार अपने साधनों की पूर्ति के लिए पहले आन्तरिक ऋण का प्रयोग करती है। आन्तरिक ऋण अपर्याप्त होने पर विदेशी ऋण प्राप्त किये जाते हैं।

बाह्य या विदेशी ऋण के पक्ष में तर्क (Arguments in Favour of Foreign Debt)

विकासशील देशों में बाह्य ऋणों के पक्ष में निम्न तर्क दिये जाते हैं—

1. **विदेशी विनिमय की समस्या का हल** (Solution to the Problem of International Exchange)—विकासशील देशों में सामान्यत: निर्यात कम और आयात अधिक होते हैं। इनसे इन देशों में भुगतान सन्तुलन में प्रतिकूल शेष की समस्या बनी रहती है। विदेशी ऋणों द्वारा इस समस्या का हल किया जा सकता है।

TOUCH 'n' PASS

2. **विकास वित्त का स्रोत** (Source of Development Finance)—विकासशील देशों में विकास योजनाओं के लिए विशाल मात्रा में वित्त की आवश्यकता होती है, जिसमें विदेशी ऋण महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा सकते हैं।
3. **विदेशी यान्त्रिक एवं प्रबन्धकीय ज्ञान का लाभ** (Benefit of Foreign Technology and Managerial Efficiency)—विदेशी ऋणों से वित्त के साथ ही विदेशी तकनीकी एवं प्रबन्धकीय ज्ञान भी प्राप्त होता है, जो इन देशों के आर्थिक विकास में सहायक होता है।
4. **संकटकालीन स्थिति** (Crisis Condition)—जब प्राकृतिक प्रकोपों; जैसे—बाढ़, सूखा, तूफान, भूकम्प इत्यादि, से देश में जन-धन की भारी हानि होती है। देश में इस क्षति की पूर्ति के लिए साधनों का अभाव होता है, तो बाह्य ऋणों के अलावा अन्य कोई उपयोगी विकल्प नहीं रह जाता।
5. **आन्तरिक बचतों में वृद्धि** (Growth in Internal Savings)—विदेशी ऋणों से देश में उद्योगों और अन्य उत्पादक क्रियाओं को प्रोत्साहन मिलता है, जिनसे देश में आय और बचत स्तर में वृद्धि होती है।
6. **मुद्रा-स्फीति पर नियन्त्रण** (Control over Inflation)—प्राय: विदेशी ऋणों का अधिकांश भाग उत्पादक कार्यों में प्रयुक्त किया जाता है और इस प्रकार ये ऋण मुद्रा-स्फीति विरोधी कार्य करते हैं।

बाह्य या विदेशी ऋणों के विपक्ष में तर्क (Arguments Against External or Foreign Debt)—

1. **धन का विदेशों को जाना** (Movement of Money to Foreign Countries)—विदेशी ऋण के भुगतान के अतिरिक्त ब्याज के रूप में देश का काफी धन विदेशों को चला जाता है। आन्तरिक ऋणों की स्थिति में ब्याज भुगतान की राशि देश में ही रहती है।
2. **राजनैतिक प्रभुत्व** (Political Dominance)—अधिकांश विदेशी ऋण विदेशी सरकारों से लिए जाते हैं। इसके कारण प्रमुख ऋणदाता देशों का प्रभुत्व बने रहने की सम्भावना उत्पन्न हो जाती है, जो देश के स्वतन्त्र आर्थिक और राजनैतिक निर्णयों को प्रभावित कर सकती है।
3. **मितव्ययिता में कमी** (Reduction in Frugality)—विदेशी ऋण सुविधा से मिलते रहने पर सरकारी व्ययों में फिजूलखर्ची उत्पन्न हो सकती है।
4. **आन्तरिक वित्तीय साधनों का अपर्याप्त विदोहन** (Insufficient Harnessing Internal Means of Finance)—यदि विदेशी ऋण पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध होते रहें, तो आन्तरिक वित्तीय संसाधनों के उचित विदोहन पर अधिक जोर नहीं दिया जाता।

(II) ऋण प्राप्ति की प्रकृति के आधार पर (On the Basis of Nature of Borrowing Debt)

इस आधार पर लोक ऋण दो प्रकार के हो सकते हैं—

1. **ऐच्छिक ऋण** (Voluntary Debt)—यह ऋणदाता की इच्छा पर निर्भर करता है, इसकी प्राप्ति में सरकार का कोई दबाव नहीं होता। सरकार ऋण की राशि, भुगतान का समय, ब्याज की दर इत्यादि के बारे में घोषणा और विज्ञापन करती है। जो व्यक्ति या संस्था इन शर्तों को उचित और अनुकूल समझते हैं, वह सरकार को ऋण प्रदान कर देते हैं। ये ऋण आन्तरिक या बाहरी किसी भी प्रकार के हो सकते हैं।
2. **अनिवार्य ऋण** (Compulsory Debt)—जब सरकार अपनी सत्ता का प्रयोग नागरिकों को ऋण देने को मजबूर करती है, तो ऐसे ऋणों को अनिवार्य ऋण कहा जाता है। युद्ध और तीव्र मुद्रा स्फीतिक परिस्थितियों में इस प्रकार के ऋणों का प्रचलन रहता है। वार्षिकी जमा योजना (Annuity Deposit Scheme) और अनिवार्य जमा योजना (Compulsory Deposit Scheme) इस प्रकार के ऋण के उल्लेखनीय उदाहरण हैं। सामान्यत: ये ऋण आन्तरिक ही होते हैं।

(III) ऋण के प्रयोग के आधार पर (On the Basis of Use of Debt)

ऋण के प्रयोग के आधार पर भी लोक ऋणों को दो भागों में विभक्त किया जाता है—

1. **उत्पादक या पुनरुत्पादक ऋण** (Productive or Reproductive Loans)—उत्पादक ऋण वे होते हैं, जिनका प्रयोग ऐसे कार्यों में किया जाता है, जिनके बदले में इतनी राशि प्राप्त की जा सके कि मूलधन और ब्याज का भुगतान किया जा सके। इस आधार पर उद्योगों, सिंचाई, परिवहन योजनाओं और विकास कार्यक्रमों पर किये जाने वाले व्ययों के लिए लिये गये ऋणों को उत्पादक ऋण कहा जा सकता है।

TOUCH 'n' PASS

2. **अनुत्पादक या मृत भार ऋण** (Unproductive or Dead Weight Loans)—अनुत्पादक ऋण उन्हें कहा जाता है, जिनसे प्राप्त राशि को ऐसे उपयोगों में लाया जाता है, जिनसे बराबर की सम्पत्ति का निर्माण नहीं होता या सरकार को प्रत्यक्ष रूप से आय प्राप्त नहीं होती। उदाहरण के लिए, युद्ध, बाढ़, अकाल इत्यादि के लिए किये जाने वाले व्ययों की दृष्टि से लिए गये ऋणों को अनुत्पादक ऋण कहा जाता है। इस ऋण को परिभाषित करते हुए **डाल्टन** ने लिखा है कि "अनुत्पादक ऋण वह है, जिसके पीछे कोई वर्तमान सम्पत्ति नहीं होती (A debt to which no existing assets correspond)।"

(IV) ऋण की अवधि के आधार पर (On the Basis of Duration of Debt)

ऋण की अवधि के आधार पर लोक ऋणों को दो भागों में बाँटा जाता है—

1. **अल्पकालीन ऋण** (Short-term Debt)—जब ऋण कम अवधि के होते हैं, तो इन्हें अल्पकालीन ऋण कहा जाता है। इस ऋण को अकोषित ऋण (Unfunded Debt) भी कहते हैं, क्योंकि इनके भुगतान के लिए सरकार कोई कोष नहीं बनाती।
2. **दीर्घकालीन ऋण** (Long-term Debt)—लम्बे समय के ऋणों को दीर्घकालीन ऋण कहा जाता है। इन ऋणों के भुगतान के लिए सरकार कोष का निर्माण करती है अत: इसे कोषित ऋण (Funded Debt) भी कहा जाता है।

(V) ऋणों के भुगतान के आधार पर (On the Basis of Repayment of Debt)

ऋणों के भुगतान के आधार पर लोक ऋणों को दो भागों में विभाजित किया गया है—1. शोध्य ऋण (Redeemable loans) और 2. अशोध्य ऋण (Irredeemable loans)। **प्रो० जे० के० मेहता** के अनुसार, "शोध्य ऋण वे हैं, जिनको सरकार द्वारा एक भावी तिथि पर भुगतान करने का वचन दिया जाता है।" इसके विपरीत यदि ऐसा वायदा नहीं किया जाता तो इन्हें अशोध्य ऋण कहते हैं। अशोध्य ऋणों में सरकार ब्याज के भुगतान की गारण्टी तो करती है लेकिन मूलधन के भुगतान की तिथि निश्चित नहीं करती। वर्तमान समय में अशोध्य लोक ऋण बहुत कम होते हैं।

प्र.7. लोक ऋण भार का वर्णन करते हुए इसे प्रभावित करने वाले प्रमुख घटक को बताइए।
Describing public debt burden, state the major factors affecting it.

उत्तर

लोक ऋण का भार
(Burden of Public Debt)

लोक ऋण के विश्लेषण की विभिन्न समस्याओं में 'लोक ऋण के भार' की समस्या सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है, क्योंकि इसके विश्लेषण में काफी भ्रम बना हुआ है। **प्रो० टेलर** ने लिखा है कि "लोक ऋण के भार की प्रकृति तथा गम्भीरता को अधिकांशत: गलत ढंग से समझा जाता रहा है।" एक महत्त्वपूर्ण भ्रान्ति यह है कि ऋण के एक पक्ष अर्थात् भुगतान को ही ध्यान में रखा जाता है और सरकार द्वारा उस ऋण के बदले उत्पन्न की गई सम्पत्तियों या साख को ध्यान में नहीं रखा जाता।
लोक ऋण के भार का अध्ययन करने में हमें भार की प्रकृति और भार को निर्धारित करने वाले घटकों को ध्यान में रखना होगा, जो निम्न प्रकार हैं—

(I) ऋण भार की प्रकृति या प्रकार (Nature or Kinds of Burden of Debt)

डाल्टन ने ऋण के भार को निम्न चार वर्गों में विभाजित किया है—

1. **प्रत्यक्ष मौद्रिक भार** (Direct Money Burden)—सरकार द्वारा ऋण लेने के पश्चात् उसके मूलधन और ब्याज का भुगतान करना होता है। यदि इस भुगतान के कर लगाये जाते हैं, तो ऐसी कर-राशि का लोक ऋण का प्रत्यक्ष मौद्रिक भार कहा जाएगा।
2. **प्रत्यक्ष वास्तविक भार** (Direct Real Burden)—लोक ऋण के मूलधन और ब्याज के भुगतान के लिए लगाये गये करों से जनता या समाज द्वारा किये जाने वाले आर्थिक कल्याण के त्याग को ऋण का वास्तविक भार कहा जाता है। यदि सरकार ने ऋणों को अनिवार्य रूप से लिया है, तो कुछ व्यक्ति ऐसे हो सकते हैं, जिन्हें अपने उपभोगों को कम करके ऋण देना पड़े, तो उपभोग की इस कमी से होने वाले त्याग को भी प्रत्यक्ष वास्तविक भार में शामिल किया जा सकता है।

TOUCH 'n' PASS

3. **अप्रत्यक्ष मौद्रिक भार** (Indirect Money Burden)—लोक ऋण के मूलधन और ब्याज के भुगतान के लिए या तो सरकार अतिरिक्त कर लगाती है या लोक व्ययों में कमी करती है। इनमें देश में उत्पादन पर विपरीत प्रभाव पड़ने की सम्भावना रहती है और मुद्रा के रूप में उत्पादन की इस कमी को ऋण का अप्रत्यक्ष मौद्रिक भार कहा जाएगा।
4. **अप्रत्यक्ष वास्तविक भार** (Indirect Real Burden)—लोक ऋण के भुगतान के फलस्वरूप यदि सरकार लोक व्ययों में कमी करती है, तो इससे समाज के कल्याण में जो कमी आती है, उसे ऋण का अप्रत्यक्ष वास्तविक भार कहा जाता है।

[यहाँ यह उल्लेखनीय है कि यदि लोक ऋण को ऐसे उत्पादकीय कार्यों में विनियोजित कर दिया जाता है, जिससे इतनी आय होती रहती है कि जनता पर कर का अतिरिक्त भार डाले बिना मूलधन और ब्याज की वापसी हो जाती है, तो लोक ऋण का मौद्रिक भार नहीं पड़ेगा और वास्तविक भार की प्रकृति भी बदल जाती है।]

(II) ऋण भार को प्रभावित करने वाले घटक (Factors Affecting Burden of Debt)

ऋण भार का विचार करते समय उन विभिन्न घटकों को ध्यान में रखना होगा, जो ऋण भार को प्रभावित करते हैं या ऋण भार को स्पष्ट करने में सहायक होते हैं। यह घटक निम्नलिखित हैं—

1. **आन्तरिक और बाहरी ऋण** (Internal and External Debt)—ऋण भार को प्रभावित करने वाला एक महत्त्वपूर्ण घटक यह है कि ऋण आन्तरिक है या विदेशों से लिया गया है। इन दोनों के ऋण भार की स्थिति निम्न प्रकार है—

   (अ) **आन्तरिक ऋण का भार** (Burden of Internal Debt)—आन्तरिक ऋण में सम्पूर्ण समाज की दृष्टि से कोई प्रत्यक्ष मौद्रिक भार नहीं होता, क्योंकि कर देश में से ही प्राप्त होते हैं और ऋण पत्रों पर मूलधन और ब्याज की वापसी भी देश में ही रहती है, अत: यह तो हो जाता है कि देश में ही एक समूह (करदाताओं) से दूसरे समूह (ऋणदाताओं) को क्रय शक्ति का हस्तान्तरण हो जाता है, लेकिन कुल मिलाकर समाज पर कोई प्रत्यक्ष मौद्रिक भार नहीं पड़ता।

   जहाँ तक आन्तरिक ऋण के वास्तविक भार का प्रश्न है, यह इस बात पर निर्भर करता है कि लोक ऋण का स्वामित्व किन हाथों में है। सामान्यत: यही कहा जा सकता है कि इन ऋणों का स्वामित्व समाज के एक वर्ग और विशेषकर धनी वर्ग के ही हाथों में होता है, जबकि ऋणों के भुगतान के लिए कर पूरे समाज पर लगाये जाते हैं अत: ऋण का शुद्ध वास्तविक भार (Net Real Burden) अवश्य पड़ता है। यह शुद्ध वास्तविक भार उतना ही अधिक होगा, जितना अधिक ऋण का स्वामित्व धनी वर्ग के हाथों में होगा और उतना ही कम होगा, जितना अधिक ऋण का स्वामित्व समाज में विस्तृत रूप में फैला होगा।

   आन्तरिक ऋण का अप्रत्यक्ष मौद्रिक भार इस बात पर निर्भर करेगा कि ऋण का प्रयोग किस कार्य के लिए किया गया है। यदि ऋण से उत्पादकीय उपक्रम स्थापित किये गये हैं, तो उनकी आय से ही ऋण का भुगतान हो जाएगा और अप्रत्यक्ष मौद्रिक भार नहीं पड़ेगा। इसके विपरीत यदि ऋण का प्रयोग युद्ध इत्यादि की वित्त व्यवस्था में हो जाता है, तो इसका अप्रत्यक्ष मौद्रिक भार पड़ता है।

   (ब) **विदेशी ऋण का भार** (Burden of External Debt)—विदेशी ऋण में ऋण का प्रत्यक्ष मौद्रिक भार रहता है, क्योंकि विदेशी ऋण के भुगतान के लिए जनता पर जो कर लगाये जाते हैं वह राशि ऋणदाता देश को चली जाती है। प्रत्यक्ष वास्तविक भार का अनुमान समाज के आर्थिक कल्याण में उस हानि से लगाया जा सकता है, जिसे देश के नागरिकों को विदेशी ऋणों के भुगतान में देश की वस्तुओं और सेवाओं के निर्यात के कारण सहना पड़ता है। प्रत्यक्ष वास्तविक भार की मात्रा इस बात पर निर्भर करेगी कि देश को जिन वस्तुओं और सेवाओं के उपभोग से वंचित रहना होता है, वह आवश्यक, आरामदायक या विलासिता वर्ग में किस वर्ग की वस्तुएँ और सेवाएँ हैं।

   विदेशी ऋण का अप्रत्यक्ष भार तभी पड़ता है जबकि ऋण का प्रयोग उत्पादकीय कार्यों में न किया जाए और ऋण के भुगतान के लिए अतिरिक्त करारोपण करना पड़े या लोक व्ययों में कमी की जाए।

2. **ऋण का उद्देश्य** (Purpose of Loan)—ऋण का भार इस तथ्य से महत्त्वपूर्ण रूप से प्रभावित होता है कि ऋण का प्रयोग किन कार्यों के लिए किया जा रहा है। यदि ऋण का प्रयोग उत्पादकीय और विकास कार्यों के लिए जाता है, तो

TOUCH 'n PASS

इसका भार न्यूनतम रहता है और इसका जितना अधिक प्रयोग गैर-उत्पादकीय कार्यों के लिए किया जाता है उतना ही इसका भार अधिक पड़ेगा।

[यहाँ यह उल्लेखनीय है कि अनेक बार ऋण किसी प्रयोग के लिए न लिए जाकर—राज्य-कोषीय नीति की दृष्टि से लिए जाते हैं; जैसे—मुद्रा प्रसार के समय मुद्रा की अतिरिक्त मात्रा को कम करने के लिए ऋण लेना। इससे मूल्य स्तर में जो कमी आती है उससे ऋण का भार काफी कम हो सकता है।]

3. **ऋण की अनिवार्यता** (Compulsion of Loan)—ऋण की ऐच्छिकता और अनिवार्यता से भी ऋण का तात्कालिक भार प्रभावित होता है। यदि ऋण ऐच्छिक रूप से लिए गये हैं, तो केवल वे व्यक्ति ऋण देंगे जिन पर बचत का आधिक्य है और जो इस आधिक्य को सरकारी ऋणों में विनियोजित करना लाभदायक समझते हैं। ऐसी परिस्थिति में ऋण का कोई तात्कालिक भार नहीं होगा। यदि ऋण अनिवार्य रूप से लिए गये हैं, तो अनेक ऐसे नागरिकों को कर देना पड़ सकता है, जिन पर बचत न हो, जिसके कारण व्ययों की पूर्ति के लिए उन्हें स्वयं ऋण लेना पड़े या व्ययों में कटौती करनी पड़े। ऐसी परिस्थिति में ऋण का भार अधिक बैठता है।
4. **ऋण का स्वामित्व एवं कर प्रभाव** (Ownership of Loan and Tax Effects)—आन्तरिक ऋण में ऋण के स्वामित्व प्रारूप और ऋण भुगतान के लिए लगाये गये कर से प्रभावित वर्ग के प्रारूप से भी कर-भार प्रभावित होता है। इस सम्बन्ध में सामान्य निष्कर्ष निम्न हैं—(अ) यदि ऋण स्वामित्व का प्रारूप धनी व्यक्तियों के पक्ष में अधिक है और अतिरिक्त करों से निर्धन वर्ग अधिक प्रभावित होता है, तो ऋण भार अधिकतम होगा। (ब) यदि ऋण स्वामित्व का प्रारूप निर्धन व्यक्तियों के पक्ष में अधिक है और अतिरिक्त करों से धनी वर्ग अधिक प्रभावित होता है, तो ऋण भार न्यूनतम होगा। (स) यदि ऋण स्वामित्व का प्रारूप करों के भार से प्रभावित वर्ग के समान है, तो ऋण का मौद्रिक भार भले ही न पड़े, लेकिन ऋण में धन विनियोजित करने पर कोई अतिरिक्त लाभ न होने से (क्योंकि लगभग उतनी राशि कर के रूप में चली जाएगी) निराशा के रूप में ऋण का भार अवश्य रहेगा।

(III) ऋण भार का मापन (Measurement of Burden of Debt)

वस्तुगत रूप से ऋण भार के मापन के लिए निम्न मापदण्डों का प्रयोग किया जा सकता है—

1. **राष्ट्रीय आय में ऋण का अनुपात** (Ratio of Loan in National Income)—**प्रो० डोमर** (Domar) के अनुसार, "ऋण के भार को कुल राष्ट्रीय आय में कुल ऋण के रूप में परिभाषित किया जाना चाहिए।" अर्थात् उन्होंने ऋण भार के मापने के लिए निम्न सूत्र दिया है—

$$\text{ऋण का भार} = \frac{\text{कुल ऋण}}{\text{कुल राष्ट्रीय आय}}$$

इसका अर्थ यह है कि केवल ऋण की मात्रा से ही ऋण के भार का अनुमान नहीं लगाया जा सकता। यदि ऋण की मात्रा बढ़ रही है और उसके साथ ही राष्ट्रीय आय में भी उसी अनुपात या उसके अधिक अनुपात में वृद्धि हो रही है, तो ऋण भार में वृद्धि नहीं होगी। इसके विपरीत कुल ऋण घट जाए और राष्ट्रीय आय में उस अनुपात से अधिक कमी हो जाए, तो ऋण का भार बढ़ जाएगा।

2. **ऋण पर ब्याज का राष्ट्रीय आय में अनुपात** (Ratio of Interest of Loan in National Income)—यदि ऋण का भार केवल ब्याज की दृष्टि से निकालना हो, तो राष्ट्रीय आय में ब्याज का अनुपात निकालकर ज्ञात किया जा सकता है।
3. **वार्षिक बजट में वार्षिक ऋण व्यय का अनुपात** (Ratio of Annual Loan Expenditure in Annual Budget)—वार्षिक भुगतान के रूप में कर भार निकालने के लिए वार्षिक बजट की राशि में वार्षिक ऋण-व्ययों का अनुपात निकाला जाता है।
4. **प्रति व्यक्ति ऋण या ब्याज का भार** (Loan per Person or Burden of Interest)—जनसंख्या और ऋण का सम्बन्ध ज्ञात करने की दृष्टि से कुल ऋण दायित्व या ब्याज दायित्व में जनसंख्या का भाग देकर प्रति व्यक्ति ऋण या ब्याज का भार ज्ञात किया जा सकता है।
5. **देश की कुल सम्पत्ति में ऋण दायित्वों का अनुपात** (Ratio of Loan Responsibilities in Total Assets)—ऋण भुगतान की क्षमता की दृष्टि से देश की कुल सम्पत्ति में ऋण दायित्वों का अनुपात निकाला जा सकता है।

TOUCH 'n PASS

6. **ऋण और ब्याज भुगतान और उसके लिए लगाये गये करों का अनुपात** (Ratio of Loan and Interest Payment and Taxes Applied for Them)—ऋणों का प्रत्यक्ष मौद्रिक भार ज्ञात करने के लिए ऋण और ब्याज का भुगतान और उसके लिए लगाये गये करों का अनुपात ज्ञात किया जाता है।

उपर्युक्त विभिन्न मापदण्ड विभिन्न दृष्टिकोणों से कर-भार के मापने में सहायता करते हैं।

प्र.8. लोक ऋण के आर्थिक प्रभाव पर प्रकाश डालिए।
Throw light on the economic effects of Public Debt.

उत्तर

लोक ऋण के आर्थिक प्रभाव
(Economic Effects of Public Debt)

लोक ऋणों के आर्थिक प्रभाव का विश्लेषण सरल नहीं है, क्योंकि लोक ऋण की कई अवस्थाओं का अर्थव्यवस्था पर प्रभाव पड़ता है। ये अवस्थाएँ हैं—1. जनता से ऋण लेते समय, 2. ऋण का प्रयोग करते समय तथा 3. ऋण का भुगतान करते समय।

(I) ऋण लेते समय प्रभाव

ऋण लेते समय के प्रभावों का विश्लेषण करने की दृष्टि से यह ध्यान रखना आवश्यक है कि ऋण का स्रोत क्या है? ऋण आन्तरिक और विदेशी हो सकते हैं। आन्तरिक ऋण जनता से या बैंकों और वित्तीय संस्थाओं से लिए जा सकते हैं। यदि विदेशी ऋण लिए जाते हैं, तो सामान्यत: इनसे देश में उपभोग और उत्पादन के स्तर में वृद्धि होती है। इसका कारण यह है कि अधिकांश विदेशी ऋण उत्पादकीय कार्यों के लिए या आवश्यक उपभोग की वस्तुओं को उपलब्ध कराने के लिए, लिये जाते हैं। यदि ऋण आन्तरिक हैं और जन-सामान्य से लिए गये हैं, तो इसके निम्न प्रभाव पड़ते हैं—

1. **उपयोग पर प्रभाव**—अधिकांशत: जनता द्वारा अपनी पिछली बचतों में से सरकारी ऋणों का क्रय किया जाता है और इससे चालू उपभोग में कमी नहीं आती। जिन व्यक्तियों की बचतें अप्रयुक्त पड़ी हुई हैं उनके द्वारा सरकारी ऋणों के क्रय करने से उपभोग स्तर में वृद्धि की सम्भावना रहती है, क्योंकि उनका रुपया अत्यधिक तरल प्रतिभूतियों में विनियोजित हो जाता है और उस पर भी एक निश्चित आय के मिलने का आश्वासन हो जाता है। यदि सरकार ने ऋण छोटी-छोटी रकमों के ऋण-पत्रों या बॉण्डों के माध्यम से लिया है, तो कुछ ऐसे व्यक्तियों के उपभोग स्तर में कमी हो सकती है, जो चालू व्यय में कुछ कटौती करके कटौती की राशि सरकारी ऋणों में विनियोजित कर देते हैं।
2. **उत्पत्ति पर प्रभाव**—लोक ऋण प्राप्त करते समय धन का स्थानान्तरण निजी बचत और विनियोग से सरकारी क्षेत्र की ओर होता है। अत: ऋण प्राप्त करते समय केवल निजी क्षेत्र के उत्पादन पर प्रभाव का प्रश्न उठता है। अत: यदि जनता ने अप्रयुक्त पड़ी बचतों से लोक ऋण का क्रय किया है, तो उसका उत्पादन पर प्रभाव नहीं पड़ता और यदि जनता बैंकों और उद्योगों में जमा राशियों को निकाल कर लोक ऋणों का क्रय करती है, तो उससे उत्पादन पर विपरीत प्रभाव पड़ने की सम्भावना रहती है।
   लोक ऋण लेने का उत्पादन की दृष्टि से एक अच्छा प्रभाव यह पड़ने की सम्भावना रहती है कि लोक ऋण सुरक्षित होने के कारण नागरिकों में अधिक कार्य करके अधिक आय प्राप्त करने और अधिक बचत करने की इच्छा में वृद्धि होती है।
3. **वितरण पर प्रभाव**—ऋण लेते समय वितरण पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता, क्योंकि जो व्यक्ति ऋण प्रदान करते हैं, उनसे मौद्रिक हस्तान्तरण मात्र होता है और ऋण की राशि पर स्वामित्व ऋणदाताओं का ही रहता है।
4. **आर्थिक स्थायित्व पर प्रभाव**—ऋण लेने का आर्थिक स्थायित्व पर उल्लेखनीय प्रभाव पड़ता है, विशेषकर मुद्रा प्रसार के समय ऋण लेने से मुद्रा-प्रसारिक प्रवृत्तियों पर नियन्त्रण लगता है। मन्दी के समय भी बैंकों से ऋण लेकर मन्दी समाप्त करने की प्रक्रिया का प्रारम्भ किया जा सकता है।

(II) ऋण का प्रयोग करते समय

सरकार द्वारा ऋण के प्रयोग करने में धन का अन्तरण सरकार से जनता की ओर होता है। इस प्रक्रिया का आर्थिक प्रभाव निम्न प्रकार होता है—

1. **उपभोग पर प्रभाव**—लोक ऋण के प्रयोग का उपभोग पर सामान्यत: अच्छा प्रभाव पड़ता है। इसके कई कारण हैं—(i) अधिक लोगों को रोजगार मिलता है, (ii) लोगों की आय में वृद्धि होती है, तथा (iii) देश में वस्तुओं और सेवाओं की उपलब्धता में वृद्धि होती है।

TOUCH 'n' PASS

2. **उत्पादन पर प्रभाव**—लोक ऋण के व्यय करने से उत्पादन पर भी सामान्यत: अच्छा प्रभाव पड़ता है। सामान्यत: सरकार ऋण का प्रयोग पूँजीगत व्ययों, बाँध, सड़कों के निर्माण और उद्योगों की स्थापना पर किया जाता है। इन सभी से देश में उत्पादन क्षमता और उत्पादन में वृद्धि होती है।
3. **वितरण पर प्रभाव**—लोक ऋण के व्यय का वितरण पर मिश्रित प्रभाव पड़ता है। ऋण के प्रयोग के उस भाग से तो निर्धन वर्ग की समृद्धि होती है, जो जन-उपयोगी और जन-कल्याणकारी कार्यों तथा रोजगार बढ़ाने की योजनाओं पर व्यय किया जाता है। इसके विपरीत ऋण के प्रयोग के उस भाग से धनी वर्ग की समृद्धि बढ़ती है, जो उद्योगों और व्यापार की सहायता पर व्यय किये जाते हैं।
4. **आर्थिक स्थायित्व पर प्रभाव**—आर्थिक स्थायित्व के क्षेत्र में लोक ऋण की विशिष्ट भूमिका रहती है। मुद्रा प्रसार के समय लोक ऋण का प्रयोग उत्पादन वृद्धि और शीघ्र फल देने वाली योजनाओं में करने पर मुद्रा-प्रसारिक प्रवृत्ति पर रोक लगायी जा सकती है। इसी प्रकार, मन्दी काल में लोक ऋण का प्रयोग निर्माण कार्यों पर करके रोजगार में वृद्धि की जा सकती है, जिसकी प्रभावशाली माँग में वृद्धि हो सके तथा मन्दी काल के प्रभाव समाप्त हो सके।

प्र.9. पूँजी कर का विस्तृत रूप से वर्णन कीजिए।
Explain Capital Levy in detail.

उत्तर

पूँजी कर
(Capital Levy)

सार्वजनिक ऋणों के भुगतान के लिए एक विधि पूँजी कर विधि है। इस व्यवस्था के अन्तर्गत ऋणों के भुगतान के लिए एक बार में ही सम्पत्ति तथा धन कर पर काफी ऊँची दर से कर लगा दिया जाता है। इस कर को 'ऋण वापसी का विशेष कर' (Special Debt Redemption Levy) भी कहा गया है।

सर्वप्रथम पूँजी कर के पक्ष में तर्क नैपोलियन युद्ध के पश्चात् ऋण चुकाने की व्यवस्था के लिए रिकॉर्डो ने दिये थे। बाद में डाल्टन, एजवर्थ और पीगू इत्यादि द्वारा भी युद्ध के लिए लिये गये भारी ऋणों के भुगतान के लिए इस कर का समर्थन किया गया, लेकिन फिण्डले शिराज, बैस्टेबिल और जोसिया स्टैम्प इत्यादि द्वारा इस कर का विरोध किया गया। दूसरे शब्दों में, पूँजी कर का प्रश्न, निरन्तर वाद-विवाद का विषय रहा है, और इसके पक्ष तथा विपक्ष में दोनों दृष्टियों से तर्क दिये जाते रहे हैं, जो निम्न प्रकार हैं—

पूँजी कर के पक्ष में तर्क (Argument in Favour of Capital Levy)

1. **निर्धन और धनी वर्ग द्वारा त्याग में समानता**—पूँजी कर के पक्ष में एक तर्क यह दिया जाता है कि युद्ध काल में निर्धन और मध्यम वर्ग के व्यक्ति युद्ध में जान देकर काफी त्याग करते हैं, लेकिन धनी वर्ग व्यापार और उद्योग में काफी लाभ कमाते हैं। अत: धनी वर्ग द्वारा समान त्याग करने की दृष्टि से आवश्यक है कि युद्ध काल में उनके द्वारा अर्जित पूँजी पर पर्याप्त ऊँची दर से कर लगाया जाए।
2. **ऋण भार से एक साथ मुक्ति**—पूँजी कर से ऋण का भुगतान एक साथ हो जाने से ऋण भार से एक साथ मुक्ति मिल जाती है और ऋण भुगतान के लिए विभिन्न वैकल्पिक व्यवस्थाओं के अपनाने की आवश्यकता नहीं होती।
3. **अर्थव्यवस्था पर सामान्य करों का सामान्य भार रहना**—पूँजी कर से ऋणों के भुगतान हो जाने पर सामान्य कर यथावत बने रहते हैं और ऋणों के भुगतान के लिए सामान्य करों में परिवर्तन की आवश्यकता नहीं रहती।
4. **सामाजिक कल्याण पर अधिक ध्यान**—पूँजी कर से ऋणों के भुगतान कर की समस्या का समाधान हो जाने पर सरकार अपनी आय से सामाजिक कल्याण की पूर्ति की ओर अधिक ध्यान दे सकती है।
5. **सम्पत्ति के वितरण की असमानताओं में कमी**—सम्पत्ति के वितरण की असमानताओं में कमी की दृष्टि से भी पूँजी कर का समर्थन किया जाता है।
6. **उद्योग एवं व्यापार का विकास**—पूँजी कर लगाये जाने से देश ऋण-भार से मुक्त हो जाता है और भविष्य में करारोपण की आवश्यकता नहीं रहती, जिससे उत्पादन और विनियोग में प्रगति होती है।

पूँजी कर के विपक्ष में तर्क (Argument Against Capital Levy)

1. **ऋण भुगतान सभी वर्गों का दायित्व**—ऋण के भुगतान का भार समाज के सभी वर्गों पर डाला जाना चाहिए और केवल सम्पत्ति वाले वर्ग (property owning class) पर इसका भार डालना अन्यायपूर्ण होगा।

TOUCH 'n PASS

2. **बचत और मितव्ययिता को दण्ड**—पूँजी कर बचत और मितव्ययिता के प्रति दण्ड होता है अर्थात् जिन व्यक्तियों ने अधिक परिश्रम और कुशलता से पूँजी अर्जन की है तथा बचत और मितव्ययिता से उसे बचाकर रखा है, पूँजी कर उन्हीं पर भार बन जाता है।
3. **पूँजी का विदेशों को स्थानान्तरण**—यदि एक बार किसी देश में पूँजी कर लगा दिया जाता है, तो इसकी पुनरावृत्ति होने की सम्भावना रहती है, जिसके भय से पूँजी का विदेशों को स्थानान्तरण हो सकता है।
4. **व्यावसायिक पूँजी में कमी**—पूँजी कर लगने से देश में व्यावसायिक और औद्योगिक पूँजी में कमी आ जाएगी, जिससे देश में विद्यमान साहसी क्षमता को ठेस पहुँच सकती है।
5. **जनता में अविश्वास**—पूँजी कर से लोगों में अविश्वास पैदा हो सकता है और विनियोग में कमी कर सकते हैं, क्योंकि उन्हें यह डर रहता है कि सरकार कभी भी उन पर पूँजी कर लगाकर बड़ी मात्रा में धन वसूल कर लेगी। इसका उत्पादन और आर्थिक विकास पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ सकता है।
6. **प्रशासनिक कठिनाइयाँ**—पूँजी कर अल्पकालिक कर होता है, जिसकी दृष्टि से प्रशासनिक कठिनाइयाँ आ सकती हैं अर्थात् उस कर प्रशासन के लिए विशिष्ट स्टाफ की व्यवस्था करनी होगी और सम्पत्ति के मूल्यांकन में विविध कठिनाइयाँ आएँगी।

पूँजी कर के विपक्ष में यह भी कहा जाता है कि "भारी पूँजी कर लगाने का निश्चित परिणाम कपट, असमानता, व्यावसायिक बाधाएँ और व्यक्तिगत कठिनाइयाँ होगा।"

प्र.10. कर-भार से आप क्या समझते हैं? विस्तार से लिखिए।

What do you understand by Tax Burden? Write in detail.

उत्तर करों का भुगतान जनता के लिए आवश्यक, लेकिन कष्टदायक होता है। अत: कर भुगतान में होने वाले कष्ट या त्याग को न्यूनतम करने के लिए कर-भार के न्यायपूर्ण वितरण पर जोर दिया जाता है।

कर-भार के वितरण या करारोपण में न्याय के सम्बन्ध में दो मुख्य विचारधाराएँ
(Two Main Ideologies Related to Law in Tax Burden Distribution or Taxation)

कर-भार के उचित वितरण या करारोपण में न्याय के सम्बन्ध में दो मुख्य विचारधाराएँ रही हैं, जो निम्न प्रकार हैं—

1. **लाभ दृष्टिकोण** (Benefit Approach)—आधुनिक रूप में इस दृष्टिकोण का प्रारम्भ एडम स्मिथ से होता है और Lindahl के ऐच्छिक विनिमय सिद्धान्त तक इस दृष्टिकोण का विकास होता है।
2. **कर-देय योग्यता का दृष्टिकोण** (Ability to pay Approach)—इस विचारधारा का प्रारम्भ भी एडम स्मिथ के समय से होता है और पीगू तथा डाल्टन तक इस दृष्टिकोण को विकसित किया गया।

लाभ का सिद्धान्त
(Benefit Principle of Taxation)

जे० एस० मिल ने इस सिद्धान्त को 'जैसे को तैसा सिद्धान्त' *(Quid pro quo)* का नाम दिया है। सामान्य भाषा में इस सिद्धान्त को इस प्रकार रखा जा सकता है कि सरकार द्वारा किये जाने वाले कार्यों और सेवाओं (सार्वजनिक व्यय) से समाज को लाभ होता है। अत: इन लाभों को प्रदान करने की लागतों को विभिन्न व्यक्तियों में उनके द्वारा प्राप्त लाभों के अनुपात में विभाजित कर देना चाहिए। इस सिद्धान्त के दो आधार हैं—**प्रथम,** करों के औचित्य को सिद्ध करने के लिए लाभ का प्रयोग किया जाता है। **दूसरे,** यह लाभ ही कर-भार के वितरण में एक प्रमाप (standard) का कार्य करता है।

लाभ के सिद्धान्त का अर्थ (Meaning of Benefit Principle of Taxation)

लाभ के सिद्धान्त को दो अर्थों में रखा जा सकता है—

1. सेवा की लागत का सिद्धान्त (Cost of Service Principle) तथा 2. सेवा का मूल्य सिद्धान्त (Value of Service Principle)।

प्रथम अर्थ के अनुसार, प्रत्येक व्यक्ति को करों के रूप में उस सेवा की लागत का भुगतान करना चाहिए, जिस सेवा का उसने उपभोग किया है, अर्थात् राज्य नागरिकों के लिए जो सेवाएँ प्रदान करता है, उनकी वास्तविक लागत के अनुसार ही कर की दर निर्धारित की जानी चाहिए।

TOUCH 'n' PASS

दूसरे अर्थ के अनुसार, प्रत्येक व्यक्ति को कर के रूप में उतनी राशि देनी चाहिए, जो वह सरकार से प्राप्त सेवाओं और सुविधाओं का मूल्य समझता है। यदि लाभ सिद्धान्त के इन दोनों अर्थों का गहन विश्लेषण किया जाए, तो स्पष्ट होगा कि इन दोनों में अधिक अन्तर नहीं है और दोनों ही अर्थों में सेवा की लागत कर निर्धारण आधार रहती है।

प्रो० टेलर ने लिखा है, "दोनों सिद्धान्त अनिवार्य रूप से समान हैं, क्योंकि दोनों के अनुसार, सरकार नागरिकों के लिए अर्द्ध-व्यावसायिक स्थिति में रहती है। यद्यपि पहले में बजट सन्तुलन की जरूरत भी शामिल है, जो कि दूसरे में जरूरी नहीं है।

लाभ के सिद्धान्त का मूल्यांकन (Assessment of Benefit Principle)

लाभ के सिद्धान्त का आधारभूत गुण यह है कि ये इस मान्यता पर आधारित है कि सार्वजनिक सेवाओं द्वारा जनता को मिलने वाला लाभ ऐसा आधार है, जिससे कर लगाने का औचित्य सिद्ध होता है। **दूसरे,** यह सिद्धान्त बजट निर्धारण के दोनों पहलुओं, आय तथा व्यय पर साथ-साथ विचार करता है। **तीसरे,** उन परिस्थितियों में यह सिद्धान्त काफी उपयोगी सिद्ध होता है, जबकि व्यक्तिगत लाभ को मापा जा सकता है; जैसे—पानी, बिजली, गैस, पैट्रोल इत्यादि पर कर। लाभ के सिद्धान्त के यह गुण होते हुए भी इनमें कमियाँ हैं जो कि निम्न हैं—

1. **व्यक्तिगत लाभ की गणना की कठिनाई**—व्यवहार में यह निर्धारण करना अत्यन्त कठिन है कि सार्वजनिक सेवाओं से प्रत्येक व्यक्ति को कितना लाभ प्राप्त हुआ है। उदाहरण के लिए सुरक्षा, आन्तरिक शान्ति, पार्क, सड़क निर्माण इत्यादि पर किये जाने वाले व्यय के सम्बन्ध में यह निर्धारित नहीं किया जा सकता कि प्रत्येक व्यक्ति को इन सेवाओं से क्या लाभ मिला है।
2. **विशेष वर्गों को लाभ पहुँचाने वाली सुविधाएँ**—सरकार द्वारा प्रदान की गई अधिकांश सेवाओं का लक्ष्य समाज के निर्धन एवं मध्यम वर्ग के व्यक्तियों को लाभ पहुँचाना होता है। अत: इस सिद्धान्त के अनुसार कर लगाने का परिणाम यह होगा कि इन वर्गों के व्यक्तियों को अधिक कर भार सहन करना पड़ेगा और ऐसा करना न्याय के सिद्धान्त के विपरीत होगा।
3. **सैद्धान्तिक त्रुटि**—इस सिद्धान्त के सम्बन्ध में यह सैद्धान्तिक आपत्ति भी है कि कर के बदले में सरकार प्रत्यक्ष रूप से सेवाएँ व सुविधाएँ प्रदान नहीं करती, लेकिन इस सिद्धान्त के अनुसार कर लगाने का अर्थ यह होगा कि कर के बदले सरकार प्रत्यक्ष सेवाएँ प्रदान करती है जो कर की परिभाषा के विपरीत होगा।
4. **लाभ के मूल्य निर्धारण में कठिनाई**—यदि लाभ के सिद्धान्त में 'सेवा के मूल्य' (Value of Service) अर्थ का प्रयोग किया जाता है, तो भी उसके मापने में कठिनाई आएगी। सार्वजनिक सेवाओं से जनता को मिलने वाला लाभ व्यक्तियों के मानसिक अनुभव की बात है और यह अनुभव भी व्यक्तियों के मानसिक दृष्टिकोण तथा उनकी सामाजिक और आर्थिक परिस्थितियों के साथ बदलता रहता है।
5. **वितरणात्मक समस्या का समाधान न होना**—लाभ के सिद्धान्त के आधार पर वितरण और स्थायित्व की समस्या का समाधान नहीं हो पाता, जो सार्वजनिक अर्थव्यवस्था के महत्त्वपूर्ण पहलू हैं, अर्थात् लाभ के सिद्धान्त के आधार पर करारोपण द्वारा न तो देश में आर्थिक स्थायित्व लाया जा सकता है और न ही धन और सम्पत्ति के वितरण की स्थिति को सुधारा जा सकता है।
6. **नि:शुल्क कल्याणकारी सेवाओं के उद्देश्य की समाप्ति**—आजकल प्रत्येक राज्य द्वारा कुछ सेवाएँ सार्वजनिक हित में प्रदान की जाती है; जैसे—निर्धन वर्ग के लिए नि:शुल्क शिक्षा, चिकित्सालय की व्यवस्था इत्यादि। यदि सेवा की लागत या मूल्य के आधार पर निर्धन व्यक्तियों से कर लिया जाने लगे, तो इन सेवाओं के प्रदान करने का उद्देश्य ही समाप्त हो जाएगा या ऐसी सेवाएँ प्रदान न की जा सकेंगी।

लाभ के सिद्धान्त की उपर्युक्त सीमाओं के कारण ही टेलर ने स्पष्ट किया है कि अधिकांश परिस्थितियों में लाभ के आधार को स्वीकार नहीं किया जा सकता। **प्रो० बी० आर० मिश्रा** ने लिखा है कि यह सिद्धान्त व्यावहारिक प्रयोग में असफल हो जाता है।

कर-देय योग्यता का सिद्धान्त
(Ability to Tax Pay Principle)

करारोपण में न्याय की दृष्टि से दूसरी विचारधारा कर-देय योग्यता के सिद्धान्त की रही है। इसके अनुसार कर का वितरण विभिन्न व्यक्तियों पर उनकी कर-देय योग्यता के आधार पर किया जाना चाहिए।

TOUCH 'n' PASS

सिद्धान्त का दृष्टिकोण (Approach of Principle)

कर देय योग्यता के सम्बन्ध में यह प्रश्न महत्त्वपूर्ण है कि योग्यता को मापने का आधार क्या हो? इसके लिए राजस्व शास्त्रियों ने दो दृष्टिकोणों—वस्तुगत और भावात्मक दृष्टिकोण—को विकसित किया है।

I. **वस्तुगत या बाह्य दृष्टिकोण** (Objective Approach)—अमेरिकी विद्वानों ने कर-भार के न्यायपूर्ण वितरण के लिए वस्तुगत दृष्टिकोण को आधार बनाया है। इस दृष्टिकोण से कर देय योग्यता के मापने के लिए निम्न आधारों का प्रयोग किया जाता है—

1. **सम्पत्ति या एकत्रित सम्पदा** (Property or Accumulated Wealth)—प्रारम्भ में सम्पत्ति कर-देय योग्यता का सर्वश्रेष्ठ आधार माना गया था। इसके अनुसार, जिस व्यक्ति के पास जितनी अधिक सम्पत्ति होती है, उसकी कर-देय योग्यता उतनी ही अधिक होती है, लेकिन सम्पत्ति को कर देय योग्यता का आधार मानने में निम्न कठिनाइयाँ आती हैं—
   (i) सम्पत्ति का मूल्य आँकने में बड़ी कठिनाई रहती है।
   (ii) सम्पत्ति का आधार भ्रामक हो सकता है, क्योंकि यह आवश्यक नहीं है कि समान मूल्य की सम्पत्ति से समान आय प्राप्त हो।
   (iii) सम्पत्ति के आधार पर कर लगाने से व्यक्ति सम्पत्ति एकत्रित करने में हिचकेंगे और अमितव्ययी हो जाएँगे।
   (iv) ऐसा हो सकता है कि किसी व्यक्ति के पास सम्पत्ति कम हो या न हो, लेकिन आय काफी अधिक हो, तो सम्पत्ति के मापदण्ड के आधार पर उसकी कर देय योग्यता का सही पता नहीं चल सकता।

   [उपर्युक्त सीमाओं के होते हुए भी सम्पत्ति की कर देय योग्यता आदि प्रमुख नहीं, तो महत्त्वपूर्ण मापदण्ड माना जाता है। इसीलिए धनवान व्यक्तियों की सम्पत्तियों पर सम्पत्ति कर (Wealth Tax) तथा मृत्यु के समय सम्पदा शुल्क (Estate Duty) लगाया जाता है।]

2. **उपभोग या व्यय स्तर** (Consumption or Expenditure Level)—उपभोग या व्यय के स्तर को कर देय योग्यता का आधार बनाने का विचार इस मान्यता पर आधारित है कि धनवान व्यक्ति निर्धन की अपेक्षा अधिक व्यय करता है अथवा उसका उपभोग स्तर ऊँचा होता है। अतएव अधिक व्यय करने वाले व्यक्तियों की त्याग की सीमा भी अधिक होती है और इसलिए उनकी कर देय योग्यता भी अधिक होती है। इस मापदण्ड की दो महत्त्वपूर्ण सीमाएँ हैं—
   (i) परिवार के आकार में अन्तर हो सकता है, लेकिन यह अन्तर कर देय योग्यता के अन्तर का प्रमाण नहीं है।
   (ii) इस कर के कारण जनता अपना उपभोग कम कर सकती है, जिससे उसकी कार्यक्षमता एवं उत्पादकता में कमी आ सकती है।

3. **करदाता की आय** (Income of Taxpayer)—करदाता की आय उसकी कर देय योग्यता का महत्त्वपूर्ण वस्तुगत आधार मानी जाती है। इसके अनुसार कम आय वाले व्यक्ति की अधिक आय वाले व्यक्ति की कर-देय योग्यता अधिक होती है। इस आधार की निम्न सीमाएँ हैं—
   (i) समान आय होने पर कर-देय योग्यता भिन्न हो सकती है, यदि परिवार के आकार में भिन्नता हो, आय प्राप्ति के साधन में भिन्नता हो या सम्पत्ति की राशि में भिन्नता हो।
   (ii) निम्न आय के सम्बन्ध में इस धारणा को अपनाया नहीं जा सकता, क्योंकि वहाँ त्याग अनुभव करने का प्रश्न ही नहीं उठता।

   उपर्युक्त सीमाओं के होते हुए भी इसको महत्त्वपूर्ण आधार माना गया है। **लार्ड स्टैम्प** के अनुसार, "अन्य आधारों की तुलना में आय का आधार कर देने की योग्यता का एक सर्वोत्तम प्रमाण है, यदि कर लगाते समय निम्न बातों को ध्यान में रखा जाए—
   (i) उचित जीवन निर्वाह के लिए न्यूनतम छूट दी जाए,
   (ii) परिवार के सदस्यों की संख्या के आधार पर छूट दी जाए,
   (iii) कर को आय-प्राप्ति के समय वसूल किया जाए,

TOUCH 'n' PASS

(iv) अर्जित आय की तुलना में अनार्जित आय पर अधिक दर से कर लगाया जाए,
(v) पूँजी के मूल्य में घिसावट का व्यय कुल आय में से निकाल दिया जाए तथा,
(vi) अतिरिक्त और आकस्मिक आय पर अधिक दर से कर लगाया जाए।
कर देय योग्यता के उपर्युक्त विभिन्न वस्तुगत मापदण्डों के विश्लेषण से स्पष्ट है कि 'आय' कर देय योग्यता का मुख्य मापदण्ड है और सम्पत्ति तथा उपभोग को कर देय योग्यता के सहायक मापदण्डों के रूप में प्रयुक्त किया जा सकता है।

II. **भावात्मक दृष्टिकोण** (Subjective Approach)—इस दृष्टिकोण के अनुसार, प्रत्येक करदाता की करदान योग्यता उसके कष्ट उठाने, असुविधाओं को सहन करने की शक्ति तथा त्याग करने की शक्ति पर निर्भर करता है। **कोहेन स्टुअर्ट** (Cohn Stuart) तथा **एजवर्थ** (Edgeworth) ने त्याग की तीन धारणाओं को स्पष्ट किया है—

1. **समान पूर्ण त्याग का सिद्धान्त** (Principle of Equal Absolute Sacrifice)—इस सिद्धान्त के प्रतिपादकों का मत है कि सरकारी व्यय से सभी व्यक्ति लगभग समान रूप से त्याग करते हैं, अत: उन्हें कर के रूप में समान त्याग करना चाहिए। **डाल्टन** के अनुसार, "समान त्याग के सिद्धान्त के अनुसार करों का द्रव्य सम्बन्धी भार विभिन्न वर्गों पर या व्यक्तियों पर इस प्रकार से वितरित करना चाहिए कि उसका वास्तविक प्रत्यक्ष भार (Direct Real Burden) सभी करदाताओं पर समान पड़े।"
संक्षेप में प्रत्येक व्यक्ति की त्याग की मात्रा बराबर होनी चाहिए। उदाहरण के लिए, यदि कर की दर 10% है तब ₹ 1,000 आय वाले व्यक्ति को ₹ 100, ₹ 2,000 आय वाले व्यक्ति को ₹ 200 तथा ₹ 3,000 आय वाले व्यक्ति को ₹ 300 कर के रूप में चुकाने पड़ेंगे।
इस सिद्धान्त के अनुसार देश की कर प्रणाली समानुपाती होनी चाहिए।
2. **समानुपाती त्याग का सिद्धान्त** (Principle of Equi-proportional Sacrifice)—इस सिद्धान्त के समर्थकों के अनुसार धनी व्यक्ति निर्धन व्यक्तियों की तुलना में अधिक त्याग कर सकते हैं, अत: धनी व्यक्तियों को निर्धन व्यक्तियों की तुलना में आनुपातिक त्याग करना चाहिए। आनुपातिक त्याग का आशय आनुपातिक कर से नहीं, वरन् वास्तविक आनुपातिक त्याग से है।
उदाहरण के लिए, मान लीजिए कि धनी व्यक्ति को अपनी कुल आय से मिलने वाली उपयोगिता 120 है, जबकि निर्धन व्यक्ति को आय से मिलने वाली कुल उपयोगिता 40 है, तब कर इस प्रकार लगाना चाहिए कि कर से होने वाली अनुपयोगिता 120 : 40 अर्थात् 3 : 1 में होनी चाहिए। यदि गरीब व्यक्ति 10 उपयोगिता का त्याग करे, तो धनी व्यक्ति को 30 उपयोगिता का त्याग करना चाहिए।
3. **समान सीमान्त त्याग अथवा न्यूनतम कुल त्याग का सिद्धान्त** (Principle of Equal Marginal Sacrifice or Least Aggregate Sacrifice)—इस सिद्धान्त का प्रतिपादन एजवर्थ और कार्वर ने किया था। पीगू, मार्शल और डाल्टन इत्यादि अर्थशास्त्री इस सिद्धान्त के प्रमुख समर्थक हैं। इस सिद्धान्त के अनुसार, करारोपण का वितरण इस प्रकार होना चाहिए कि सम्पूर्ण समाज पर इसका भार न्यूनतम हो। इसके लिए यह आवश्यक है कि कर का भुगतान करने में प्रत्येक व्यक्ति का सीमान्त त्याग बराबर हो।

प्र.11. न्यूनतम सामूहिक त्याग 'करारोपण का अन्तिम सिद्धान्त' क्या है? विस्तृत रूप से लिखिए।
What is the 'Ultimate Principle of Least Aggressive Sacrifice Taxation'? Write in detail.

उत्तर

"न्यूनतम सामूहिक त्याग करारोपण का अन्तिम सिद्धान्त है"
(Least Aggregate Sacrifice is One Ultimate Principle of Taxation)

कर-भार के न्यायपूर्ण बँटवारे की दृष्टि से करदेय योग्यता (Ability to pay) सिद्धान्त पर जोर दिया जाता है और करदेय योग्यता को मापने के लिए विषयगत तथा वस्तुगत मापदण्डों का प्रयोग किया जाता है। विषयगत मापदण्डों में एक महत्त्वपूर्ण मापदण्ड या सिद्धान्त 'न्यूनतम सामूहिक त्याग का सिद्धान्त' है। इस सिद्धान्त के समर्थकों में एजबर्थ, कैनन, डाल्टन और पीगू के नाम उल्लेखनीय हैं। **कैनन** ने इस सिद्धान्त को 'न्यूनतम सामूहिक त्याग' (Minimum Aggregate Sacrifice) और **डाल्टन**

TOUCH 'n PASS

ने 'न्यूनतम त्याग का सिद्धान्त' कहा है। **पीगू** ने इसे 'Principle of Least Aggregate Sacrifice' के नाम से सम्बोधित किया है।

सिद्धान्त की व्याख्या (Explanation of Principle)

यह सिद्धान्त इस बात पर जोर देता है कि करारोपण का वितरण इस प्रकार होना चाहिए कि सम्पूर्ण समाज पर इसका भार न्यूनतम हो। इसके लिए यह आवश्यक है कि कर का भुगतान करने में प्रत्येक व्यक्ति का सीमान्त त्याग बराबर हो।

संलग्न चित्र में *OX*-रेखा पर आय वर्ग और *OY*-रेखा पर आय-स्तर दर्शाया गया है। *ML*-रेखा न्यूनतम आय-स्तर ₹ 18,000 को प्रदर्शित करती है। **पीगू** के अनुसार, इस आय-स्तर से ऊपर प्रत्येक वर्ग के व्यक्तियों की अतिरिक्त आय करारोपण द्वारा ले ली जाएगी, जिससे करों के पश्चात् सभी व्यक्ति ₹ 18,000 वार्षिक आय के समान स्तर पर आ जाएँगे।

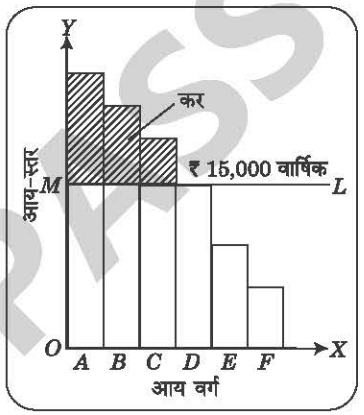

चित्र 1

उपर्युक्त दृष्टिकोण में एक महत्त्वपूर्ण कमी यह है कि इसमें न्यूनतम आय-स्तर से अधिक आय कमाने के लिए कोई प्रेरणा नहीं है। अत: इसको संशोधित चित्र के रूप में निम्न प्रकार प्रस्तुत किया जा सकता है—

संलग्न चित्र में *ML*-रेखा न्यूनतम आय-स्तर है और इससे नीचे आय वाले व्यक्तियों को आय-कर से मुक्त रखा गया है। इस स्तर से ऊँचे आय वाले *A*, *B* और *C* वर्ग हैं। इन पर प्रगतिशील करों को इस प्रकार लगाया गया है कि अधिक आय वाले व्यक्ति के पास कर के पश्चात् बचने वाली राशि भी अधिक हो, अन्यथा अधिक आय अर्जन की प्रेरणा ही समाप्त हो जाएगी।

सिद्धान्त की विशेषताएँ (Characteristics of the Principle)

न्यूनतम सामूहिक त्याग के सिद्धान्त की मुख्य विशेषताएँ निम्न प्रकार हैं—

1. **व्यक्तिगत त्याग के स्थान पर सामूहिक त्याग पर जोर**—इस सिद्धान्त के करारोपण की समस्या का अध्ययन सामूहिक दृष्टिकोण से किया जाता है, न कि व्यक्तिगत दृष्टिकोण से। यहाँ इस बात पर जोर दिया गया है कि यदि सामाजिक लाभ अधिकतम करना है तो सामूहिक त्याग को न्यूनतम करना होगा।
2. **कल्याणकारी राज्य के अनुकूल**—यह सिद्धान्त कल्याणकारी राज्य की भावना के अनुकूल है, क्योंकि इसमें न्यूनतम आय-स्तर से नीचे आय वाले व्यक्तियों को कर से मुक्ति दी जाती है।
3. **घटती सीमान्त उपयोगिता पर आधारित**—वह सिद्धान्त मुद्रा की घटती हुई सीमान्त उपयोगिता के नियम पर आधारित है, जो यह बताता है कि किसी व्यक्ति के पास मुद्रा की मात्रा में वृद्धि होने से उसके लिए मुद्रा की उपयोगिता में कमी होती है। उदाहरण के लिए, यदि ₹ 5,000 की आय वाले व्यक्ति से ₹ 10 कर के लिए जाएँ और ₹ 2,000 की आय वाले व्यक्ति से भी ₹ 10 कर के लिए जाएँ, तो दोनों के लिए त्याग की मात्रा अलग-अलग होगी।

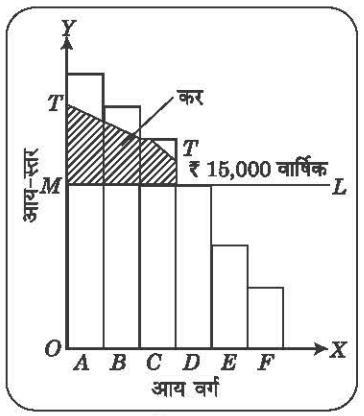

चित्र 2

सिद्धान्त की व्यावहारिक कठिनाइयाँ (Practical Difficulties of the Principle)

यद्यपि सैद्धान्तिक दृष्टिकोण से इस सिद्धान्त की अधिक आलोचना नहीं हुई है, लेकिन व्यावहारिक दृष्टि से कुछ आलोचनाएँ अवश्य की गई हैं। व्यावहारिक दृष्टि से दो पहलुओं पर विचार करना महत्त्वपूर्ण हैं—1. धन के वितरण पर प्रभाव, 2. उत्पादन पर प्रभाव।

जहाँ तक धन के वितरण पर प्रभाव का प्रश्न है, इस सिद्धान्त के आधार पर कर लगाने से वितरण की असमानताएँ कम होती हैं, क्योंकि न्यूनतम आय-स्तर के ऊपर की सभी आयों के लिए शिखरों को छाँट दिया जाता है, लेकिन जहाँ तक उत्पादन पर प्रभावों का प्रश्न है यदि करों की प्रगतिशीलता का उचित समायोजन न किया जाए, तो उत्पादन पर बुरा प्रभाव पड़ सकता है।

TOUCH 'n' PASS

बहुविकल्पीय प्रश्न

प्र.1. विदेशी ऋणों में तीन स्त्रोतों को शामिल किया जाता है, निम्न में से कौन-सा उसमें शामिल है—
(a) विदेशी जनता (b) विदेशी सरकारें (c) विशिष्ट वित्तीय संस्थाएँ (d) ये सभी
उत्तर (d) ये सभी

प्र.2. निम्न में कौन-सा आर्थिक नियन्त्रण का उपकरण नहीं है—
(a) फीस (b) अनुदान (c) लाइसेन्स (d) जुर्माने
उत्तर (b) अनुदान

प्र.3. यदि सीमा से अधिक कर लगाये जाते हैं तो किस पर विपरीत प्रभाव पड़ने की सम्भावना रहती है—
(a) उत्पादन (b) रोजगार (c) आर्थिक स्थायित्व (d) ये सभी
उत्तर (d) ये सभी

प्र.4. अर्थदण्ड और जुर्माना है—
(a) सार्वजनिक अधिकार क्षेत्र से आय (b) प्रशासनिक कार्यों से आय
(c) स्वामित्व हरण से आय (d) ये सभी
उत्तर (b) प्रशासनिक कार्यों से आय

प्र.5. लॉटरियों से आय को किस आय में शामिल करेंगे—
(a) लोक सेवाओं से आय (b) उपहारों और अनुदानों से आय
(c) लॉटरियों से आय (d) अन्य गैर-कर आगम से आय
उत्तर (d) अन्य गैर-कर आगम से आय

प्र.6. भूमि से किराया किस प्रकार की आय है—
(a) ब्याज से आय (b) सार्वजनिक अधिकार क्षेत्र
(c) उपहारों और अनुदानों से आय (d) प्रशासनिक कार्यों से आय
उत्तर (b) सार्वजनिक अधिकार क्षेत्र

प्र.7. प्रशासनिक सेवाओं से कौन-सी आय होती है?
(a) फीस (b) लाइसेन्स फीस
(c) विशेष कर-निर्धारण (d) ये सभी
उत्तर (d) ये सभी

प्र.8. यह कथन किसका है ''करदाता और सरकार के मध्य प्रत्यक्ष प्रतिफल का अभाव ही कर की वास्तविकता है।''
(a) हेजेन (b) टॉजिंग (c) पीगू (d) कीन्स
उत्तर (b) टॉजिंग

प्र.9. किसका मत है कि करारोपण का प्रमुख उद्देश्य है कि राष्ट्रीय आय का पर्याप्त स्तर बना रहे—
(a) प्रो० ए०पी० लर्नर (b) मसग्रेव
(c) पीगू (d) मार्शल
उत्तर (a) प्रो० ए०पी० लर्नर

प्र.10. निम्न में कौन-सा करारोपण का उद्देश्य है—
(a) आय प्राप्त करना (b) नियमन एवं नियन्त्रण
(c) धन के वितरण में असमानताओं को कम करना (d) ये सभी
उत्तर (d) ये सभी

TOUCH 'n' PASS

प्र.11. ऋण-पत्र, बॉण्ड या ऋण अधिकांश किसके द्वारा खरीदे जाते हैं—
(a) व्यापारिक बैंकों (b) बीमा कम्पनियों
(c) गैर-बैंकिंग वित्तीय संस्थान (d) ये सभी
उत्तर (d) ये सभी

प्र.12. प्रॉविडेण्ट फण्ड किस ऋण के अन्तर्गत आयेगा—
(a) विपणन उधार (b) बैंक और अन्य संस्थाओं से ऋण
(c) अकोषित ऋण (d) इनमें से कोई नहीं
उत्तर (c) अकोषित ऋण

प्र.13. अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष से लिया गया ऋण किस स्त्रोत में गिना जायेगा—
(a) विदेशी जनता (b) विदेशी सरकारें (c) विशिष्ट वित्तीय संस्थायें (d) ये सभी
उत्तर (c) विशिष्ट वित्तीय संस्थायें

प्र.14. राज्य सरकारें निम्न में से किससे ऋण प्राप्त करती हैं—
(a) जीवन बीमा निगम से (b) बैंकों से
(c) राष्ट्रीय सहकारी विकास निगम (d) ये सभी
उत्तर (d) ये सभी

प्र.15. निम्न में कौन-सी वाणिज्यिक आय नहीं है?
(a) रेल से (b) फीस से (c) डाक-तार (d) विद्युत आपूर्ति
उत्तर (b) फीस से

प्र.16. अध्ययन की दृष्टि से करारोपण के सिद्धान्त को कितने मुख्य वर्गों में बाँटा जा सकता है?
(a) 2 (b) 3 (c) 4 (d) 5
उत्तर (a) 2

प्र.17. आनुपातिक कर सुझाव किस अर्थशास्त्री ने दिया?
(a) वाकर (b) मेकुलाच (c) सीनियर (d) ये सभी
उत्तर (d) ये सभी

प्र.18. कर में सुविधा का सिद्धान्त किसने प्रतिपादित किया?
(a) प्रो० बैस्टेविल (b) सैलिंगमैन (c) कोहन (d) एडम स्मिथ
उत्तर (d) एडम स्मिथ

प्र.19. मितव्ययिता के सिद्धान्त के प्रतिपादक कौन हैं?
(a) डाल्टन (b) पीगू (c) सैलिंगमैन (d) मसग्रेव
उत्तर (a) डाल्टन

प्र.20. करारोपण में सरलता के सिद्धान्त के प्रतिपादक कौन हैं?
(a) प्रो० बैस्टेबिल (b) अरमिटेज
(c) एडम स्मिथ (d) पीगू
उत्तर (b) अरमिटेज

प्र.21. करारोपण में लोच के सिद्धान्त के प्रतिपादक कौन हैं?
(a) डाल्टन (b) प्रो० बैस्टेबिल
(c) एडम स्मिथ (d) पीगू
उत्तर (b) प्रो० बैस्टेबिल

TOUCH 'n' PASS

प्र.22. जब व्यक्ति आय की एक राशि हमेशा प्राप्त करना चाहता है, यह कौन-सी माँग है?
(a) आय की लोचदार माँग (b) आय की माँग लोच इकाई के बराबर
(c) आय की बेलोचदार माँग (d) इनमें से कोई नहीं
उत्तर (c) आय की बेलोचदार माँग

प्र.23. यदि कर आवश्यकता से अधिक लगाये जाते हैं तो कहलाते हैं—
(a) प्रगतिशील (b) आनुपातिक (c) प्रतिगामी (d) इनमें से कोई नहीं
उत्तर (c) प्रतिगामी

प्र.24. निम्न में कौन-सा कर व्यय को हतोत्साहित करते हैं—
(a) उत्पादन शुल्क (b) बिक्री कर (c) (a) और (b) दोनों (d) इनमें से कोई नहीं
उत्तर (c) (a) और (b) दोनों

प्र.25. वह कर जिसका कराघात और करापात एक ही व्यक्ति पर पड़ता है, वह कहलाता है—
(a) अप्रत्यक्ष कर (b) प्रत्यक्ष कर (c) (a) और (b) दोनों (d) इनमें से कोई नहीं
उत्तर (b) प्रत्यक्ष कर

प्र.26. प्रत्यक्ष कर का कौन-सा गुण नहीं है—
(a) असुविधाजनक (b) लोच
(c) आर्थिक विषमता कम करने में सहायक (d) उत्पादकता
उत्तर (a) असुविधाजनक

प्र.27. प्रत्यक्ष कर का कौन-सा दोष नहीं है—
(a) करों की चोरी (b) करों में अधिक घर्षणात्मक शक्ति
(c) निश्चितता (d) बेलोच और अमितव्ययी
उत्तर (c) निश्चितता

प्र.28. निम्न में कौन-सा अप्रत्यक्ष कर का गुण है—
(a) अधिक लोच (b) करवंचन में कठिनाई (c) न्यायशीलता सम्भव (d) ये सभी
उत्तर (d) ये सभी

प्र.29. अप्रत्यक्ष कर का कौन-सा दोष नहीं है—
(a) मन्दीकाल में हानिप्रद (b) सामाजिक चेतना को उत्पन्न करने में प्रभावहीन
(c) समाज के सभी वर्गों पर कर (d) मुद्रास्फीति की प्रवृत्ति को जन्म
उत्तर (c) समाज के सभी वर्गों पर कर

प्र.30. निम्न में प्रगतिशील कर का कौन-सा गुण नहीं है?
(a) बचत और उत्पादन का प्रतिकूल प्रभाव (b) कर देय योग्यता
(c) सामाजिक सन्तुष्टि की न्यूनतम हानि (d) लोचता
उत्तर (a) बचत और उत्पादन का प्रतिकूल प्रभाव

प्र.31. "प्रगतिशील करों से व्यक्तिगत कर-भार का अनुकूलतम बण्टन होता है।" यह कथन किसका है?
(a) पीगू (b) मसग्रेव (c) टेलर (d) कैंट
उत्तर (c) टेलर

प्र.32. प्रगतिशील करों का कौन-सा दोष है—
(a) संचय और पूँजी निर्माण पर कुप्रभाव (b) ईमानदारी, मितव्ययिता और मेहनत को दण्ड
(c) कर चोरी की भावना में वृद्धि (d) ये सभी
उत्तर (d) ये सभी

TOUCH 'n' PASS

प्र.33. गांजा, भाँग और शराब पर कौन-सा कर लगाया जाता है—
(a) प्रगतिशील (b) प्रतिगामी (c) आनुपातिक (d) इनमें से कोई नहीं
उत्तर (b) प्रतिगामी

प्र.34. वह कर कौन-सा होता है जिसमें एक सीमा तक तो कर की दरें प्रगतिशील होती हैं और उसके पश्चात् आनुपातिक हो जाती हैं?
(a) प्रतिगामी कर (b) आनुपातिक कर (c) प्रगतिशील कर (d) अद्योगामी कर
उत्तर (d) अद्योगामी कर

प्र.35. कर लगाते समय किस बात को ध्यान में रखना चाहिए—
(a) उचित जीवन निर्वाह के लिए न्यूनतम छूट दी जाए
(b) कर को आय-प्राप्ति के समय वसूल किया जाये
(c) परिवार के सदस्यों की संख्या के आधार पर छूट दी जाये
(d) उपरोक्त सभी
उत्तर (d) उपरोक्त सभी

प्र.36. न्यूनतम कुल त्याग के सिद्धान्त का समर्थक है—
(a) पीगू (b) मार्शल (c) डाल्टन (d) ये सभी
उत्तर (d) ये सभी

प्र.37. किसने लाभ के सिद्धान्त को जैसे को तैसा सिद्धान्त का नाम दिया है—
(a) जे०एस० मिल (b) डाल्टन (c) मसग्रेव (d) पीगू
उत्तर (a) जे०एस० मिल

प्र.38. पूँजी कर के पक्ष में कौन-सा तर्क सही नहीं है—
(a) सामाजिक कल्याण पर अधिक ध्यान (b) निर्धन और धनी वर्ग द्वारा त्याग में समानता
(c) ऋण भार से एक साथ मुक्ति (d) व्यावसायिक पूँजी में कमी
उत्तर (d) व्यावसायिक पूँजी में कमी

प्र.39. पूँजी कर के विपक्ष में कौन-सा तर्क है—
(a) ऋण भुगतान सभी वर्गों का दायित्व (b) प्रशासनिक कठिनाइयाँ
(c) उद्योग एवं व्यापार का विकास (d) पूँजी का विदेशों को स्थानान्तरण
उत्तर (c) उद्योग एवं व्यापार का विकास

प्र.40. लोक ऋण का कौन-सा उद्देश्य है—
(a) आर्थिक नियोजन की वित्त व्यवस्था हेतु (b) सार्वजनिक निर्माण कार्यों के लिए
(c) युद्धकालीन वित्त व्यवस्था हेतु (d) ये सभी
उत्तर (d) ये सभी

TOUCH 'n' PASS

UNIT-VIII

राजकोषीय नीति
Fiscal Policy

खण्ड-अ अतिलघु उत्तरीय प्रश्न

प्र.1. 'बजट' शब्द से आप क्या समझते हैं?

What do you understand by the word 'Budget'?

उत्तर अंग्रेजी का 'Budget' शब्द फ्रेंच शब्द 'Bougettee' से निकला है, जिसका अर्थ चमड़े का एक छोटा थैला होता है। सर्वप्रथम इस शब्द का प्रयोग इंग्लैण्ड के चमड़े के उस थैले के लिए किया जाता था, जिसमें खजाने के कोर्ट की मोहर रखी जाती थी। बाद में वित्त-मन्त्री के उस थैले को बजट कहा जाने लगा, जिसमें वे सरकारी व्ययों को पूरा करने के लिए प्रस्ताव रखते थे। वर्तमान समय में, इस शब्द का प्रयोग विश्व के सभी देशों में होता है, जिसका अर्थ संसद में उसकी स्वीकृति के लिए सरकार द्वारा रखे गए उस दस्तावेज (Document) से है, जिसमें एक निश्चित समय के लिए प्रस्तावित व्यय तथा उसे पूरा करने के साधन का अनुमान रहता है।

प्र.2. फिण्डले शिराज के अनुसार बजट की क्या परिभाषा दी गई है?

According to Findlay Shirras, what is the definition of Budget?

उत्तर फिण्डले शिराज के अनुसार, "बजट आय तथा व्यय का वार्षिक विवरण है जो सरकार द्वारा अनुमानित व्ययों को पूरा करने के लिए बनाया जाता है और इसमें सामान्यत: दो वित्तीय अवधियाँ होती हैं—समाप्त होने वाली अवधि और आने वाली अवधि। संक्षेप में, बजट पिछले वर्ष के आय-व्यय का विवरण, आने वाले वित्तीय वर्ष के आय-व्यय का अनुमान और घाटों को पूरा करने के लिए तथा आधिक्य को वितरित करने के लिए प्रस्ताव होते हैं।"

प्र.3. 'हीनार्थ प्रबन्धन' क्या होता है?

What is 'Deficit Financing'?

उत्तर 'हीनार्थ प्रबन्ध' से आशय सरकार द्वारा प्रबन्धित उस धनराशि से है, जिसमें सरकार अपनी सामान्य आय से अधिक व्यय करती है, अर्थात् सरकार के सम्भावित व्यय उसकी सम्भावित आय से अधिक होने पर सरकार उसको पूरा करने के लिए जो उपाय करती है, उसको 'हीनार्थ प्रबन्धन' कहते हैं।

प्र.4. 'राजकोषीय घाटा' किसे कहा जाता है?

What is called 'Fiscal Deficit'?

उत्तर राजकोषीय घाटा का अर्थ आगम प्राप्तियों और ऋण-भार उत्पन्न न करने वाली पूँजीगत प्राप्तियों (Non-debt creating capital receipts) पर कुल व्यय के आधिक्य से होता है। सूत्र के रूप में—

राजकोषीय घाटा = कुल व्यय — (आगम प्राप्तियाँ + ऋण भार उत्पन्न करने वाली पूँजीगत प्राप्तियाँ)

या = बजटरी घाटा + उधार एवं अन्य देयताएँ

प्र.5. किसी देश का सार्वजनिक व्यय किस बात पर निर्भर करता है?

On what does the public expenditure of a country depend?

उत्तर किसी देश में सार्वजनिक व्यय का आकार एवं प्रकृति उस देश के सरकार की आर्थिक नीति, राजनीतिक एवं सामाजिक दशाओं पर निर्भर करती है। विकासशील देशों के सार्वजनिक व्यय की प्रकृति एवं आकार विकसित देशों की तुलना में कम होता है।

TOUCH 'n PASS

भारत में सार्वजनिक व्यय के आकार एवं प्रकृति को देखने से स्पष्ट होता है कि देश का सार्वजनिक व्यय बड़ी सीमा तक सरकार की आर्थिक नीति से प्रभावित हुआ है। स्वतंत्रता से पूर्व भारत में सार्वजनिक व्यय का मुख्य उद्देश्य देश में शन्ति एवं सुरक्षा को बनाए रखना था तथा सार्वजनिक व्यय का थोड़ा सा भाग ही विकास कार्यक्रमों पर खर्च किया जाता था। साथ ही विदेशी सरकार की नीति देश के धन के असमान वितरण की विषमता को कम करना भी नहीं था।

प्र.6. सर बैसिल ब्लैकिट योजना से आप क्या समझते हैं?

What do you understand by Sir Basil Blackett Scheme?

उत्तर सन् 1924 में भारत सरकार के वित्त सदस्य सर बैसिल ब्लैकिट ने ऋणों के भुगतान हेतु एक नवीन योजना का निर्माण किया। इस योजना के अनुसार ऋणों का भुगतान करने के लिए एक सामान्य परिशोधन कोष की स्थापना की गई। **ब्लैकिट** ने कहा कि इस कोष में से ₹ 298 लाख वार्षिक का भुगतान करने पर 80 वर्ष में ऋण का पूरा भुगतान हो जाएगा। इस योजना के प्रारम्भिक 5 वर्षों में अनुत्पादक ऋण की मात्रा ₹ 202 करोड़ से घटकर लगभग ₹ 176 करोड़ रह गई, परन्तु सन् 1929-32 की मंदी के दौरान भारत सरकार को पुन: घाटे का बजट बनाना पड़ा जिसके परिणामस्वरूप सन् 1934 तक कुल अनुत्पादक ऋण बढ़कर ₹ 1,224 करोड़ हो गया।

प्र.7. राज्यों की देयताओं में तीव्र वृद्धि के कारण बताइए।

Give reasons for the sharp increase in the liabilities of the states.

उत्तर 1990 तक के उत्तरार्द्ध में सभी राज्यों के घाटे में पर्याप्त वृद्धि दर्ज की गई। परिणामस्वरूप राज्यों के ऋणों में तेजी से समृद्धि होने लगी। बजट के बाहर की देयताएँ भी तेजी से बढ़ने लगीं। राज्य सरकारों की तरलता की स्थिति अत्यन्त खराब होने लगी तथा उन्हें बिल के भुगतान में कठिनाई होने लगी। कुछ अवस्थाओं में तो वेतन के भुगतान में भी दिक्कतें उत्पन्न होने लगीं। इस स्थिति के लिए दो तात्कालिक कारण थे—(i) राज्य कर्मचारियों के वेतन में बड़ी मात्रा में वृद्धि, तथा (ii) राज्यों में राजस्व की वृद्धि दर का घटना।

प्र.8. मूल्य सम्वर्द्धन कर क्या होता है?

What is Value Added Tax (VAT)?

उत्तर 'वैट' मूल्य सम्बर्द्धन पर कर व्यवस्था है। यह बहु बिन्दु कर व्यवस्था है, जो कि विक्रय के प्रत्येक स्तर पर उद्ग्रहणीय था। यह विक्रय के स्तर पर संग्रहणीय था चाहे निर्मित माल का अथवा व्यापारिक माल का विक्रय था। इसके नाम के बावजूद वैट का अभिप्राय उपभोग पर करारोपण के साथ राज्य के अन्तर्गत गंतव्य आधारित कर था।

प्र.9. अप्रत्यक्ष कर कौन-से होते हैं?

What are indirect taxes?

उत्तर 1. शर्त एवं जुआ कर, 2. मनोरंजन कर, 3. प्रवेश कर एवं चुंगी, 4. लॉटरी कर, 5. विलासिता कर, 6. सम्पदा कर, 7. शोध एवं विकास उपकर, 8. स्टाम्प शुल्क, 9. विद्युत विक्रय या उपभोग पर कर, 10. माल एवं सेवाओं के परिवहन पर कर, 11. दूर संचार लाइसेन्स शुल्क, 12. टोल टैक्स, यात्री कर एवं मार्ग कर, 13. आवर्त कर।

प्र.10. 'माल' शब्द का अर्थ बताइए।

Give the meaning of the word 'Goods'.

उत्तर 'माल' शब्द का अर्थ प्रत्येक प्रकार की चल सम्पदा से है और इसमें शामिल हैं—

1. वाद-योग्य दावे,
2. उगती फसलें और,
3. ऐसी वस्तुएँ, जो भूमि का भाग हैं या उससे जुड़ी हुई हैं, जिन्हें पूर्ति पर या पूर्ति के अनुबन्ध से पूर्व पृथक् करने की सहमति है।

परिभाषा के अनुसार, "माल" शब्द में (1) प्रतिभूतियाँ, एवं (2) मुद्रा शामिल नहीं हैं।

प्र.11. भारतीय योजना आयोग के अनुसार 'हीनार्थ प्रबन्धन' किस प्रकार परिभाषित किया गया है?

How is deficit finance defined according to the Planning Commission of India?

उत्तर **भारतीय योजना आयोग** के अनुसार, "हीनार्थ प्रबन्धन शब्द का प्रयोग बजट के घाटे द्वारा कुल राष्ट्रीय व्यय में प्रत्यक्ष वृद्धि को प्रदर्शित करने के लिए किया जाता है। ये घाटे चाहे आगम खाते से सम्बन्धित हों या पूँजी खाते से।"

TOUCH 'n' PASS

एसी नीति अपनाने का सार यही होता है कि सरकार अपनी उस आय से अधिक मात्रा में व्यय करती है, जो उसे करारोपण, सरकारी उपक्रमों से प्राप्त आय, जनता से प्राप्त ऋण, जमा एवं कोष तथा अन्य विविध स्रोतों से प्राप्त होती है। सरकार इस घाटे की पूर्ति या तो अपने संचित कोषों (Accumulated Balances) को काम में लाकर करती है अथवा बैंकों से उधार लेकर (मुख्य रूप से देश की केन्द्रीय बैंक से और इस तरह मुद्रा का निर्माण करके)।

प्र.12. 'हीनार्थ' प्रबन्धन के कुप्रभावों पर नियन्त्रण के उपाय लिखिए।

Write measures to control the effects of Cost Management.

उत्तर हीनार्थ प्रबन्धन के कुप्रभावों पर नियन्त्रण करने की दृष्टि से निम्न उपाय अपनाये जाने चाहिए—(1) जीवनोपयोगी वस्तुओं की पर्याप्त पूर्ति बनाई रखी जाए, जिसे सामान्य जनता पर मुद्रा-स्फीति का अधिक प्रभाव न पड़े। (2) हीनार्थ प्रबन्धन से सृजित मुद्रा का अधिकांश प्रयोग उत्पादक उद्देश्य के लिए किया जाना चाहिए। (3) हीनार्थ प्रबन्धन से चलन में आयी अतिरिक्त मुद्रा को उचित करारोपण तथा अनिवार्य बचत या लोक ऋणों के माध्यम से सरकार को प्राप्त कर लेना चाहिए। (4) देश में साख-नियन्त्रण की व्यवस्था को प्रभावशाली बनाया जाए। (5) ऐसी परियोजनाओं को प्राथमिकता दी जाए, जो शीघ्र परिणामकारी (Quick Yielding Projects) हों और जिससे उत्पादन में वृद्धि करके मुद्रा-स्फीतिकारी प्रवृत्ति को नियन्त्रित किया जा सके।

प्र.13. राजस्व व्यय के अन्तर्गत किन मदों को सम्मिलित किया जाता है।

Which items are included in Revenue Expenditure?

उत्तर राजस्व व्यय के अन्तर्गत जिन मदों को सम्मिलित किया जाता है वे हैं—ब्याज भुगतान, प्रतिरक्षा राजस्व व्यय, मुख्य सब्सिडी (खाद्य, उर्वरक एवं निर्यात प्रोत्साहन) ब्याज एवं अन्य सब्सिडी, किसानों को ऋण राहत, डाक घाटा, पुलिस, पेन्शन, सामाजिक सेवाएँ (शिक्षा, स्वास्थ्य, प्रसारण), अन्य सामान्य सेवाएँ (सरकार के अंग, कर संग्रहण), विदेशी मामले आदि, आर्थिक सेवाएँ (कृषि, उद्योग, शक्ति, परिवहन, संचार, विज्ञान एवं टेक्नोलॉजी आदि) तथा राज्यों और संघीय क्षेत्रों को अनुदान और विदेशी सरकारों को अनुदान।

प्र.14. भारत के पूर्ववर्ती अप्रत्यक्ष करारोपण की विशेषताएँ लिखिए।

Write the features of India's earlier indireat taxation.

उत्तर भारत के पूर्ववर्ती अप्रत्यक्ष करारोपण में निम्नांकित विशेषताएँ पाई जाती थी—

1. केवल निर्माणी स्तर पर केन्द्रीय उत्पाद शुल्क लागू था, जो कि फुटकर स्तर तक नहीं लागू था।
2. घोषणा प्रारूपों के प्रचलन के साथ अधिकांश सीमा तक कास्केडिंग प्रभाव को कम किया गया था। राज्यस्तरीय वैट के प्रचलन के साथ मूल स्थान आधारित (CST) एवं गंतव्य आधारित बहु बिन्दु करारोपण प्रणाली प्रभावी थी।
3. राज्य स्तरीय वैट के विरुद्ध इनपुट क्रेडिट की पूर्ति केवल माल तक सीमित थी और माल एवं सेवाओं के मध्य आपसी पूर्ति मान्य नहीं थी। इसके साथ, केन्द्रीय विक्रय कर के विरुद्ध किसी भी प्रकार की पूर्ति मान्य नहीं थी।

प्र.15. 'सेवा' की अवधारणा का अर्थ लिखिए।

Write the meaning of the concept of 'Service'.

उत्तर "सेवाएँ" शब्द को इस रूप में परिभाषित किया गया है कि, इसका आशय किसी भी चीज से है, जो माल, मुद्रा एवं प्रतिभूतियाँ नहीं हैं।

तथापि, शब्द "सेवाएँ" में ऐसी गतिविधियाँ शामिल हैं, जो कि मुद्रा के प्रयोग एवं उसके रोकड़ या अन्य किसी रूप में, एक करेंसी से दूसरी अथवा एक डिनोमिनेशन से दूसरे में परिवर्तनीय हैं, जिसके लिए प्रतिफल वसूल किया जाता है। अत: एक रूप/डिनोमिनेशन से दूसरे में, किसी करेंसी का विनिमय किया जाता है, उसे सेवा माना गया है।

खण्ड-ब लघु उत्तरीय प्रश्न

प्र.1. वस्तु और सेवाकर से आप क्या समझते हैं? स्पष्ट कीजिए।

What do you understand by 'Goods and Services Tax'? Make clear.

उत्तर

वस्तु और सेवाकर
(Goods and Service Tax)

वस्तु और सेवाकर (GST) एक एकल एवं व्यापक (Single and Comprehensive) कर है जिसमें सभी अप्रत्यक्ष करों का समावेश कर दिया गया है। 1 जुलाई, 2017 से समूचे देश में लागू GST एक सम्पूर्ण कर है जो बहुचरण के आधार पर प्रत्येक

मूल्य वृद्धि पर लगाया जाता है। मूल्य वृद्धि के चरण में Input Credit पर प्रत्येक चरण पर कर का भुगतान किया जाता है। जब प्रत्येक चरण के मूल्य वृद्धि पर GST लगाना आवश्यक होता है तब पूर्ति श्रृंखला में अन्तिम डीलर द्वारा लगाया जाने वाला GST अन्तिम उपभोक्ता को वहन करना होता है। इसे पूर्व के सभी चरणों के लाभों के साथ समायोजित किया जाता है।

भारत सरकार द्वारा समूचे देश में GST लागू करने को उद्देश्य यह है कि देश में वस्तुओं तथा सेवाओं पर जो बहुल कर (Multiple Tax) लगाए जाते हैं उनके स्थान पर एक ही दर पर पूरे देश में कर व्यवस्था का सरलीकरण करना है। GST की इस नई प्रणाली में कराधान उत्पादन-आधारित (Production Based) न होकर उपभोग आधारित (Consumption Based) हो गया है।

भारत में लागू GST की दोहरी संरचना है अर्थात् GST के दो हिस्से है—केन्द्रीय GST तथा राज्य GST। केन्द्र एवं राज्य सरकारों को अपने कर निर्धारण पर कानून बनाने तथा लागू करने की छूट प्रदान की गई है।

वस्तु और सेवाकर का स्वरूप

1. एक राज्य के भीतर होने वाले लेन-देन पर केन्द्र सरकार द्वारा लगाए कर को केन्द्रीय वस्तु एवं सेवाकर (CGST) कहा जाता है। CGST केन्द्र सरकार के खाते में जमा किया जाता है।
2. राज्यों द्वारा लगाए गए करों को राज्य वस्तु एवं सेवाकर (SGST) कहा जाता है। SGST को राज्य सरकार के खाते में जमा किया जाता है।
3. इसी प्रकार केन्द्र द्वारा प्रत्येक अन्तर-राज्य वस्तुओं और सेवाओं की आपूर्ति पर एकीकृत GST (IGST) लगाने एवं प्रशासित करने की व्यवस्था है।

प्र.2. जीएसटी से प्रतिस्थापित किए गए कर कौन-से है?
Which taxes have been replaced by GST?

उत्तर

जीएसटी से प्रतिस्थापित किए गये कर
(Taxes Replaced by GST)

केन्द्र सरकार द्वारा लगाए और संग्रह किए जाने वाले कर

1. केन्द्रीय उत्पाद शुल्क (Central Excise Duty)
2. उत्पाद शुल्क (दवाइयाँ और प्रसाधन पदार्थ) [Duties of Excise (Medicinal and Toilet Preparations)]
3. अतिरिक्त उत्पाद शुल्क (विशेष महत्त्व की वस्तुएँ) [Additional Duties of Excise (Goods of Special Importance)]
4. अतिरिक्त उत्पाद शुल्क (कपड़ा और कपड़ों की वस्तुएँ) [Additional Duties of Excise (Textiles and Textile Products)]
5. अतिरिक्त सीमा शुल्क (सामान्यत: सीवीडी से जाना जाता है) [Additional duties of Customs (Commonly Known as CVD)]
6. अतिरिक्त विशेष सीमा शुल्क (एसएडी) [Special Additional Duty of Customs (SAD)]
7. सेवा कर (Service Tax)
8. केन्द्रीय अधिभार और उपकर जहाँ तक वे वस्तुओं और सेवाओं से सम्बन्धित हैं (Central Surcharges and Cesses so far as they relate to supply of goods and services)

राज्य कर

9. राज्य वैट (मूल्य वर्धित कर) (State VAT)
10. केन्द्रीय बिक्री कर (Central State Tax)
11. विलास कर (लक्जरी टैक्स) (Luxury Tax)
12. प्रवेश कर (सभी रूपों में) [Entry Tax (all forms)]
13. मनोरंजन और मनोरंजनक कर (सिवाय तब जब स्थानीय निकायों द्वारा करारोपण किया गया है) [Entertainment and Amusement Tax (except when levied by the local bodies)]

TOUCH 'n' PASS

14. विज्ञापनों पर कर (Taxes on advertisements)
15. क्रय कर (Purchase Tax)
16. लॉटरी, शर्त और जुए पर कर (Taxes on lotteries, betting and gambling)

प्र.3. भारतीय कर प्रणाली की प्रमुख विशेषताएँ लिखिए।
Write the main features of Indian Tax System.

उत्तर

भारतीय कर प्रणाली की प्रमुख विशेषताएँ
(Main Features of Indian Tax Symtem)

भारतीय कर-प्रणाली की प्रमुख विशेषताओं को निम्नवत् व्यक्त किया जा सकता है—

1. **करारोपण के सिद्धान्तों के अनुरूप**—भारतीय कर प्रणाली करारोपण के सिद्धान्तों के अनुरूप है। इसमें लगभग वे सभी विशेषताएँ पाई जाती हैं, जो एक अच्छी कर प्रणाली में होनी चाहिए। प्रगतिशीलता, लोचशीलता, मितव्ययिता तथा उत्पादकता आदि विशिष्टताएँ भारतीय कर प्रणाली में स्पष्ट दिखाई पड़ती हैं।
2. **विस्तृत आधार वाली बहु-कर प्रणाली**—भारतीय कर प्रणाली में विविध प्रकार के प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष करों का समावेश है। इसमें जहाँ कुछ कर यथा—आय-कर, धन-कर एवं सम्पत्ति कर ऐसे हैं, जो आय की असमानता को दूर करने के साथ-साथ सरकार की आय का मुख्य स्रोत भी हैं। वहीं दूसरी ओर अप्रत्यक्ष कर भी हैं, जो आनुपातिक दर पर लगाए जाते हैं। इस तरह, भारतीय कर प्रणाली को व्यापक बनाने के साथ-साथ इसे आदर्श रूप भी देने का भी प्रयास किया गया है।
3. **कर आगम में प्रत्यक्ष करों का योगदान**—भारतीय कर आगम में परोक्ष करों की अपेक्षा प्रत्यक्ष करों का योगदान अधिक रहा है। वर्तमान समय में भारत में कर आगम का लगभग 55.9 प्रतिशत भाग प्रत्यक्ष करों से तथा 43.8% परोक्ष करों से प्राप्त होता है। प्रत्यक्ष करों का प्रभाव तत्काल अनुभव किया जाता है, अत: लोग इसका विरोध करते हैं।
4. **समाजवादी कराधना**—स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् देश में समाजवादी समाज की स्थापना का प्रयास किया गया है और उसी के अनुरूप कर ढाँचे का निर्माण किया गया है। यहाँ कर प्रगतिशील आधार पर लगाए जाते हैं। कर ढाँचे की प्रगतिशीलता न केवल प्रत्यक्ष करों में पाई जाती है, बल्कि परोक्ष कर में भी कुछ अंश तक पाई जाती है। प्राय: सरकार विलासिता की वस्तुओं पर तथा उन वस्तुओं पर ऊँची दर से कर लगाती है, जिनका उपभोग समाज के धनी वर्ग द्वारा किया जाता है। गरीबों को तरह-तरह से कर राहत प्रदान की जाती है। निम्न आय वर्ग द्वारा उपभोग की जाने वाली वस्तुएँ या तो कर मुक्त हैं अथवा उन पर बहुत नीची दर से कर लगाया जाता है।
5. **अधिकतम सामाजिक लाभ**—भारतीय कर प्रणाली का मुख्य उद्देश्य आय प्राप्त करना ही नहीं, बल्कि सामाजिक कल्याण को अधिकतम करना भी है। इसके लिए यह प्रयास किया जाता है कि करारोपण के पश्चात् लोगों की बचत करने तथा कार्य करने की क्षमता व इच्छा पर प्रतिकूल प्रभाव न पड़े, साथ ही आय की असमानता भी घटे।
6. **कर आय में राष्ट्रीय आय के अनुपात में वृद्धि**—भारत में आर्थिक विकास के साथ-साथ कर अनुपात में भी वृद्धि हुई है। 1950-51 में केन्द्र, राज्य एवं केन्द्रशासित प्रदेशों की कर आय, राष्ट्रीय आय का मात्र 6.8%, थी, जो बढ़कर 1960-61 में 88%, 1970-71 में 12.0%, 1980-81 में 14.6%, 1990-91 में 15.4%, 2010-11 में 16.0% तथा 2018-19 में 23% हो गयी। इस तरह, स्वतंत्रता के पश्चात् योजनाकाल में भारत का कर प्रयास सराहनीय रहा।
7. **अंतर्निहित लोच का अभाव**—कर प्राप्ति की लोच, कर आय तथा राष्ट्रीय आय के मध्य आनुपातिक सम्बन्ध को बताता है। एक से अधिक कर आय लोच की ही लोचदार कर कहा जाता है। भारतीय करों की लोच के अध्ययन से यह जानकारी प्राप्त होती है कि राज्यों के बिक्री कर को छोड़कर अन्य सभी केन्द्रीय एवं राज्यों के करों की आय लोच एक से कम रही है। इसका तात्पर्य यह है कि भारतीय कर प्रणाली बेलोच है अर्थात् इसमें अंतर्निहित (Built-in-flexibility) का अभाव है। यही कारण है कि कर राजस्व में वृद्धि के लिए करों की दरों तथा उनके आधार में बार-बार परिवर्तनों की आवश्यकता पड़ी है। इन परिवर्तनों से ही कर अनुपात में वृद्धि संभव हो सकी है।

TOUCH 'n PASS

प्र.4. पूर्ववर्ती 'मूल्य वर्द्धित' करारोपण की कमियाँ कौन-सी थी।
What were the shortcomings of the earlier value added taxation process?

उत्तर

पूर्ववर्ती मूल्य वर्द्धित करारोपण की कमियाँ
(Shortcomings of the Earlier Value Added Taxation Process)

पूर्ववर्ती मूल्य वर्द्धित करारोपण की निम्नलिखित कमियाँ हैं—

1. **टैक्स कास्केडिंग**—केन्द्रीय एवं राज्य करारोपण के अधीन 'सोपानी प्रभाव' होता है, जिसका प्रमुख कारण केन्द्रीय एवं राज्य करों के मध्य आंशिक सेट ऑफ की स्वीकृति थी। खनन, कृषि, थोक एवं फुटकर विक्रय और अनेक सेवाएँ सेनवेट के क्षेत्र से बाहर थीं और उन पर केन्द्र द्वारा सेवा कर उदगृहीत होता था। कर मुक्त क्षेत्रों को सेनवेट या इनपुट/इनपुट सेवाओं पर चुकता सेवा कर का क्रेडिट उपलब्ध नहीं था।
   इसी प्रकार, राज्य वैट के अधीन कर मुक्त क्षेत्रों को इनपुट्स का क्रेडिट स्वीकृत नहीं था। कास्केडिंग का एक अन्य प्रमुख कारक केन्द्रीय विक्रय कर था, जो अन्तर्राज्यीय विक्रय पर लगाया जाता था, जिसके विरुद्ध कोई क्रेडिट उपलब्ध नहीं था।
2. **लेन-देन की प्रकृति को समझने में दुरुहता**—माल एवं सेवाओं के मध्य अन्तर करना और अधिक जटिल हो जाता था, यदि ऐसी स्थिति सॉफ्टवेयर, कॉपी राइट्स, पैटेन्ट्स एवं अन्य अदृश्य माल के अंतरंग का मामला है। क्या यह 'माल का विक्रय' है अथवा 'सेवाओं की प्रदायता'। साथ ही, माल सेवाएँ एवं अन्य प्रकार की पूर्तियों को एकमुश्त बण्डल, जो उपभोक्ताओं को विक्रय के लिए प्रस्तुत किया गया, जैसा कि पूर्ति श्रृंखला व्यवस्था में किया जाता था। संविधान के अधीन कराधान की शक्तियों के विभाजन की पूर्ववर्ती व्यवस्था में न तो केन्द्र और न राज्य, ऐसी 'बण्डल' पर निर्बाध रीति से कर लागू नहीं कर सकते थे।
3. **कर की दरों एवं प्रावधानों में विसंगतियाँ**—पूर्ववर्ती वैट संरचना में समस्त राज्यों के मध्य विसंगतियाँ व्याप्त थीं, जो न केवल कर की दरों सम्बन्धी थीं, वरन् प्रक्रिया सम्बन्धी होने के साथ-साथ परिभाषाओं, गणनाओं एवं विमुक्तियों सम्बन्धी भी थीं।
   सैद्धान्तिक रूप से कोई यह आशा कर सकता है कि गरीबों द्वारा प्रयोज्य, मूल आवश्यक वस्तुओं पर कर की निम्न दर लागू की जाएगी, परन्तु यह राज्य वैट व्यवस्था में नहीं थी, जबकि बहुमूल्य धातुओं पर न्यूनतम दर 1% प्रभावी थी, जबकि चुनींदा मूल आवश्यकताओं पर 5% की दर लागू थी, जो कि अनेक औद्योगिक इनपुट्स एवं आई०टी० उत्पादों पर भी वहीं 5% की दर लागू थी। हरियाणा, उत्तर प्रदेश जैसे—अनेक राज्यों में अनुमोदित मूल दरों के ऊपर अतिरिक्त कर अथवा अधिभार और जोड़ दिया गया था।
4. **स्थानीय विक्रय बनाम केन्द्रीय विक्रय**—यह निश्चित करना कि प्रश्नाधीन विक्रय एक ही राज्य के अन्तर्गत अथवा अन्य राज्यों के मध्य है अर्थात् विक्रय व्यवहार की स्थिति सुनिश्चित की जा सके। यद्यपि, केन्द्रीय विक्रय कर केन्द्र द्वारा उदगृहीत किया जाता था, परन्तु इसका संग्रहण एवं संचय वसूल करने वाले राज्य द्वारा किया जाता था।
   ऐसी स्थिति में अनेक महत्त्वपूर्ण रूप में विवाह इसी पर आधारित होते थे। अंतत: केन्द्रीय सरकार ने CST Act के अधीन प्रावधान करके 'केन्द्रीय अपीलेट प्राधिकरण' का निरूपण किया, जिससे ऐसे मामलों का समाधान हो सके।
5. **व्याख्यात्मक समस्याएँ**—विभिन्न प्रावधानों की व्याख्या के साथ वस्तुओं की श्रेणियों का निर्धारण प्रमुख समस्या रही और अधिकांश न्यायालयीन मामले इसी एकमात्र बिन्दु से सम्बन्धित होते थे। किसी गतिविधि का विक्रय या ठेका संकर्म, विक्रय या सेवा के रूप में निर्धारण अनेक मामलों में शंकामुक्त नहीं था।
6. **निर्माण उद्देश्य से उत्पाद शुल्क का उदग्रहण**—भारत में निर्मित या उत्पादित माल पर उत्पाद-शुल्क उदग्रहणीय था। करारोपण को निर्माण बिन्दु पर सीमित करना, कर-व्यवस्था के तटस्थ एवं सक्षम संचालन में गम्भीर बाधा थी। कर-योग्य घटना का निर्माण बिन्दु पर रखता ही स्वयं में सीमित आधार था, जो कि उत्पाद शुल्क आरोपण का प्रारम्भिक बिन्दु था, जिसको विभिन्न क्षेत्र सम्बन्धी सशर्त एवं बिना शर्त विमुक्तियों के कारण और अधिक संकुचित कर दिया गया था।
7. **प्रशासनिक जटिलताएँ**—करारोपण की संरचनात्मक कमियों को उनके कमजोर प्रशासनिक क्षमता द्वारा और अधिक गम्भीर बना दिया था। किसी भी स्वयं निर्धारणा कर-व्यवस्था के लिए आवश्यक 'करदाता सेवाओं' की वास्तविक रूप में अनुपस्थिति या सकल अपर्याप्तता, प्रशासन के केन्द्रीय एवं राज्य स्तरों पर व्याप्त थी। अनेक प्रक्रियाएँ अभी तक मानव

TOUCH 'n PASS

संचालित थीं, जिससे स्वचालन की क्षमताओं में रुकावट आती थी। इससे न केवल अनुपालना लागतों में वृद्धि होती थी वरन् राजस्व संग्रहण में भी कमी आती थी।

8. **अकुशल कर अनुपालना**—बहु-स्तरीय प्रशासनिक व्यवस्था, मानवीय रीतियों से अनुपालना निरीक्षण, आई०टी० संरचना में नियमित रुकावटों आदि के कारण बेरोकटोक लीकेज/छिपाव पाए जाते थे, जिसके कारण लेन-देनों की शृंखला में टूटन, बीजक मूल्य की कम रिपोर्टिंग, पूर्तिकर्त्ता द्वारा सरकार को कर जमा में देरी/अपर्याप्तता के कारण इनपुट क्रेडिट की उपलब्धता में बाधाएँ पाई जाती थीं। सबसे ऊपर राज्य को विकास कार्यों के लिए संसाधनों की उपलब्धि पर दबाव के कारण राज्य प्रशासन द्वारा कर वापसी को रोक लिया जाता रहा था, फलस्वरूप व्यावसायिक स्तर पर रोकड़ प्रवाह बाधित होता रहता था।

प्र.5. माल एवं सेवा कर (जी०एस०टी०) की अवधारणा को समझाइए।
Explain the concept of Goods and Services Tax (G.S.T.).

उत्तर

माल एवं सेवा कर (जी०एस०टी०) की अवधारणा
(The Concept of Goods & Services Tax (GST)

जी०एस०टी० एक मूल्य संवर्द्धित कर है, जो माल एवं सेवाओं के निर्माण, विक्रय एवं उपभोग पर लागू होता है।
जी०एस०टी० के अन्तर्गत उत्पादक/सेवाप्रदाता बिन्दु से फुटकर विक्रय/उपभोक्ता स्तर, तक निर्बाध विस्तृत एवं निरन्तर कर क्रेडिट की शृंखला द्वारा पूर्ति चक्र के प्रत्येक स्तर तक, केवल मूल्य सम्वर्द्धन का ही करारोपण होता है।
माल या सेवाओं के क्रय पर चुकता जी०एस०टी० का क्रेडिट, प्राप्तकर्त्ता को प्रत्येक स्तर पर स्वीकृत होता है और ऐसी क्रेडिट का उपयोग उसके द्वारा पूरित माल या सेवाओं की पूर्ति पर देय जी०एस०टी० के विरुद्ध किया जा सकता है। इस प्रकार, अंतत: केवल अन्तिम उपभोक्ता ही उस जी०एस०टी० को वहन करता है, जिसके/सम्पूर्ण पूर्ति शृंखला में अन्तिम पूर्तिकर्त्ता ने वसूल किया है, जिसमें सभी पूर्ववर्ती स्तरों पर चुकता जी०एस०टी० के क्रेडिट का लाभ प्राप्त हो चुका है।
चूँकि, जी०एस०टी० के अधीन प्रत्येक स्तर पर केवल मूल्य सम्वर्द्धन पर ही कर लगाया जाता है, अत: कर पर कर नहीं लगाने के कारण इस प्रणाली में कास्केडिंग प्रभाव नहीं होता है।
जी०एस०टी० एक सर्वथा नवीन अप्रत्यक्ष कर सुधार का प्रयास है, जिससे एक सामान्य (बाधा रहित) राष्ट्रीय बाजार का सृजन होगा। जी०एस०टी० के अधीन उत्पाद शुल्क, सेवा कर, वैट, केन्द्रीय विक्रय कर, विलासिता कर, मनोरंजन कर, प्रवेश कर आदि अनेक अप्रत्यक्ष करों को एक ही कर में समाहित किया गया है।

माल बनाम सेवाएँ
(Goods Vs. Services)

यद्यपि, जी०एस०टी० माल एवं सेवाओं दोनों पर उदगृहीत किया जाता है, फिर भी लेन-देन की पहचान अर्थात् यह 'माल' है या 'सेवा' सम्बन्धी है, अति आवश्यक है, क्योंकि—

1. माल एवं सेवाओं पर कर की भिन्न दरें हैं,
2. पूर्ति के स्थान सम्बन्धी प्रावधानों में भिन्नता है,
3. एकमुश्त लेन-देनों कों "माल" या "सेवा" के रूप में विचार करना।

प्र.6. CGST, SGST एवं IGST करों के मध्य अन्तर को लिखिए।
Write the difference between CGST, SGST and IGST tax.

उत्तर

CGST, SGST एवं IGST करों के मध्य अन्तर
(Differences between CGST, SGST and IGST Taxes)

आधार	CGST	SGST	IGST
GST का उद्ग्राहक	केन्द्रीय सरकार	राज्य सरकार	मिश्रित उद्ग्रहण परन्तु केन्द्र सरकार द्वारा संग्रहण

TOUCH 'n' PASS

पूर्व के प्रतिस्थापित कर	सेवाकर, केन्द्रीय उत्पाद शुल्क CVD, विशेष अतिरिक्त शुल्क (SAD), उत्पाद शुल्क अतिरिक्त देय (ADE) और अन्य केन्द्रीय अप्रत्यक्ष कर जो सम्भावित हों	वैट, विक्रय कर, विलासिता शुल्क, प्रवेश शुल्क, मनोरंजन कर, क्रय कर, चुंगी, लॉटरी पर कर	केन्द्रीय विक्रय कर (CST)
प्रभावशीलता	राज्य के अधीन पूर्ति	राज्य के अधीन पूर्ति	अन्तर्राज्यीय पूर्तियाँ और आयात
इनपुट टैक्स क्रेडिट	CGST एवं IGST के विरुद्ध	SGST एवं IGST के विरुद्ध	CGST, SGST एवं IGST के विरुद्ध
कर राजस्व भागीदारी	केन्द्रीय सरकार	राज्य सरकार	केन्द्र एवं राज्य सरकार के मध्य विभाजन
विमुक्ति सीमा	₹ 20 का वार्षिक आवर्त	वार्षिक आवर्त ₹ 20 लाख	परिभाषित नहीं
कम्पोजीशन स्कीम	₹ 1 करोड़ के आवर्त तक डीलर लाभार्थी हैं	₹ 1 करोड़ के आवर्त तक डीलर लाभार्थी हैं	कम्पोजीशन स्कीम उपलब्ध नहीं
निशुल्क पूर्तियाँ	निशुल्क पूर्तियों पर CGST लागू है	निशुल्क पूर्तियों पर SGST लागू है।	निशुल्क पूर्तियों पर IGST लागू है
पंजीयन	₹ 20 लाख वार्षिक आवर्त तक लागू नहीं है।	₹ 20 लाख के वार्षिक आवर्त तक लागू नहीं है।	राज्य के बाहर माल की पूर्ति में पंजीयन आवश्यक होगा।

विभिन्न प्रकार के GST करों में अन्तर
(Differences between Different Types of GST)

अन्तर के प्रकार	CGST	SGST	IGST	UTGST
प्रभावी लेन-देन (माल/सेवाएँ)	एक राज्य के अन्तर्गत	एक राज्य के अन्तर्गत	अन्तरर्राज्यीय (दो राज्यों के मध्य)	एक संघ प्रदेश के अन्तर
संग्राहक	केन्द्रीय सरकार	राज्य सरकार	केन्द्रीय सरकार	संघ प्रदेशीय सरकार
लाभार्थी	केन्द्रीय सरकार	राज्य सरकार	केन्द्रीय एवं राज्य सरकार	संघ प्रदेशीय सरकार
इनपुट क्रेडिट के उपयोग की प्राथमिकता	CGST IGST	SGST IGST	IGST CGST SGST	UTGST IGST

प्र.7. केन्द्रीय सरकार के व्यय में वृद्धि के कारण स्पष्ट कीजिए।
Explain the reasons for the increase in the expenditure of the central government.

उत्तर

केन्द्रीय सरकार के व्यय में वृद्धि के कारण
(Reasons for the Increase in the Expenditure of the Central Government)

भारत सरकार के व्यय में वृद्धि के लिए कई कारण सम्मिलित रूप में उत्तरदायी हैं। देश में प्रजातांत्रिक शासन प्रणाली के प्रचलन, पंचवर्षीय योजनाओं के कार्यान्वयन, सामाजिक सेवाओं तथा प्रतिरक्षा सेवाओं के विस्तार ने सरकार के व्यय में अप्रत्याशित वृद्धि कर दी है।

TOUCH 'n PASS

संक्षेप में भारत में सरकारी व्यय की वृद्धि के कारण निम्नलिखित हैं—

1. **प्रतिरक्षा सेवाओं का विस्तार**—भारत को 1962, 1965, 1971 तथा 1999 में पड़ोसी देशों से युद्ध करना पड़ा। इन युद्धों एवं युद्ध की आशंका के फलस्वरूप देश के रक्षा बजट में पर्याप्त वृद्धि हो गई है। वर्तमान समय में पाकिस्तान भारत के साथ परोक्ष युद्ध में संलग्न है तथा चीन सीमा पर दबाव बनाए है। अत: देश की सीमाओं की रक्षा करने के लिए मौजूदा परिस्थितियों में देश के प्रतिरक्षा व्यय में वृद्धि किया जाना स्वाभाविक है। कारगिल संघर्ष के उपरांत आधुनिक युद्ध उपकरणों से देश की सेना को सुसज्जित करना और भी आवश्यक समझा गया।
2. **सामाजिक सुरक्षा एवं कल्याणकारी सेवाओं में वृद्धि**—भारतीय संविधान में देश में कल्याणकारी राज्य एवं समाजवादी समाज की स्थापना का लक्ष्य रखा गया है। इस दृष्टि से चालू की गई सामाजिक सुरक्षा एवं कल्याणकारी योजनाओं पर भारत सरकार को बहुत बड़ी धनराशि व्यय करनी पड़ती है।
3. **ऋण तथा ब्याज की अदायगी में वृद्धि**—सरकार को विकास कार्यक्रमों एवं कल्याणकारी सेवाओं को पूरा करने के लिए बड़ी मात्रा में ऋण लेने पड़ रहे हैं जिन पर ब्याज आदि के रूप में काफी धनराशि व्यय करनी पड़ती है। ऋण सेवाओं पर होने वाले व्यय में निरंतर वृद्धि होती जा रही है।
4. **बढ़ता हुआ मूल्य स्तर एवं विकास लागतें**—देश में कुछ वर्षों से मूल्यस्तर में तेजी से वृद्धि हुई है। इस प्रकार बढ़ते हुए मूल्यों ने एक ओर जहाँ सरकारी कर्मचारियों के वेतन एवं महँगाई भत्ते के रूप में सरकारी व्यय को बढ़ा दिया है तो दूसरी ओर बढ़ती हुई विकास लागतों ने सरकारी व्यय में अत्यधिक वृद्धि कर दी है।
5. **प्रशासनिक व्यय में वृद्धि**—भारत में बढ़ती हुई जनसंख्या तथा उसके फलस्वरूप उत्पन्न समस्याओं ने सरकार के प्रशासनिक व्यय में अत्यधिक वृद्धि कर दी है। योजनाकाल में सरकारी विभागों के निरंतर विस्तार ने सरकारी व्यय को और भी अधिक बढ़ा दिया है।
6. **लोकतंत्रीय शासन प्रणाली**—भारत में लोकतंत्रीय शासन प्रणाली प्रचलित है जिसके अन्तर्गत संसद एवं विभिन्न मंत्रालयों तथा विभागों की स्थापना की गई है। इस शासन प्रणाली के बढ़ते कलेवर के साथ-साथ सार्वजनिक व्यय का बढ़ना स्वाभाविक है।
7. **आर्थिक विकास एवं योजना पर बढ़ता व्यय**—भारत में तीव्र आर्थिक विकास के लक्ष्यों की प्राप्ति हेतु पंचवर्षीय योजनाओं को लागू किया गया है जिन पर भारी मात्रा में पूँजीगत एवं चालू व्यय करना पड़ता है। विशेष रूप से दीर्घकालीन विकास परियोजनाओं पर सरकारी बजट का एक बड़ा भाग खर्च हो जाता है। इसके अतिरिक्त केन्द्रीय सरकार को राज्य सरकारों के विकास कार्यक्रमों के संचालन हेतु भी बड़ी मात्रा में धन का अनुदान देना पड़ता है।
8. **आर्थिक सेवाओं के विकास पर व्यय**—आर्थिक सेवाओं से अभिप्राय उन सेवाओं से है जो प्रत्यक्ष रूप से देश के आर्थिक विकास में सहायता पहुँचाती हैं। इस मद के अन्तर्गत मुख्य रूप से कृषि तथा सहायक सेवाएँ, उद्योग एवं खनिज, विदेशी व्यापार, परिवहन एवं संचार के साधनों पर किया जाने वाला व्यय सम्मिलित किया जाता है।
9. **सहायक अनुदान**—संविधान की धारा 275 के अनुसार केन्द्रीय सरकार द्वारा राज्य सरकारों तथा केन्द्र शासित प्रदेशों को सहायता अनुदान दिए जाते हैं। अनुदानों की यह राशि निरंतर बढ़ती जा रही है।

प्र.8. बजट के आधारभूत नियमों का उल्लेख कीजिए।
Explain the basic rules of budget.

उत्तर

बजट के आधारभूत नियम
(Basic Rules of Budget)

बजट के बनाने, उसे अपनाने तथा क्रियान्वित करने की दृष्टि से समय-समय पर कुछ आधारभूत नियमों का निर्धारण किया जाता रहा है। ये नियम निम्न प्रकार हैं—

1. **व्यापकता** (Comprehensive) **का नियम**—बजट व्यापक होना चाहिए। इसका अर्थ यह है कि बजट में सरकारी आय एवं व्यय का पूरा और विस्तृत विवरण होना चाहिए और इसके द्वारा सरकार की सम्पूर्ण आर्थिक स्थिति की जानकारी सम्भव होनी चाहिए।

TOUCH 'n PASS

2. **एकता का नियम** (Canon of Unity)—यह बजट का एक महत्त्वपूर्ण नियम है और इस नियम के सन्दर्भ में बजट में निम्न व्यवस्थाएँ होनी चाहिए—(अ) सरकार की सभी आयों को एक सामान्य विधि (General fund) में रखा जाना चाहिए। (ब) बजट को कुछ आगम तथा व्यय के रूप में दिखाया जाना चाहिए, अर्थात् शुद्ध आगम या शुद्ध व्यय के रूप में नहीं दिखाया जाना चाहिए, तथा (स) बजट की विभिन्न मदों को एक तार्किक, क्रमबद्ध तथा एकीकृत (Logical, Systematic Unified) रूप में प्रस्तुत किया जाना चाहिए।
3. **अनन्यता का नियम** (Canon of Exclusiveness)—इसका अर्थ यह है कि बजट का सम्बन्ध सरकार के वित्तीय मामलों से है, अत: बजट में केवल वित्तीय पहलू ही शामिल किए जाने चाहिए।
4. **विशिष्टता का नियम** (Canon of Specification)—विशिष्टता का नियम इस बात पर जोर देता है कि बजट में आय और व्यय की सभी मदें पृथक्-पृथक् और स्पष्ट रूप से उल्लिखित होनी चाहिए।
5. **यथार्थता का नियम** (Canon of Accuracy)—बजट यथार्थता पर आधारित हो, अर्थात् बजट के अनुमान काल्पनिक न होकर उचित समंकों, अनुभवों और तथ्यों पर आधारित हों। अनुमानों और वास्तविक समंकों में अधिक अन्तर होने पर बजट की प्रभावशीलता कम हो जाती है।
6. **वार्षिकता का नियम** (Canon of Annuality)—बजट को सामान्यत: एक वर्ष की अवधि के लिए तैयार किया जाना चाहिए। इस दृष्टि से वर्तमान समय में प्राय: प्रत्येक देश में एक वित्तीय वर्ष का निर्धारण किया जाता है।
7. **प्रचार का नियम** (Canon of Publicity)—प्रजातान्त्रिक शासन व्यवस्था के सन्दर्भ में यह नियम काफी महत्त्वपूर्ण है कि बजट प्रस्तावों और बजट की रूपरेखा का जनता में व्यापक प्रचार किया जाना चाहिए।
8. **लोच का नियम** (Canon of Flexibility)—बजट में उचित मात्रा में लोच का गुण भी होना चाहिए, जिससे वर्ष भर में उत्पन्न नवीन परिस्थितियों एवं आवश्यकताओं के अनुसार बजट व्यवस्थाओं के संशोधन किए जा सकें।
9. **कार्यात्मक यथेष्ठता का नियम** (Canon of Operational Adequacy)—इस नियम के अनुसार बजट सरकार की आर्थिक नीतियों और योजनाओं के अनुसार होना चाहिए तथा उसमें सरकार की विभिन्न आर्थिक समस्याओं के समाधान की क्षमता होनी चाहिए।
10. **सन्तुलित बजट का नियम** (Canon of Balanced Budget)—प्रारम्भ में इस नियम को एक आधारभूत नियम के रूप में स्वीकार किया गया था कि बजट सन्तुलित होने चाहिए, अर्थात् सरकार के आगम तथा व्यय समान होने चाहिए।

प्र.9. केन्द्रीय उत्पाद शुल्क की प्रमुख विशेषताओं का उल्लेख कीजिए।
Mention the main features of Central Excise Duty.

उत्तर

केन्द्रीय उत्पाद शुल्क की प्रमुख विशेषताएँ
(Main Features of Central Excise Duty)

भारत में माल के निर्माण पर केन्द्रीय उत्पाद शुल्क उदग्रहणीय था, जिसकी प्रशासनिक व्यवस्था केन्द्रीय सरकार द्वारा की जाती थी। केन्द्रीय उत्पाद शुल्क की प्रमुख विशेषताएँ निम्नांकित थीं—

1. केन्द्रीय उत्पाद शुल्क अधिनियम, 1944 में उल्लिखित व्यवस्थाओं के अधीन केन्द्रीय उत्पाद शुल्क उदग्रहणीय था, जो कि मूल्यानुसार एवं विशिष्ट दरों (दोनों) के रूप में केन्द्रीय उत्पाद शुल्क टैरिफ अधिनियम, 1985 की प्रथम एवं द्वितीय अनुसूचियों द्वारा निर्धारित होता था।
2. केन्द्रीय उत्पाद शुल्क उद्ग्रहण की कर देय घटना 'निर्माण' थी और माल के निर्माण के साथ ही उत्पाद शुल्क का उदय हो जाता था, यद्यपि व्यावहारिक रूप से निर्मित माल की निकासी पर ही शुल्क की वसुली होती थी।
3. देय उत्पाद शुल्क के विरुद्ध, इनपुट्स/पूँजीगत माल पर चुकता उत्पाद शुल्क एवं CVD की पूर्ति मान्य थी, जिसका नियमन सेनवेट क्रेडिट नियमावली, 2004 की निम्नांकित प्रमुख व्यवस्थाओं के अधीन किया जाता था—
   (a) कास्केडिंग प्रभाव का विलोपन 'कर क्रेडिट प्रणाली' द्वारा होता था।
   (b) उत्पाद शुल्क एवं सेवा कर के मध्य 'सेट ऑफ' एक-दूसरे के विरुद्ध स्वीकृत था, यद्यपि माल के विक्रय की स्थिति में विक्रय कर/वैट के विरुद्ध उत्पाद शुल्क का समायोजन (पूर्ति) स्वीकृत नहीं थी।

TOUCH 'n' PASS

प्र.10. कर संरचना से आप क्या समझते हो? तथा इसके प्रकार भी लिखिए।
What do you understand by tax structure and also write its types.

उत्तर

भारत में जी०एस०टी० संरचना
(Framework of GST in India)

भारत में दोहरी जी०एस०टी० व्यवस्था को केन्द्र एवं राज्यों द्वारा समवर्ती रूप में अपनाया गया है अर्थात् केन्द्र एवं राज्य एकसाथ माल एवं सेवाओं पर करारोपित करते हैं। राज्यों को अपने राज्य के अन्तर्गत पूर्ति और केन्द्र द्वारा अन्तर्राज्यीय पूर्ति को करारोपित किया जाता है। जम्मू एवं कश्मीर सहित जी०एस०टी० सम्पूर्ण भारत में लागू है।

माल एवं सेवाओं की पूर्ति के सभी ऐसे लेन-देनों पर गंतव्य आधारित जी०एस०टी० लागू होता है, जो (कुछ अपवादों को छोड़कर) प्रतिफल के लिए किए जाते हैं।

कर संरचना एवं प्रकार
(Structure and Type of Taxes)

भारत में दोहरी जी०एस०टी० को लागू किया गया है, जिसमें माल एवं सेवाओं सम्बन्धी ऐसे व्यवहारों पर करारोपण किया जाता हे, जो प्रतिफल के लिए किए जाते हैं। उन पर दो प्रकार का करारोपण होता है अर्थात् CGST (केन्द्रीय जी०एस०टी०) एवं SGST (राज्य जी०एस०टी०)।

केन्द्रीय जी०एस०टी (CGST)

CGST के प्रादुर्भाव से पूर्ववर्ती केन्द्रीय उत्पाद शुल्क एवं सेवा कर को प्रतिस्थापित करके, विक्रय सम्बन्धी लेन-देनों पर भी लागू होगा।

संविधान (101वाँ संशोधन) अधिनियम, 2016 में उपयुक्त प्रावधानों के आधार पर केन्द्र, विक्रय पर करारोपण के लिए समर्थ होगा। CGST का प्रशासन केन्द्रीय सरकार द्वारा किया जाएगा। 1 जुलाई, 2017 को सेनवेट क्रेडिट नियम, 2004 के अधीन निर्माता एवं सेवा-प्रदाता के पास उपलब्ध अप्रयुक्त सेनवेट क्रेडिट का शेष आगे जाया जा सकेगा। 1 जुलाई, 2017 को उपलब्ध रहतिया में चुकता कर सम्बन्धी क्रेडिट का अप्रयुक्त शेष आगामी CGST के भुगतान में प्रयोग के लिए उपलब्ध रहेगा।

राज्य जी०एस०टी० (S.G.S.T)

राज्यों में प्रचलित राज्य वैट, प्रवेश कर, चुंगी, विलासिता कर, मनोरंजन कर आदि का प्रतिस्थापन SGST द्वारा किया गया है। राज्य द्वारा सेवाओं पर करारोपण को प्रभावी बनाने के लिए संविधान (101वां संशोधन) अधिनियम, 2016 द्वारा उपयुक्त प्रावधान लागू किए गए। SGST का प्रशासन सम्बन्धित राज्य सरकार द्वारा किया जाता है। देय SGST की वसूली SGST एवं IGST में उपलब्ध क्रेडिट से की जा सकती है। VAT के अधीन व्यापारी को 1 जुलाई, 2017 को उपलब्ध अप्रयुक्त इनपुट वैट क्रेडिट शेष का उपयोग देय SGST के लिए किया जा सकता है। साथ ही 1 जुलाई, 2017 को व्यापारी के पास उपलब्ध स्टॉक में चुकता शुल्क एवं कर को क्रेडिट के रूप में उपयोग के लिए स्वीकृत माना जाएगा। यदि वैट व्यवस्था के अधीन उसके विरुद्ध सेट ऑफ का दावा व्यापारी द्वारा नहीं किया गया है।

IGST (Integrated Goods and Services Tax)

IGST (समान अनुपात में CGST + SGST) का आरोपण सभी अन्तर्राज्यीय पूर्तियों के लिए किया जाएगा। माल सेवाओं की ऐसी पूर्ति, जो अन्तर्राज्यीय व्यापार या वाणिज्य के दौरान की गई है अथवा भारत के बाहर से माल/सेवाओं का आयात किया गया है, उन पर IGST करारोपण किया जाता है।

1 जुलाई, 2017 को व्यापारी के पास उपलब्ध ऐसी पूर्ति के रहतिया में चुकता शुल्क एवं करों का क्रेडिट IGST के भुगतान के विरुद्ध किया जा सकेगा। यदि उसके क्रेडिट का दावा व्यापारी द्वारा नहीं किया गया है।

IGST की वसूली एवं संग्रहण का प्रशासन केन्द्र सरकार द्वारा किया जाएगा। IGST की राशि का विभाजन राज्यों के मध्य GST काउंसिल की सिफारिशों के आधार पर किया जाएगा।

TOUCH 'n' PASS

UTGST (OR UGST)

UTGST ऐसा GST है जो भारत की ऐसी UTs में लागू होता है, जिनके अपने विधानमण्डल (Legislature) नहीं है। ऐसी UTs के मध्य माल/सेवाओं की पूर्तियों के सम्बन्ध में यह विधान लागू होता है। वर्तमान में, भारत में ऐसी पाँच UTs हैं—(1) अण्डमान निकोबार द्वीप समूह, (2) दादर एवं नागर हवेली, (3) चण्डीगढ़, (4) लक्षद्वीप एवं (5) दमन और दीव। ऐसी UTs के मध्य माल/सेवाओं के किसी लेन-देन पर—CGST + UGST लागू है।

ऐसी UTs के लिए पृथक् विधान की आवश्यकता इसलिए हुई कि सामान्य SGST को ऐसी UTs में लागू नहीं किया जा सकता है, जहाँ उनके अपने विधानमण्डल नहीं हैं। दिल्ली एवं पुडुचेरी, यद्यपि UTs हैं, परन्तु उनकी अपनी विधानसभाएँ हैं, इसलिए वहाँ SGST लागू होता है।

UTGST का उद्देश्य प्रत्येक माल/सेवाओं के ऐसे लेन-देन पर कर उदग्रहण एवं संग्रहण करना है, जो बिना विधानमण्डल वाली UTs के मध्य अथवा एक पक्षकार के वहाँ होने पर हुए हैं। यद्यपि, SGST की, विशेषताएँ वहाँ पायी जाती हैं। अत: कुल मिलाकर, ऐसी UTs में वहाँ SGST आवश्यकताओं को संतुष्ट नहीं करते हैं और इस कारण UTGST लागू किया गया है।

खण्ड-स विस्तृत उत्तरीय प्रश्न

प्र.1. केन्द्र सरकार की आय के साधनों के बारे में विस्तार से उल्लेख कीजिए।
Explain in detail about the sources of revenue of the central government.

उत्तर

केन्द्रीय सरकार की आय के साधन
(Source of Revenue of Central government)

केन्द्रीय सरकार की आय के कर साधनों को दो भागों में विभक्त किया जा सकता है—
(I) आय के कर साधन, तथा (II) आय के गैर-कर साधन।
केन्द्रीय सरकार के आय एवं व्यय

(I) आय के कर साधन (Tax Revenue)

केन्द्रीय सरकार के आय के कर साधनों का विवरण और उनकी वर्तमान स्थिति निम्न है—

1. **केन्द्रीय अथवा संघीय उत्पादन कर** (Union Excise Duty)—देश में जिस वस्तु का उत्पादन होता है, जिसके उत्पादन होने के बाद तथा उस वस्तु के उपभोक्ता तक पहुँचने से पूर्व उत्पादन की मात्रा पर जो कर लगाया जाता है, उसे उत्पादन कर कहते हैं। संघीय उत्पादन कर केन्द्रीय सरकार की कर आय का सबसे महत्त्वपूर्ण साधन है। संविधान के अन्तर्गत केन्द्रीय सरकार को शराब, अफीम तथा अन्य अन्य नशीले पदार्थों को छोड़कर देश में उत्पादित की जाने वाली सभी वस्तुओं पर उत्पादन कर लगाने का अधिकार है। वर्तमान समय में देश में जिन वस्तुओं पर उत्पादन कर लगे हुए हैं। इनमें से कुछ मुख्य वस्तुएँ निम्न प्रकार हैं—चीनी, वनस्पति तेल, सूती वस्त्र, कृत्रिम रेशे कपड़े, ऊनी कपड़े, कागज, सीमेण्ट, बिजली के पंखे, चाय, कहवा, अनिर्मित तम्बाकू, जूते, पेण्ट एवं वार्निश इत्यादि।
   संघीय उत्पादन कर द्वारा राजस्व एकत्रित करने के साथ ही निम्न उद्देश्यों की पूर्ति भी होती है—(अ) इन करों को विलासिता की वस्तुओं पर लगाकर धनी वर्ग से अधिक राशि वसूल की जा सकती है, (ब) हानिकारक वस्तुओं पर भारी कर लगाकर उनके उपयोग को रोका जा सकता है, एवं (स) कुटीर उद्योगों को प्रोत्साहन देने के लिए बड़े पैमाने के उद्योगों पर उत्पादन कर लगा दिया जाता है।
   GST लागू होने के बाद इस कर को GST में सम्मिलित कर दिया गया है किन्तु अनेक उत्पाद (जैसे—पेट्रोलियम आदि) अभी भी वस्तु एवं सेवा कर के दायरे से बाहर है।
2. **सीमा शुल्क** (Customs Duty)—केन्द्रीय सरकार की कर आयों में दूसरा स्थान सीमा शुल्कों का है। सीमा शुल्कों से आशय देश के आयातों और निर्यातों पर लगाए जाने वाले शुल्कों से है। सीमा शुल्क को लगाने के दो उद्देश्य हैं—(i) सरकार की आय में वृद्धि करना तथा (ii) विदेशी प्रतियोगिता से देशी उद्योगों को बचाना तथा संरक्षण देना। आयातों पर लगाए जाने वाले शुल्क को आयात-कर तथा निर्यातों पर लगाए जाने वाले शुल्क को निर्यात-कर कहते हैं। यह कर मूल्यानुसार (Advalorem) अथवा मात्रानुसार (Specific) लगाए जाते हैं। सीमा शुल्कों के सम्बन्ध में यह उल्लेखनीय है कि निर्यात-करों की तुलना में आयात-करों से आय अधिक प्राप्त होती है।

TOUCH n PASS

3. **आय-कर** (Income Tax)—आय-कर देश का प्रमुख प्रत्यक्ष कर और केन्द्रीय सरकार की आय का एक महत्त्वपूर्ण साधन है। संविधान के अनुसार कृषि आय को छोड़कर अन्य आयों पर कर लगाने का अधिकार केन्द्रीय सरकार को मिला हुआ है।
4. **निगम-कर** (Corporation Tax)—कम्पनियों की आयों पर लगाए जाने वाले कर को निगम-कर कहा जाता है।
5. **सम्पत्ति-कर** (Wealth Tax)—सम्पत्ति-कर भारत में सर्वप्रथम सन् 1957-58 में लगाया गया था। इस कर का उद्देश्य राजस्व प्राप्त करने के साथ समृद्ध व्यक्तियों पर अधिक कर लगाना है। यह कर व्यक्तियों तथा हिन्दू अविभाजित परिवारों पर ₹ 1 लाख से अधिक की सम्पत्ति पर लगता था। 1 अप्रैल, 2016 से इस कर को समाप्त कर दिया गया है।
6. **वस्तु एवं सेवा कर** (Goods and Services Tax)—वस्तु एवं सेवा कर (GST) एक अप्रत्यक्ष कर है जिसे विभिन्न केन्द्रीय एवं राज्य करों को मिलाकर एक कर के साथ में बनाया गया है। संविधान के 101वें संशोधन के बाद कानून बनाकर इसे 1 जुलाई, 2017 से प्रभावी बनाया गया। GST एक ऐसा कर है जो निर्माता द्वारा अन्तिम उपभोक्ता की वस्तु एवं सेवा की पूर्ति पर लगाने का अधिकार देता है। GST एक सम्पूर्ण कर है जो बहुचरण के आधार पर प्रत्येक मूल्य वृद्धि पर लगाया जाता है। मूल्य वृद्धि के चरण में Input Credit Tax प्रत्येक चरण पर भुगतान किया जाएगा। जब प्रत्येक चरण के मूल्य वृद्धि पर GST लगाना आवश्यक होता है तब पूर्ति श्रृंखला में अन्तिम डीलर द्वारा लगाया जाने वाला GST अन्तिम उपभोक्ता को वहन करना होगा। GST को पूर्व के सभी चरणों के लाभों के साथ समायोजित किया जाता है।

(II) आय के गैर-कर साधन (Non-tax Revenue)

केन्द्रीय सरकार के आय के प्रमुख गैर-कर साधन निम्नलिखित हैं—

1. **ब्याज प्राप्तियाँ, लाभांश और लाभ** (Interest Receipts, Dividends and Profits)—इस स्रोत में केन्द्रीय सरकार द्वारा दिए जाने वाले ऋणों की ब्याज प्राप्तियों के अलावा सरकारी क्षेत्र के उपक्रमों (Public Enterprises) से प्राप्त लाभ और लाभांशों को शामिल किया जाता है।
   लाभांश और लाभ में भारतीय रिजर्व बैंक का अधिशेष लाभ, राष्ट्रीयकृत बैंकों, जीवन बीमा निगम, साधारण बीमा निगम, भारतीय औद्योगिक विकास बैंक तथा अन्य वित्तीय संस्थाओं और अन्य लोक उपक्रमों से प्राप्त लाभांश शामिल किया जाता है।
2. **राजकोषीय सेवाएँ** (Fiscal Services)—इस शीर्षक की आय को दो मुख्य भागों में विभाजित किया जाता है—(अ) करेन्सी, सिक्का निर्माण और टकसाल से आय, तथा (ब) अन्य राजकोषीय सेवाएँ। प्रथम भाग में सिक्कों के अंकित मूल्य और उनके धातु मूल्य की लागत के अन्तर से प्राप्त आय मुख्य है। अन्य राजकोषीय सेवाओं में अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष को देय प्रभार के सम्बन्ध में भारतीय रिजर्व बैंक द्वारा अंशदान, अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष से प्राप्त पारिश्रमिक तथा आर्थिक अपराधों के लिए वसूल किए गए जुर्माने से आय को शामिल किया जाता है।
3. **सामाजिक सेवाएँ** (Social Services)—इस शीर्षक में आकाशवाणी और दूरदर्शन से आय, अजायवघरों और प्राचीन स्मारकों के प्रवेश शुल्क से प्राप्त आय, केन्द्रीय सरकार के चिकित्सालयों में रोगियों से प्राप्त प्रभार, परिवार कल्याण की सामग्री एवं पूर्ति की बिक्री से आय, सरकारी रिहायशी भवनों की लाइसेन्स फीस, श्रम अधिनियमों के अन्तर्गत प्राप्त शुल्क इत्यादि को शामिल किया जाता है।
4. **आर्थिक सेवाएँ** (Economic Services)—इस वर्ग में सिंचाई एवं सम्बद्ध क्रिया-कलापों, सिंचाई एवं बाढ़ नियन्त्रण, ऊर्जा, उद्योग और खनिज, परिवहन, दूर संचार, विज्ञान, प्रौद्योगिकी और पर्यावरण इत्यादि क्रियाओं से होने वाली आय को रखा जाता है।
5. **अन्य सामान्य सेवाएँ** (Other General Services)—इसमें लोक सेवा आयोग, पुलिस, लेखन सामग्री और मुद्रण, लोक निर्माण कार्य और विविध प्रशासनिक सेवाओं से प्राप्त आय को शामिल किया जाता है।
6. **सहायता अनुदान और अंशदान** (Grants-in-aid and Contributions)—इस शीर्षक में विदेशी स्रोतों से नकदी और वस्तुओं के रूप में प्राप्त सहायता अनुदानों को शामिल किया जाता है।

TOUCH 'n PASS

प्र.2. भारतीय कर-प्रणाली के दोष सहित सुधार हेतु सुझावों को विस्तृत रूप से बताइए।
Explain in detail the suggestions for reforms along with the defects of the Indian Tax System.

उत्तर

भारतीय कर-प्रणाली के दोष
(Defects of the Indian Tax System)

भारतीय कर प्रणाली के प्रमुख दोषों को निम्नवत् प्रस्तुत किया जा सकता है—

1. **अव्यवस्थित कर प्रणाली**—भारतीय कर-प्रणाली एक अव्यवस्थित कर प्रणाली है और उसका विकास वैज्ञानिक आधार पर न होकर, समय-समय पर उत्पन्न आर्थिक कठिनाइयों को दूर करने के उद्देश्य से किया गया है। फलस्वरूप विभिन्न करों में न तो समन्वय है और न वे एक-दूसरे के पूरक ही हैं। करों का चुनाव तथा उनकी दरों का निर्धारण मनमाने ढंग से किया जाता है और करों के उत्पादन व वितरण पर पड़ने वाले प्रभावों पर कोई ध्यान नहीं दिया जाता।
2. **आय लोच का अभाव**—देश की कर-प्रणाली राष्ट्र की आर्थिक क्रियाओं से इस प्रकार सम्बद्ध होनी चाहिए। कि राष्ट्रीय आय एवं आर्थिक क्रियाओं में वृद्धि क साथ-साथ करारोपण से होने वाली आय में भी स्वत: वृद्धि होती रहे, परन्तु भारतीय कर-प्रणाली में यह बात देखने को नहीं मिलती। अध्ययनों से इस तथ्य की जानकारी प्राप्त होती है कि राज्यों के बिक्रीकर को छोड़कर अन्य सभी केन्द्रीय एवं राज्यीय करों की आय लोच एक से कम रही है। इस तरह, भारतीय कर प्रणाली में अंतर्निहित लोच का अभाव है। यही कारण है कि कर राजस्व में वृद्धि करने के लिए कर की दरों तथा उसके आधार में बार-बार प्राय: वार्षिक परिवर्तन किया जाता रहा है। इन परिवर्तनों के कारण कर राजस्व में सापेक्ष वृद्धि संभव हो सकी है। इसे करोत्साह (tax buoyancy) का नाम दिया जाता है यद्यपि करोत्साह एक से अधिक रहा है फिर भी चिंता की बात यह है कि इसमें भी कमी आती जा रही है।
   भारत में कर आय लोच के सम्बन्ध में एक अन्य महत्त्वपूर्ण बात ध्यान देने योग्य है। भारतीय कर जाँच आयोग ने जैसा कि इंगित किया है कि द्वितीय विश्वयुद्ध के पूर्व भारत सरकार आयकर, उत्पाद शुल्क तथा सीमा शुल्क लगाती थी, अत: इसके कर राजस्व की लोच अधिक थी। उस समय प्रांतों द्वारा लगाए गए कर मुख्य रूप से भूराजस्व कर तथा राज्य उत्पाद कर थे। अत: प्रांतों के कर राजस्व की लोच कम थी। राज्य अब भी इन दोनों करों को लगाते हैं, किन्तु बिक्रीकर के जुड़ जाने के कारण उनके कर राजस्व की लोच में वृद्धि हो गई है। केन्द्र अब भी उपर्युक्त करों को लगाता है, किन्तु व्यक्तिगत आयकर तथा उत्पाद कर से प्राप्त आय का अधिकांश हिस्सा राज्यों को हस्तांतरित कर दिया जाता है। साथ ही राज्यों को केन्द्र से अनुदान भी काफी मात्रा में प्राप्त हो जाता है। इससे राज्यों की सकल कर राजस्व की लोच में वृद्धि हो गई है।
3. **कर आय तथा राष्ट्रीय आय का अनुपात कम**—भारत में करों से प्राप्त होने वाली आय सकल घरेलू उत्पाद का लगभग 23 प्रतिशत है, जबकि इंग्लैण्ड में राष्ट्रीय आय का 35 प्रतिशत व अमेरिका में 26 प्रतिशत भाग करों से प्राप्त किया जाता है। इस अल्प अंशदान के मुख्य कारण हैं—(i) कृषि क्षेत्र पर कम कर-भार, (ii) प्रशासन में व्याप्त भ्रष्टाचार, (iii) बड़े पैमाने पर कर की चोरी, (iv) जटिल कर पद्धति; तथा (v) आर्थिक विषमताएँ।
4. **असन्तुलित कर-व्यवस्था**—एक अच्छी कर-प्रणाली में प्रत्यक्ष तथा परोक्ष करों का सामंजस्य सन्तुलित आधार पर होना चाहिए, किन्तु भारतीय कर-प्रणाली में 'परोक्ष करों' की अधिक प्रधानता देखने में आती है। नि:संदेह इस व्यवस्था ने कर-प्रणाली को अन्यायपूर्ण रूप देते हुए गरीबों पर कर का भार अधिक बढ़ा दिया है। इस सम्बन्ध में यह भी उल्लेखनीय है कि 'देश की कार्यशील जनसंख्या का केवल एक प्रतिशत भाग ही प्रत्यक्ष कर देता है।'
5. **कर-प्रणाली का स्फूर्तिदायक न होना**—एक विकासशील अर्थव्यवस्था में कर-प्रणाली का स्वरूप ऐसा होना चाहिए कि जो विनियोग एवं उत्पादन में वृद्धि करके आर्थिक विकास को बढ़ावा दे सके। दुर्भाग्यवश भारतीय कर-प्रणाली इस कसौटी पर खरी नहीं उतरती, क्योंकि करों की दरें इतनी ऊँची रखी गई हैं कि उनका बचत व उत्पादन पर बुरा प्रभाव पड़ रहा है।
6. **कार्यकुशलता व मितव्ययिता का अभाव**—भारतीय कर-प्रणाली न केवल अकुशल है, बल्कि अमितव्ययितापूर्ण भी है। एक तरफ सम्पत्ति के सौदों सम्बन्धी लेखों की व्यवसीा का अभाव है, तो दूसरी तरफ कर-संग्रहण पर होने वाला व्यय बहुत ज्यादा है। कर की चोरी, कर-प्रणाली का मुख्य आभूषण बना हुआ है, जिसमें करदाता और कर-अधिकारी दोनों

TOUCH 'n PASS

एक-दूसरे को प्रेमपूर्वक और पूरा-पूरा सहयोग देते हैं। सच तो यह है कि सरकारी खजाने के अलावा देश में न जाने कितनी और तिजोरियाँ ऐसी हैं, जिनमें 'कर-आय' को नियमित रूप से पहुँचना पड़ता है।

7. **मूल्य-वृद्धि को रोंकने में असमर्थ**—राजकोषीय नीति के एक उपकरण के रूप में कर-प्रणाली का स्वरूप ऐसा होना चाहिए कि जो आर्थिक विकास के फलस्वरूप उत्पन्न मुद्रा-स्फीति पर नियन्त्रण बनाए रख सके, किन्तु भारतीय कर-प्रणाली मूल्य-वृद्धि को न केवल रोकने में असमर्थ रही है, बल्कि इसने ऊँचे वस्तु-करारोपण के रूप में मूल्य-वृद्धि को और भी प्रोत्साहित किया है।
8. **जटिल प्रणाली**—भारतीय कर अधिनियम जटिल है तथा उसमें बहुत जल्दी परिवर्तन होता रहता है। फलस्वरूप कर प्रणाली में सरलता का गुण नहीं आ पाता। इसके अलावा प्रणाली की जटिलता के कारण करारोपण सम्बन्धी शब्दावली के अलग-अलग अर्थ लगाए जाते हैं, जो भ्रम उत्पन्न करते हैं। **प्रो० काल्डोर** के अनुसार "भारतीय कर अधिनियमों की मूल धाराएँ दोषपूर्ण परिभाषाओं से पीड़ित हैं तथा कर-वंचना के लिए छिद्र पैदा करती हैं।"
9. **प्रतिगामी कर व्यवस्था**—भारतीय कर-प्रणाली प्रतिगामी है तथा इसमें न्यायशीलता का अभाव है, क्योंकि परोक्ष करों की अधिकता के कारण धनिकों की अपेक्षा निर्धन तथा मध्यम वर्ग के लोगों पर कर का भार अधिक पड़ता है। **डॉ० के०टी० शाह** के शब्दों में, "धनी वर्ग पर अपेक्षाकृत कर का भार बहुत कम है, यद्यपि उनकी कर देय क्षमता बहुत अधिक है, जबकि निर्धन व्यक्तियों को कर भार में शेर का भार सहन करना पड़ता है, यद्यपि उनकी भार सहन करने की शक्ति मेमने से भी कम है।"
10. **करों की ऊँची दरें**—भारत में करों की दरें काफी ऊँची हैं, जिससे विनियोग की प्रेरणा पर विपरीत प्रभाव पड़ता है। करों की ऊँची दरों का विनियोगकर्ताओं तथा व्यापारी वर्ग पर मनोवैज्ञानिक प्रभाव अच्छा नहीं पड़ता। कर-भार अधिक महसूस कर लोग कर-वंचन का प्रयास करते हैं।

कर-वंचना तथा काला धन—जटिल कर-प्रणाली के फलस्वरूप देश में काले धन का सृजन हुआ, जो प्रत्यक्ष एवं परोक्ष करों की बड़ी मात्रा में चोरी के कारण संभव हो सका। देश में काले धन की शुरुआत द्वितीय विश्वयुद्ध काल में चोर बाजारी के अवश्यम्भावी परिणाम के रूप में हुई। योजनाकाल में इसके क्षेत्र में विस्तार हुआ, जिसका एक कारण सरकार की लाइसेन्स प्रणाली थी। इसके अन्य कारण भी रहे यथा—विदेशी विनिमय नियंत्रण, तस्करी तथा कर-चोरी आदि। कर-चोरी तथा कालाधन एक-दूसरे से घनिष्ठ रूप से जुड़े हुए हैं। कर जाँच आयोग (1953-54) की धारणा थी कि देश में बहुत बड़े परिणाम में कर चोरी होती है।

काल्डोर तथा **वान्चू समिति** ने भी इसका समर्थन किया। **काल्डोर** का अनुमान था कि 1953-54 में देश में काले धन की मात्रा ₹ 600 करोड़ थी, जो राष्ट्रीय आय का 6 प्रतिशत होती है। **वान्चू समिति** के अनुसार 1961-62, 1965-66 तथा 1968-69 में इसकी मात्रा क्रमशः ₹ 700 करोड़ ₹ 1000 करोड़ तथा ₹ 1,400 करोड़ थी। वान्चू समिति के अनुसार, यह राष्ट्रीय आय का 4 प्रतिशत होती है। वान्चू समिति के एक सदस्य **डी०के० रंगनेकर** ने अनुमान लगाया था कि यह राष्ट्रीय आय का 7 से 10 प्रतिशत थी। **जे० सी० संदेसरा** का अनुमान है कि भारत में काला धन राष्ट्रीय आय का लगभग 10 प्रतिशत था, वह बढ़कर 1979-80 में 47 प्रतिशत तक पहुँच गया था। इस तरह, देश में काले धन की मात्रा बहुत अधिक है तथा यह निरंतर बढ़ती ही जा रही है।

भारतीय कर-प्रणाली में सुधार हेतु सुझाव
(Suggestions For Reform in Indian Tax System)

भारतीय कर-प्रणाली में पाए जाने वाले दोषों को दूर करने के लिए निम्न सुझाव दिए जा सकते हैं—

1. **कर-प्रणाली लोचदार हो**—देश की राष्ट्रीय आय की वृद्धि के तदनुरूप करों में वृद्धि की जानी चाहिए। कर-प्रणाली में अंतर्निहित लोच (built-in flexibility) को उत्पन्न करने की आवश्यकता है और इस दृष्टि से उन वस्तुओं पर कर लगाए जाने चाहिए, जिनकी माँग की आय-लोच अधिक हो।
2. **आर्थिक अतिरेक को उपलब्ध करना**—भारतीय कर-प्रणाली का ढाँचा इस प्रकार तैयार किया जाना चाहिए कि 'आर्थिक अतिरेक' का अधिक-से-अधिक संचय किया जा सके। आर्थिक अतिरेक के संचय से आशय वर्तमान उत्पादन के अधिक-से-अधिक भाग को विकास कार्यों में लगाना है तथा अनावश्यक उपभोग को करारोपण द्वारा सीमित करना है।

TOUCH 'n' PASS

3. **उत्पादन तथा बचतों को प्रोत्साहन**—कर-प्रणाली में इस दृष्टि से भी सुधार की आवश्यकता है कि करों का देश के उत्पादन व बचत-क्षमता पर प्रोत्साहनमूलक प्रभाव पड़ सके। भारतीय कर-प्रणाली ने देश में उत्पादकों, निवेशकर्त्ताओं पर विपरीत प्रभाव डाला है। **डॉ० लोकनाथ** के शब्दों में, "सरकार की औद्योगिक नीतियों तथा वित्तीय नीतियों में मौलिक विरोधाभास देखने को मिलता है। औद्योगिक नीति मिश्रित अर्थव्यवस्था में निजी क्षेत्र के महत्त्व को स्वीकार करती है, जबकि वित्तीय नीति पूँजी बाजार के कुशल संचालन को अवरुद्ध करती है।" भारतीय करारोपण नीति ने कम्पनियों तथा निगमों पर भारी कर बोझ डालकर उन्हें अपना विस्तार करने से सदैव रोका है।
4. **आय कर की दरें घटाई जानी चाहिए**—जैसा कि हम जानते हैं कि भारत में आय कर की दरें विश्व में सबसे ऊँची हैं। वांचू समिति, **प्रो० काल्डोर** तथा **चेलैया समिति** ने इन दरों को घटाने का सुझाव भी दिया था, जिसके फलस्वरूप करदाताओं को कुछ राहत प्रदान की गई है, लेकिन अभी भी इन दरों को घटाने की गुंजाइश है।
5. **कृषि आय पर कर लगाया जाना चाहिए**—भारत में कृषि आय को कर मुक्त रखा गया है, जोकि उचित नहीं है। भू-राजस्व तथा कृषि आय-कर के रूप में सरकार को बहुत अधिक राजस्व प्राप्त हो सकता है, लेकिन न जाने क्यों सरकार इस ओर उदासीनता की नीति अपनाए हुए है।
6. **प्रत्यक्ष तथा परोक्ष करों में सामंजस्य**—समाज के विभिन्न वर्गों पर करों का बोझ न्यायपूर्ण बना रहे, इसके लिए आवश्यक है कि कर-प्रणाली में प्रत्यक्ष तथा परोक्ष दोनों करों को समुचित महत्त्व दिया जाए। केवल प्रत्यक्ष करों पर निर्भर रहने से उत्पादन का मोर्चा लड़खड़ा सकता है। अत: प्रगतिशील प्रत्यक्ष करारोपण के साथ-साथ अनावश्यक उपभोग को कम करने के लिए परोक्ष करों के आधार का विस्तृत होना भी बहुत जरूरी है।
7. **परोक्ष करों की व्यूह रचना**—यह दलील आज के युग में अधिक मान्य नहीं रही कि आम व्यक्ति के प्रयोग में आने वाली वस्तुओं पर कर नहीं लगाया जाना चाहिए। वास्तव में, आर्थिक विकास की दृष्टि से परोक्ष करों का अपना एक विशेष महत्त्व है। परोक्ष कर आवश्यक उपभोग को कम करके मुद्रा-स्फीति पर अंकुश लगाते हैं और आर्थिक विकास के लिए बचत तथा निवेश का बढ़ावा देते हैं। हाँ, परोक्ष करों को लगाते समय यह देखना जरूरी है कि ये कर लोगों के जीवन-स्तर पर विपरीत प्रभाव न डालते हुए विकास वित्त को किस सीमा तक जुटा पाते हैं।
8. **कर-वंचना पर रोक**—**श्री पालकीवाला** के अनुसार, "भारत में धनी बनना अब भी सम्भव है, बशर्ते कि कर-वंचना की कला आती हो, धनी बनना केवल योग्यता, उद्यम तथा परिश्रम का ही प्रतीक नहीं है।" **श्री पालकीवाला** ने देश के नए धनिकों के पाँच वर्ग बताए हैं—(i) कर वंचना के महारथी, (ii) काले बाजार के जगमगाते व्यापारी, (iii) सहकारी संस्थाओं के बड़े राजपत्रित अधिकारी, (iv) समृद्ध किसान तथा (v) भारत के कर्णधार सफल राजनीतिज्ञ। कहने का अभिप्राय केवल इतना है कि भारतीय कर-प्रणाली में कर वंचना पर रोक लगाने हेतु हर सम्भव उपाय किए जाने चाहिए।
9. **बिक्री-कर को समाप्त करके उत्पादन कर लगाना**—देश में लगे विभिन्न प्रकार के करों में से बिक्री कर ऐसा कर है, जिसमें कर वंचना, जटिलता तथा भ्रष्टाचार सबसे अधिक व्याप्त है। पिछले कुछ वर्षों से देश का सम्पूर्ण व्यापारी वर्ग भी इस कर के उन्मूलन के विरुद्ध उठ खड़ा हुआ है। इसमें कोई संदेह नहीं कि यदि बिक्री-कर को समाप्त करके उसके स्थान पर उत्पादन कर लगाया जाए, तो इससे सरकार की आय भी बढ़ सकती है और व्यापारी तथा उपभोक्ता की तरफ से होने वाला विरोध भी घट सकता है। साथ-ही-साथ बिक्री-कर की समाप्ति से भ्रष्टाचार में कमी आने की पूरी सम्भावना है।
10. **कर-प्रणाली का उत्पादक होना**—कर-प्रणाली को उत्पादक बनाया जाना चाहिए। जब तक कर-प्रणाली उत्पादक नहीं होगी, तब तक वह अपने उद्देश्यों में सफल नहीं हो सकती है। उत्पादकता का अभिप्राय केवल अधिक आय प्राप्त करने से नहीं है, बल्कि उत्पादकता का अभिप्राय प्रशासन के चुस्त होने व न्यायोचित वितरण व्यवस्था से लगाया जाता है।
11. **कर-प्रशासन का सुदृढ़ीकरण**—आय-कर व बिक्री-कर का प्रशासन आज अपनी लोकप्रियता को खोता जा रहा है। कर-प्रशासन में ढील होने के कारण कर-चोरी बढ़ रही है। प्रशासन में भ्रष्टाचार फैलने से लोगों में धीरे-धीरे विश्वास कम होने लगा है। जब तक सख्त कर-प्रशासन नहीं होगा, तब तक करों की चोरी नहीं रोकी जाएगी। एक अल्पविकसित देश में कर-आय अपना महत्त्वपूर्ण स्थान रखती है यदि यहाँ करों की चोरी नहीं रोकी गई, तो आय में कमी तो होगी, साथ ही भविष्य में इसके प्रभाव बुरे होंगे।

TOUCH 'n PASS

प्र.3. पूर्ववर्ती वैट व्यवस्था एवं जी०एस०टी० में अन्तर स्पष्ट कीजिए।
Make clear the differences between the earlier VAT system and GST.

उत्तर

पूर्ववर्ती वैट व्यवस्था एवं जी०एस०टी० में अन्तर
(Differences between the Earlier VAT System and GST)
(वैट की अपेक्षा GST की श्रेष्ठता)
(GST is Better as Compared to VAT)

अन्तर का आधार	वैट व्यवस्था	जी०एस०टी० व्यवस्था
संरचनात्मक भिन्नता	केन्द्र एवं राज्य स्तरों पर दो पृथक् वैट व्यवस्था प्रचलित थी। एक के अधीन चुकता कर की दूसरे में क्रेडिट स्वीकृत नहीं थी। सेवाओं पर केन्द्र द्वारा पृथक् करारोपण राज्य स्तर पर सेवाओं का विस्तृत करारोपण नहीं, विलासिता, मनोरंजन सेवाएँ कर-योग्य भारत में आयात वैट से बाहर	एक ही आधार पर दोहरी प्रणाली के अधीन केन्द्र एवं राज्य द्वारा IGST CGST एवं SGST लागू है, माल एवं सवाएँ एक साथ करयोग्य, आपसी एवं निर्बाध इनपुट क्रेडिट व्यवस्था
उत्पाद शुल्क	केन्द्र द्वारा पृथक् विधान के अधीन कर-योग्य, निर्माण कर-योग्य घटना, निर्माण स्तर तक कर-योग्य	जी०एस०टी० में समाहित है, माल की पूर्ति—कर-योग्य घटना फुटकर स्तर तक कर-योग्य
मूल सीमा शुल्क	सीमा शुल्क अधिनियम के अधीन केन्द्र द्वारा करारोपित, कर-योग्य घटना—आयात	कोई परिवर्तन नहीं
CVD एवं SAD	सीमा शुल्क अधिनियम के अधीन केन्द्र द्वारा करारोपण, कर-योग्य घटना—आयात	जी०एस०टी० में समाहित, कर-योग्य घटना—सेवाओं की पूर्ति
सेवा कर	केन्द्र द्वारा करारोपण कर-योग्य घटना—सेवा प्रदायन	जी०एस०टी० में समाहित कर-योग्य घटना—सेवाओं की पूर्ति
केन्द्रीय बिक्री कर	CST Act के अधीन केन्द्र द्वारा करारोपण, संग्रहाक राज्य की आय कर-योग्य घटना—एक राज्य से दूसरे राज्य में विक्रय	समाप्त होना है, GST से बाहर माल पर लागू है (पेट्रोलियम पदार्थ एवं शराब)
राज्य का वैट	राज्य द्वारा करारोपण **कर-योग्य घटना**—एक ही राज्य में विक्रय	जी०एस०टी० में समाहित GST से बाहर माल पर लागू कर-योग्य घटना—माल की पूर्ति
अन्तर्राज्यीय लेन-देन	सेवाएँ—केन्द्र द्वारा करारोपण माल—CST उद्ग्रहण	जी०एस०टी० में समाहित GST से बाहर माल पर लागू कर-योग्य घटना—माल की पूर्ति
करारोपण का स्थान	माल के विकय अथवा सेवा के प्रदाय का स्थान	सामान्यत: उपभोग (गंतव्य) आधारित कर अर्थात् उत्पादक राज्य से उपभोक्ता राज्य की आय
निर्माण पर करारोपण की शक्ति	केन्द्र द्वारा उत्पाद शुल्क (सेनवेट) के रूप में कर-योग्य	जी०एस०टी० में ऐसा नहीं है माल की पूर्ति रूप में कर-योग्य

TOUCH n PASS

माल विक्रय पर करारोपण की शक्ति	अन्तर्राज्यीय—केन्द्र द्वारा स्थानीय—राज्य द्वारा	केन्द्र एवं राज्य की समवर्ती शक्तियाँ—यदि अन्यथा नहीं हो, अन्तर्राज्यीय माल पूर्ति पर केन्द्र द्वारा ही करारोपण
सेवाप्रदाय पर करारोपण की शक्ति	केन्द्र द्वारा सेवा कर	केन्द्र एवं राज्य की समवर्ती शक्तियाँ, अन्तर्राज्यीय सेवा पूर्ति पर केन्द्र द्वारा अनन्य करारोपण
भारत में आयात पर करारोपण	माल—सीमा शुल्क अधिनियम (BCD, CVD and SAD), सेवाएँ—सेवा कर	BCD—कोई परिवर्तन नहीं CVD और SAD को GST में समाहित कर दिया गया है सेवा का आयात—IGST के रूप में GST के अधीन कर-योग्य
माल/सेवाओं का निर्यात	कर मुक्त/शून्य दर	कोई परिवर्तन नहीं
अन्तर्राज्यीय अन्तरण	F प्रारूप के विरुद्ध कर मुक्ति	कर-योग्य है
राज्य के अन्द अन्तरण	सामान्यत: विमुक्त, राज्य प्रक्रिया पर निर्भर	कर-योग्य है, यदि हस्तान्तरक एवं हस्तान्तरिती का GSTIN एक ही नहीं है
क्रौसलेवी सेट ऑफ	उत्पाद शुल्क एवं सेवा कर के मध्य स्वीकृत, परन्तु वैट एवं सेनवेट में नहीं	CGST एवं SGST के मध्य नहीं
सोपानी प्रभाव	क्रौसलेवी सेट ऑफ तक नहीं होता था	निर्बाध टैक्स क्रेडिट पूरी श्रृंखला में स्वीकृत
घोषणाओं सहित लेन-देन	केन्द्रीय विक्रय कर में अनुमन्य	प्रारूप की कोई व्यवस्था नहीं है
अचल सम्पत्ति पर स्टाम्प शुल्क	राज्य द्वारा करारोपित	काई परिवर्तन नहीं

प्र.4. स्वतन्त्रता के पश्चात् सार्वजनिक ऋण का विस्तार से उल्लेख करते हुए भारत सरकार के ऋणों की प्रमुख विशेषताएँ बताइए।

Mentioning in detail the public debt after independence, state the main features of the debts of the government of India.

उत्तर

स्वतन्त्रता के पश्चात् सार्वजनिक ऋण
(Public Debt After Independence)

मार्च 1947 में भारत सरकार का कुल ऋण ₹ 2,381.89 करोड़ था। 15 अगस्त, 1947 को भारत को स्वतन्त्रता प्राप्त हुई, साथ ही देश के विभाजन के फलस्वरूप पाकिस्तान अस्तित्व में आया। देश के विभाजन के कारण अविभाजित सरकार की परिसम्पत्तियों तथा देयताओं (Assets and Liabilities) के बंटवारे की समस्या उत्पन्न हो गई। पाकिस्तान सरकार के साथ हुए एक वित्तीय समझौते के अन्तर्गत यह निश्चय किया गया कि विभाजित भारत के समस्त ऋण एवं देनदारियाँ भारत सरकार अपने ऊपर ले लेगी तथा पाकिस्तान सरकार अपने ऋण व देनदारियों के भाग के रूप में ₹ 300 करोड़ का भुगतान सन् 1952 से 3% ब्याज की दर से 50 किस्तों में भारत को कर देगा। पाकिस्तान ने आज तक इस ऋण की एक भी किस्त भारत को अदा नहीं की और न ही भविष्य में इसकी कोई उम्मीद है।

स्वतन्त्रता प्राप्ति के उपरान्त देश में तीव्र आर्थिक विकास के लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए नियोजन की पद्धति को अपनाया गया। सरकार ने अनुभव किया कि 'विकास वित्त' की पूर्ति केवल आन्तरिक ऋणों से नहीं हो सकती है, बल्कि तकनीकी ज्ञान, मशीनों, संयंन्त्र तथा कच्ची सामग्री आदि को आयात करने के लिए विदेशी सहायता के रूप में विदेशी ऋणों पर निर्भर रहना होगा। फलत: योजना काल में सरकार द्वारा आन्तरिक ऋणों के साथ-साथ बाह्य ऋणों की भी समुचित व्यवस्था की गई।

TOUCH 'n' PASS

वर्तमान समय के बजटीय व्यवहार के अनुसार केन्द्रीय सरकार के लोक ऋण में तीन प्रकार की देयताएँ शामिल की जाती हैं—

1. आन्तरिक ऋण (Internal Debt),
2. बाह्य ऋण (External Debt),
3. अन्य देयताएँ (Other Liabilities)।

आन्तरिक ऋण में निम्न दो मदों को सम्मिलित किया जाता है—

1. चालू बाजार ऋण (Current Market Borrowings)
2. अन्य—मियाद समाप्त हो जाने वाले ऋण का शेष, क्षतिपूर्ति तथा अन्य बॉण्ड, जैसे—राष्ट्रीय ग्रामीण विकास बॉण्ड तथा पूँजी निवेश बॉण्ड।
3. ट्रेजरी बिल (Treasury Bills)।
4. विशेष धारक बॉण्ड (Special Bearer Bonds)।
5. विशेष फ्लोटिंग तथा अन्य ऋण—प्रमुख रूप से IMF, IBRD, IDA, ADB आदि अन्तर्राष्ट्रीय वित्तीय संस्थाओं को जारी किए गए गैर-ब्याज, गैर-विक्रय प्रतिभूतियाँ।
6. भारतीय रिजर्व बैंक को जारी की गई विशेष प्रतिभूतियाँ।

भारत को अधिकांश बाह्य ऋण भारत सहायत संघ (Aid India Consortium) से प्राप्त होता है। इस संघ की अध्यक्षता विश्व बैंक करता हैं इसके अतिरिक्त अन्य स्रोत भी हैं। इन सभी स्रोतों को निम्न प्रकार से विभाजित किया जा सकता है—

1. विश्व बैंक ग्रुप (World Bank Group),
2. संयुक्त राष्ट्र एजेन्सियाँ (U.N. Agencies),
3. यूरोपीय साझा बाजार (EEC),
4. एशिया विकास बैंक (ADB),
5. नारडिक निवेश बैंक (Nordic Investment Bank),
6. द्विपक्षीय सहायता।

अन्य देयताओं में सम्मिलित मद निम्नखित हैं—

1. लघु बचत (Small Savings),
2. भविष्य निधि—(क) सार्वजनिक भविष्य निधि, तथा (ख) राज्य भविष्य निधि।
3. अन्य लेखाएँ—प्रमुख रूप से डाक, बीमा तथा जीवन वार्षिकी कोष, अनिवार्य जमा तथा आयकर वार्षिकी जमा से प्राप्त उधार एवं गैर-सरकारी भविष्य निधि का विशेष जमा।
4. रिजर्व कोष एवं जमा—(क) ब्याज पर, तथा (ख) बिना ब्याज पर।

उपर्युक्त सभी मदों की विवेचना भारत सरकार की कुल देयताओं के सम्बन्ध में की जाती है। राज्यों के लोक ऋण के अन्तर्गत शामिल मदें निम्नलिखित हैं—

1. केन्द्र से प्राप्त उधार एवं अग्रिम;
2. बाजार उधार एवं बॉण्ड;
3. बैंक तथा अन्य संस्थाओं से प्राप्त उधार;
4. भविष्य निधि एवं अन्य कोष—राज्य भविष्य निधि, बीमा तथा पेन्शन निधि आदि।

विगत कुछ वर्षों में केन्द्र सरकार की बकाया देयताओं को निम्नवत प्रस्तुत किया जा सकता है—

केन्द्र सरकार की बकाया देयताएँ
(Liabilities of Central Government)

(स०घ०उ० के प्रतिशत के रूप में)

	मदें	2010-11	2015-16	2016-17	2017-18	2018-19	2019-20
1.	आन्तरिक देयताएँ	48.6	48.6	46.9	46.7	46.7	45.5
2.	विदेशी ऋण (बकाया)	2.0	1.5	1.5	1.5	1.4	1.3
3.	कुल बकाया देयताएँ	50.6	50.1	48.4	48.2	48.1	46.8

स्रोत : आर्थिक समीक्षा, 2019-20

TOUCH 'n PASS

तालिका से स्पष्ट है कि भारत की कुल आन्तरिक देयताएँ (जिसमें आन्तरिक ऋण तथा अन्य आन्तरिक देयताएँ शामिल हैं) वर्ष 2010-11 में स०घ०उ० का 48.6 प्रतिशत थीं जो क्रमश: घटते हुए वर्ष 2019-20 में स०घ०उ० का 45.5 प्रतिशत हो गईं। इसी तरह विदेशी बकाया ऋण जो वर्ष 2010-11 में स०घ०उ० का 2.0 प्रतिशत था वह भी घटकर वर्ष 2019-20 में 1.3 प्रतिशत रह गया।

भारत का विदेशी ऋण—भारत की सरकारी एवं गैर-सरकारी बाह्य देयताओं में निम्न मदों को सम्मिलित किया जाता है—

1. बहुपक्षीय एवं द्विपक्षीय ऋण,
2. वाणिज्यिक ऋण, तथा
3. गैर-निवासियों की जमा।

भारत को विदेशों से प्राप्त होने वाले ऋणों को निम्न वर्गों में विभाजित किया जा सकता है—

1. अल्पकालीन ऋण,
2. मध्यम एवं दीर्घकालीन ऋण, तथा
3. अनिवासी भारतीयों की जमा।

अल्पकालीन ऋण का सम्बन्ध सामान्यतया आयात से होता है। अल्पकालीन ऋणों में प्राय: निम्न सम्मिलित रहते हैं—

1. व्यापार साख,
2. एक वर्ष से कम अवधि की आपूर्तिकर्त्ता की साख (Supplier's Credit)
3. बैंकर की स्वीकृति (Banker's Acceptance),
4. लोक उद्यमों के लिए प्राप्त अन्य सुविधाएँ।

मध्यम एवं दीर्घकालीन ऋण की अवधि एक वर्ष से अधिक होती है। अनिवासी भारतीयों की जो जमा एक वर्ष से अधिक अवधि की होती है उसे भी भारत के विदेशी ऋण में सम्मिलित किया जाता है।

भारत का विदेशी ऋण स्टाक जो मार्च, 1991 के अन्त में ₹ 1,63,001 करोड़ था, वह बढ़कर मार्च 2019 के अन्त में ₹ 37,74,928 करोड़ हो गया।

बढ़ते ऋण का प्रभाव—भारत में तेजी से बढ़ते ऋण के प्रभावों को निम्नवत् व्यक्त किया जा सकता है—

1. ब्याज के भुगतान के लिए राजस्व प्राप्ति का बढ़ता हुआ भाग खर्च हो जाता है।
2. ऋण की बढ़ती हुई राशि का प्रभाव ब्याज की दर पर पड़ता है और उसमें वृद्धि हो जाती है। इससे अल्पकाल में वैसे निवेश पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है जिसकी ब्याज लोच अधिक होती है। इससे आर्थिक विकास की गति धीमी पड़ जाती है।
3. बड़ी मात्रा में अतिरिक्त कर्ज लेने से ऋण वापसी का भार बढ़ जाता है। इसके परिणामस्वरूप अक्सर ऋण के आगे बढ़ते रहने की समस्या पैदा हो सकती है।

1991 में प्रारम्भ किए गए राजकोषीय सुधार का प्रमुख उद्देश्य केन्द्रीय सरकार के सकल राजकोषीय घाटा को कम करना था। इसने ऋण/सकल घरेलू उत्पाद की वृद्धिमान प्रवृत्ति को नियन्त्रित किया है तथा ऋण पर वास्तविक ब्याज दर को वास्तविक GDP की वृद्धि दर से नीचे रखा है, लेकिन ब्याज की बढ़ती राशि चिन्ता का विषय बना हुआ है। यही कारण है कि भारतीय रिजर्व बैंक ने अपने एक अध्ययन में प्रस्ताव किया है कि संविधान में संशोधन करके लोक ऋण पर वैधानिक उच्चतम सीमा निर्धारित कर देनी चाहिए। यह एक निरपेक्ष राशि हो सकती है या GDP का कोई निश्चित प्रतिशत।

भारत सरकार के ऋणों की प्रमुख विशेषताएँ (Main Characteristics of the Loans of Indian Government)—भारत सरकार के ऋणों की प्रमुख विशेषताएँ निम्नवत् हैं—

1. **ऋणों की मात्रा में निरन्तर वृद्धि**—केन्द्र सरकार के ऋणों में विशेष रूप से पंचवर्षीय योजनाओं के लागू होने के बाद निरन्तर वृद्धि होती गई है। बढ़ती कीमतों तथा मुद्रा प्रसार के दबावों ने भी सार्वजनिक ऋणों को बढ़ाने में विशेष योगदान दिया है। वर्ष 1950-51 में भारत का कुल सार्वजनिक ऋण ₹ 2,864 करोड़ था जो बढ़कर 1960-61 में ₹ 6,533 करोड़, 1970-71 में ₹ 19,864 करोड़, 1980-81 में ₹ 59,749 तथा 1990-91 में ₹ 3,14,258 करोड़ हो गया। वर्ष 2019 में भारत का सार्वजनिक ऋण बढ़कर ₹ 37,74,924 करोड़ पहुँच गया।
2. **ऋणों का स्वरूप**—स्वतन्त्रता प्राप्ति के उपरान्त भारत के आन्तरिक एवं बाह्य ऋणों की निरपेक्ष मात्रा में क्रमश: वृद्धि होती गई है। 1950-51 में आन्तरिक ऋण सकल घरेलू उत्पाद का 22.6 प्रतिशत था जो क्रमश: बढ़ते हुए 2019-20 में

TOUCH 'n' PASS

सकल घरेलू उत्पाद का 36.9 प्रतिशत हो गया। बाह्य ऋणों के सम्बन्ध में यह उल्लेखनीय है कि वर्ष 1950-51 में बाह्य ऋण सकल घरेलू उत्पाद का 0.3 प्रतिशत था, वह बढ़कर 1970-71 में सकल घरेलू उत्पाद का 16.4 प्रतिशत हो गया। इसके उपरान्त सकल घरेलू उत्पाद के प्रतिशत के रूप में बाह्य ऋण में गिरावट आने लगी। 1990-91 में बाह्य सकल घरेलू उत्पाद का 11.7 प्रतिशत था जो बढ़कर वर्ष 2019-20 में 20 प्रतिश्ता तक पहुँच गया।

3. **बढ़ता ऋण-सेवा भार**—सरकार के बढ़ते हुए ऋणों ने ऋण-सेवा भार को काफी बढ़ा दिया है। वर्ष 1990-91 में केन्द्र सरकार ने आन्तरिक देयताओं पर कुल ₹ 19,664 करोड़ ब्याज के रूप में चुकाया था। ब्याज भुगतान की यह धनराशि बढ़कर 1995-96 में ₹ 45,631 करोड़, 1999-2000 में ₹ 85,741 करोड़, 2016-17 में ₹ 4,80,714 करोड़ तथा 2019-20 में ₹ 6,60,471 करोड़ हो गई।
4. **बाह्य ऋणों के स्त्रोत**—भारत को विदेशी ऋण जिन स्त्रोतों से प्राप्त होती है उनमें प्रमुख हैं—विश्व बैंक, अन्तर्राष्ट्रीय विकास एजेन्सी, भारत सहायता क्लब, अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष, एशिया विकास बैंक, तेल निर्यातक देशों के संघ तथा अनिवासी भारतीय। इसके अतिरिक्त विभिन्न देशों की सरकारों एवं वाणिज्यिक बैंकों से भी भारत को ऋण प्राप्त होता है।
5. **अल्पबचतों का महत्त्व**—आन्तरिक ऋणों में अल्प बचत योजना का विशेष महत्त्व है। योजना काल में देश के अल्प बचत राशि में निरन्तर वृद्धि होती गई है तथा इससे सरकार को लम्बी अवधि के लिए कम ब्याज-दर पर पर्याप्त धनराशि उपलब्ध होती रही है।
6. **डॉलर क्षेत्र से सम्बन्ध**—स्वतन्त्रता प्राप्ति के उपरान्त भारत के स्टर्लिंग क्षेत्र से सम्बन्ध कम हुए तथा डॉलर क्षेत्र से बढ़ गए। इसका प्रमुख कारण यह रहा कि विकास कार्यक्रमों को पूरा करने के लिए सरकार को डॉलर क्षेत्रों से अधिक माल व सेवाएँ प्राप्त करनी पड़ीं।

प्र.5. हीनार्थ प्रबन्धन (घाटे की वित्त व्यवस्था) के उद्देश्यों को विस्तार से बताइए तथा हीनार्थ प्रबन्धन के पक्ष और विपक्ष में दिए गए तर्क का उल्लेख कीजिए।

Explain in detail the objectives of deficit management, mention the argument given in favor and agains deficit management.

उत्तर

हीनार्थ प्रबन्धन के उद्देश्य
(Objectives of Deficit Financing)

विश्व में हीनार्थ प्रबन्धन की व्यवस्था का प्रारम्भ आर्थिक मन्दी तथा युद्धकालीन संकटों का सामना करने के लिए किया गया, लेकिन वर्तमान समय में इसे आर्थिक विकास की वित्त व्यवस्था के लिए भी व्यापक रूप से प्रयोग किया जाता है। विस्तृत रूप से हीनार्थ प्रबन्धन के उद्देश्य को निम्न प्रकार रखा जा सकता है—

1. **मन्दीकाल में हीनार्थ प्रबन्धन** (Deficit Financing during Depression)—मन्दीकाल के अन्तर्गत देश में प्रभावी माँग (Effective Demand) में कमी आ जाती हैं परिणामस्वरूप उत्पादन, रोजगार, कीमतों तथा आय में कमी होने लगती है। लाभ की आशा कम होने के कारण विनियोग में भी कमी होने लगती है। इस प्रकार, देश में मन्दी का कुचक्र प्रारम्भ हो जाता है तथा आर्थिक शिथिलता उत्पन्न हो जाती है। ऐसे समय में सरकार द्वारा हीनार्थ प्रबन्धन के उपयोग से मन्दी की स्थिति को समाप्त किया जा सकता है। मन्दी के समय हीनार्थ प्रन्धन के प्रयोग से देश में मुद्रा-स्फीतिक स्थिति उत्पन्न नहीं रहती वरन् गिरी कीमतों को ऊपर उठाने एवं निष्क्रिय अर्थव्यवस्था को चेतन करने में सहायक होती है।
   मन्दी के प्रभाव को दूर करने के लिए हीनार्थ प्रबन्धन के निम्न रूप हो सकते हैं—
   (i) **पम्प प्राइमिंग** (Pump Priming)—इसके अन्तर्गत मन्दी से उत्पन्न शिथिलता को दूर करने के लिए देश में सार्वजनिक निर्माण की नीति प्रयोग में लायी जाती है, अर्थात् सड़कों, पुल, नहरों इत्यादि का निर्माण कराया जाता है। व्यक्तियों को रोजगार मिलता है, जिससे उसके हाथों में क्रय-शक्ति पहुँचती है तथा माँग बढ़ती है और इस प्रकार विनियोग को प्रोत्साहन मिलता है। **प्रो० टेलर** (Prof. Taylor) के शब्दों में, "पम्प प्राइमिंग इस विश्वास पर आधारित है कि पर्याप्त मात्राओं में तथा उचित परिस्थितियों के अन्तर्गत सार्वजनिक कोषों का आय-प्रभाव मे इन्जेक्शन लगा दिया जाए, तो वह निराशा की प्रवृत्ति को बदल देगा तथा मन्दी के प्रभार को प्रोत्साहन देगा।"

TOUCH 'n PASS

(ii) **चक्रीय** (Cyclical)—हीनार्थ प्रबन्धन के अन्तर्गत सरकार अपने व्ययों में वृद्धि करने के साथ-साथ करों में छूट आदि की सुविधाएँ देती है। इसका उद्देश्य आर्थिक सुधार करके आन्तरिक व्यापार चक्र के परिणामस्वरूप उत्पन्न मन्दी की तीव्रता को कम करना होता है।

(iii) **चिरकालिक** (Eternal)—हीनार्थ प्रबन्धन के अन्तर्गत दीर्घकालीन घाटे के बजट बनाए जाते हैं और सरकारी व्यय में वृद्धि की जाती है, ताकि नए विनियोगों के लिए उत्साहजनक वातावरण तैयार किया जा सके तथा पूँजी के विनियोग में मजबूती उत्पन्न की जा सके।

2. **युद्धकाल में हीनार्थ प्रबन्धन** (Deficit Financing during War Period)—युद्ध पर होने वाला व्यय असाधारण एवं आकस्मिक होता है। समय के साथ-साथ युद्ध महँगे होते जा रहे हैं, इसलिए युद्ध पर होने वाला व्यय प्राय: बहुत अधिक होता है। सरकार द्वारा युद्ध पर किए जाने वाले व्यय की पूर्ति करारोपण द्वारा, सार्वजनिक उपक्रमों से प्राप्त आय एवं ऋण द्वारा की जाती है, परन्तु इस सभी से प्राप्त आय पर्याप्त नहीं होती, अत: युद्धकालीन व्यय की पूर्ति के लिए सरकार को हीनार्थ प्रबन्धन का प्रयोग करना होता है।
3. **आर्थिक विकास के लिए हीनार्थ प्रबन्धन** (Deficit Financing for Economic Development)—प्रत्येक अर्द्ध-विकसित और विकासशील देश को विभिन्न क्षेत्रों में पर्याप्त मात्रा में धन के विनियोग करने की आवश्यकता पड़ती है, जिससे अर्थव्यवस्था को विकास की ओर अग्रसर किया जा सके, लेकिन इन देशों में प्रति व्यक्ति का आय का स्तर तुलनात्मक रूप से कम होता है, जिसके परिणामस्वरूप इन देशों के बचत और पूँजी निर्माण का स्तर निम्न होता है। इससे विकास कार्यों के लिए आवश्यक धनराशि उपलब्ध नहीं हो पाती। इन देशों में आय एवं सम्पत्ति में विषमताएँ भी काफी होती हैं। यद्यपि सरकार प्रगतिशील कर लगाकर धनिकों से आय प्राप्त करने का प्रयास करती है, लेकिन उससे भी पर्याप्त धनराशि नहीं मिल पाती। सरकार सामान्य करों को भी अधिक नहीं लगा सकती, क्योंकि उसे जनता में प्रतिकूल प्रतिक्रियाएँ होने की सम्भावना रहती है। इन देशों में आन्तरिक सार्वजनिक ऋण भी अधिक नहीं मिल सकते। अर्थव्यवस्था में वित्त उपलब्धि की इस पृष्ठभूमि में हीनार्थ प्रबन्धन का महत्त्व अपने आप में ही स्पष्ट है।

हीनार्थ प्रबन्धन द्वारा कीमत स्तर में वृद्धि होती हैं, जिसके कारण उपभोग में कमी आती है और बचत बढ़ती है। इस बचत का विनियोग किया जा सकता है। दूसरी और हीनार्थ प्रबन्धन में सरकार के पास नई मुद्रा आ जाती है, जिसका प्रयोग विकास कार्यों के लिए किया जा सकता है।

हीनार्थ प्रबन्धन के पक्ष और विपक्ष में तर्क
(Agruments in Favour of and Against Deficit Financing)

हीनार्थ प्रबन्धन दुधारी तलवार है। इसके उचित प्रयोग से आर्थिक विकास को गति मिलती है और अनुचित प्रयोग से अर्थव्यवस्था में अस्थिरता आ जाती है। हीनार्थ प्रबन्धन के पक्ष एवं विपक्ष में दिए जाने वाले मुख्य तर्क निम्न प्रकार हैं—

हीनार्थ प्रबन्धन के पक्ष में तर्क

1. **आर्थिक नियोजन की वित्त-व्यवस्था**—भारत में आर्थिक विकास के लिए 1 अप्रैल, 1951 से आर्थिक नियोजन का मार्ग अपनाया गया है। आर्थिक नियोजन के लिए विशाल वित्तीय साधनों की आवश्यकता होती है। इनकी पूर्ति के लिए हीनार्थ प्रबन्धन अनिवार्य हो जाता है।
2. **गैर-मौद्रिक क्षेत्रों का मौद्रिक क्षेत्र में परिवर्तन**—देश के आर्थिक विकास के साथ ही गैर-मौद्रिक क्षेत्र (अर्थात् वस्तु विनिमय का क्षेत्र) कम होता जा रहा है और मौद्रिक क्षेत्र बढ़ता जा रहा है। इससे मुद्रा की माँग में वृद्धि होती है तथा इसकी पूर्ति के लिए हीनार्थ प्रबन्धन एक महत्त्वपूर्ण साधन है।
3. **आर्थिक विकास की गति को बनाए रखना**—आर्थिक नियोजन के सतत् प्रयासों के होते हुए भी कभी-कभी मन्दी (Recession) के लक्षण उत्पन्न होने लगते हैं और आर्थिक शिथिलता आने की सम्भावना बन जाती हैं हीनार्थ प्रबन्धन द्वारा आर्थिक मन्दी या शिथिलता को नियन्त्रित करके आर्थिक विकास की गति को बनाए रखने में सहायता मिलती है।
4. **सुरक्षा व्ययों की पूर्ति**—भारत को अपनी विस्तृत सीमाओं और पाकिस्तान तथा चीन की ओर से विविध आशंकाओं के कारण सुरक्षा व्यवस्था पर काफी राशि व्यय करनी होती है। सन् 1950-51 में सुरक्षा कार्यों पर व्यय केवल ₹ 164 करोड़

TOUCH 'n PASS

था, जो वर्ष 2019-20 के बजट में ₹ 2,01,902 करोड़ हो गया। इन बढ़ते हुए व्ययों की पूर्ति में भी घाटे की वित्त-व्यवस्था का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है।

5. **प्रभावपूर्ण माँग** (Effective Demand) **में वृद्धि—कीन्सियन** विचारधारा के अनुसार अधिकाधिक रोजगार और अर्थव्यवस्था की समृद्धि के लिए देश में प्रभावपूर्ण वृद्धि करना आवश्यक है। हीनार्थ प्रबन्धन द्वारा सार्वजनिक निर्माण (Public Works) कार्यों को चलाकर प्रभावपूर्ण माँग में वृद्धि की जा सकती है।
6. **सार्वजनिक उद्योगों में विनियोग व्यवस्था**—भारत में सार्वजनिक उद्योगों में विनियोग भी लगातार बढ़ रहा है। उन उद्योगों में किए जाने वाले विनियोग के एक भाग की पूर्ति के लिए हीनार्थ प्रबन्धन उपयोगी है, क्योंकि यह विनियोग पूर्णत: उत्पादक विनियोग है और हीनार्थ प्रबन्धन द्वारा ऐसे विनियोग करने से स्फीतिकारी दबाव उत्पन्न नहीं होते।

हीनार्थ प्रबन्धन के विपक्ष में तर्क

यद्यपि हीनार्थ प्रबन्धन विकासशील देशों के विकास वित्त का एक महत्त्वपूर्ण उपकरण है, लेकिन इस सम्बन्ध में यह उल्लेखनीय है कि हीनार्थ प्रबन्धन वित्त-व्यवस्था की एक दुधारी तलवार के समान है। यदि इसका प्रयोग सतर्कता, सावधानी तथा सीमित मात्रा में किया जाए, तो यह बड़े लाभप्रद परिणाम दे सकती है और इसका प्रयोग अनियमित मात्रा में असावधानी से किया जाए, तो यही देश की अर्थव्यवस्था में भयंकर आर्थिक समस्याएँ उत्पन्न कर देती है। हीनार्थ प्रबन्धन के विपक्ष में निम्न तर्क दिए जा सकते हैं—

1. **मुद्रा-स्फीतिक प्रभाव**—हीनार्थ प्रबन्धन के विपक्ष में सबसे महत्त्वपूर्ण तर्क यह है कि इससे मुद्रा-स्फीतिक प्रभाव उत्पन्न होते हैं, जिससे देश में मूल्य वृद्धि की समस्या बनी रहती है। हीनार्थ प्रबन्धन के कारण चलन में अतिरिक्त मुद्रा आ जाती है, लेकिन वस्तुओं के उत्पादन में उनके अनुरूप वृद्धि नहीं हो पाती, जिससे मुद्रा-स्फीतिक स्थिति उत्पन्न होने लगती है।
2. **आर्थिक विषमताओं में वृद्धि**—हीनार्थ प्रबन्धन से जो मुद्रा-स्फीतिक प्रभाव उत्पन्न होते हैं, उनसे व्यवसायियों और उद्योगपतियों को काफी लाभ होता है, लेकिन वेतनभोगी और मध्यम वर्ग को कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है, जिससे आर्थिक विषमताएँ बढ़ती हैं।
3. **व्यापार असन्तुलन**—देश में मूल्यों की वृद्धि से आयातों में वृद्धि होने तथा निर्यातों में आशातीत प्रगति न होने की सम्भावना रहती है, जिससे व्यापार सन्तुलन विपरीत हो जाता है।
4. **सरकारी व्ययों में फिजूलखर्ची**—हीनार्थ प्रबन्धन का साधन उपलब्ध होने पर यह सम्भावना रहती है कि सरकार अपने वास्तविक आय साधनों को ध्यान में न रखे और अनावश्यक व्यय बढ़ते रहें।
5. **कर-वसूली में शिथिलता**—भारतीय सन्दर्भ में हीनार्थ प्रबन्धन का एक महत्त्वपूर्ण दोष यह रहा है कि इसके कारण वसूली में शिथिलता बनी रही है। यदि हीनार्थ प्रबन्धन को रोक दिया जाए, तो स्वाभाविक रूप से कर-वसूली कार्य को महत्त्वपूर्ण प्राथमिकता देनी होगी।

निष्कर्ष—हीनार्थ प्रबन्धन के विपक्ष में दिए गए उपर्युक्त तर्कों के सन्दर्भ में यह उल्लेखनीय है कि यह हानियाँ या कठिनाइयाँ हीनार्थ प्रबन्धन के कारण उत्पन्न नहीं होतीं वरन् हीनार्थ प्रबन्धन की गलत नीति के कारण होती हैं। **डॉ० बी०के०आर०वी० राव** के शब्दों में, "यह हीनार्थ प्रबन्धन नहीं है, जिसे मुद्रा-स्फीति के लिए उत्तरदायी ठहराया जा सकता है, वरन् यह सृजित मुद्रा का अनुत्पादक कार्यों में प्रयोग है, जिसने मुद्रा-स्फीति की स्थिति उत्पन्न की है।" अत: हीनार्थ प्रबन्धन में स्वयं कोई दोष नहीं है। यह तो उसकी विधि, उद्देश्य तथा सीमा पर निर्भर है कि इसके परिणाम लाभदायक होते हैं या हानिकारक।

प्र.6. भारत में बजट प्रक्रिया की विस्तार से विवेचना कीजिए।

Discuss in detail the budgetary procedure in India.

उत्तर

भारत में बजट प्रक्रिया
(Budgetary Procedure in India)

प्रत्येक देश में बजट प्रक्रिया वहाँ के विधान द्वारा निर्धारित की जाती है। यह प्रक्रिया लगभग सभी देशों में समान होती है। भारत में बजट प्रक्रिया का अध्ययन निम्न शीर्षकों के अन्तर्गत किया जा सकता है—I. बजट की तैयारी, II. बजट का प्रस्तुतीकरण, III. सामान्य विचार-विमर्श, IV. मतदान, V. विनियोग एवं वित्त विधेयक, तथा VI. बजट का क्रियान्वयन।

I. बजट की तैयारी (Preparation of the Budget)

बजट की तैयारी की प्रक्रिया विस्तृत रूप से निम्न प्रकार है—

1. **वित्त-मन्त्रालय द्वारा अनुमान-पत्र** (Estimate Form) **भेजना**—प्रत्येक वर्ष जुलाई-अगस्त के निकट वित्त-मन्त्रालय सभी मन्त्रालयों तथा उनके अधीन विभागों के अध्यक्षों के पास अनुमान-पत्र भेजता है और प्रत्येक मन्त्रालय तथा विभाग के अध्यक्षों को सूचित किया जाता है कि वे अपने मन्त्रालय विभाग से सम्बन्धित आगामी वर्ष के अनुमान तैयार करके फॉर्म भरकर वित्त-मन्त्रालय को भेज दें।
2. **विभाग अध्यक्ष द्वारा अनुमान तैयार करना**—विभाग अध्यक्ष द्वारा अनुमान दो भागों में तैयार किए जाते हैं—
   (i) वे अनुमान जिसका सम्बन्ध वर्तमान आय के साधनों और व्यय की मदों से होता है, तथा
   (ii) वे अनुमान जो नए कार्यों के सम्बन्ध में होने वाले आय और व्यय से सम्बन्धित हैं। इन दोनों अनुमानों में निम्न शीर्षकों के अन्तर्गत आँकड़े दिए जाते हैं—
      (a) गत वर्ष के वार्षिक आय और व्यय,
      (b) चालू वर्ष के आय और व्यय सम्बन्धी स्वीकृत अनुमान,
      (c) चालू वर्ष के शोधित (revised) आय और व्यय के अनुमान,
      (d) भावी वर्ष के बजट का अनुमान, तथा
      (e) चालू वर्ष और पिछले वर्ष के वास्तविक आय-व्यय सम्बन्धी अनुमान।

   विभागीय अध्यक्ष अपना कार्य लगभग अक्टूबर तक समाप्त कर लेता है और अनुमानों की एक प्रति अपने सम्बन्धित मन्त्रालय के पास तथा एक प्रति नियन्त्रक और महालेखा परीक्षक (C & AG) के पास भेज देता है।
3. **प्रशासकीय मन्त्रालय द्वारा अनुमानों पर विचार तथा सामूहिक अनुमान तैयार करना**—प्रत्येक प्रशासकीय मन्त्रालय पर अपने अधीन विभागों से जो अनुमान आते हैं, उन पर विचार किया जाता है और दिसम्बर के अन्त तक उन अनुमानों के आधार पर सामूहिक अनुमान तैयार करके वित्त-मन्त्रालय के पास भेज दिए जाते हैं।
4. **महालेखापाल** (Accountant General) **द्वारा विचार**—विभिन्न विभागों से अनुमान की जो एक प्रति नियन्त्रक और महालेखा-परीक्षक के कार्यालय में भेजी जाती है, उन पर महालेखापाल द्वारा विचार किया जाता है। वास्तव में, नियन्त्रक और महालेखापाल निरीक्षक के अधीन अनेक महालेखापाल होते हैं। यह सभी महालेखापाल अपने-अपने क्षेत्रों या विषयों से सम्बन्धित अनुमानों की जाँच करते हैं। [यहाँ यह उल्लेखनीय है कि जाँच अनुमानों की आवश्यकताओं की दृष्टि से नहीं की जाती वरन् लेखानियमों की दृष्टि से की जाती हैं। यह विचार भी दिसम्बर तक पूरा करके वित्त-मन्त्रालय के पास भेजा दिया जाता है।]
5. **वित्त-मन्त्रालय द्वारा विचार**—जब प्रशासकीय मन्त्रालयों द्वारा भेजे गए अनुमानों तथा महालेखापाल द्वारा भेजे गए अनुमान उनके विचार सहित वित्त-मन्त्रालय के पास पहुँच जाते हैं, तो सभी अनुमानों पर वित्त-मन्त्रालय द्वारा विचार किया जाता है। यदि इन अनुमानों में काई नई मद होती है, तो वित्त-मन्त्रालय उसके सम्बन्ध में गहरी छानबीन करता है। यदि व्यय की कोई बड़ी मद होती है, तो उसके सम्बन्ध में निर्णय मन्त्रीमण्डल द्वारा लिया जाता है।
6. **महालेखापाल द्वारा अनुमानों का वर्गीकरण**—वित्त-मन्त्रालय कुल अनुमानों को तैयार करके पुनः महालेखापाल के पास भेजता है, जिससे उन अनुमानों का लेखा-वर्गीकरण (Accounting Classification) हो सके। यह वर्गीकरण करके अनुमानों को वित्त-मन्त्रालय को लौटा दिया जाता है। यह कार्य लगभग जनवरी तक पूरा हो जाता है।
7. **अन्तःकालीन योजनाओं पर विचार**—यदि कोई विभाग या मन्त्रालय अपने पूर्व अनुमानों के अतिरिक्त कोई अन्य व्यय करना चाहता है, तो इसका अनुमान वित्त-मन्त्रालय को भेजता है। वित्त-मन्त्रालय इन पर निर्णय लेकर महालेखापाल को भेजता है, तो उनका वर्गीकरण करके पुनः वित्त-मन्त्रालय के पास वापस भेज देता है।
8. **वित्त-मन्त्रालय द्वारा आय के अनुमान लगाना**—बजट में व्ययों के साथ आयों का अनुमान भी लगाया जाता है और उसका उत्तरदायित्व वित्त-मन्त्रालय पर होता है। आय के अनुमान लगाने में 'प्रत्यक्ष करों की केन्द्रीय परिषद्' तथा 'उत्पादन एवं सीमा शुल्क की केन्द्रीय परिषद्' की सहायता ली जाती है। यदि आय के अनुमान व्यय के अनुमानों से कम होते हैं, तो वित्त-मन्त्री करों को देश में परिवर्तन एवं नए करों के सम्बन्ध में अपने सुझाव देता है। इस परिवर्तन में देश की आर्थिक स्थिति को ध्यान में रखा जाता है।

TOUCH 'n' PASS

II. बजट का प्रस्तुतीकरण (Presentation of Budget)

बजट को तैयार करने के पश्चात् संसद का अनुमोदन प्राप्त करने के लिए उसे संसद में प्रस्तुत किया जाता है। भारत में केन्द्रीय सरकार का बजट वर्तमान में फरवरी के पहले दिन पर प्रस्तुत किया जाता है। बजट को सर्वप्रथम लोक-सभा में वित्त-मन्त्री द्वारा प्रस्तुत किया जाता है। उसी दिन राज्य-सभा में भी वित्त-मन्त्रालय का कोई अन्य मन्त्री बजट प्रस्तुत करता है। वित्त-मन्त्री बजट प्रस्तुत करने के साथ ही बजट भाषण भी देता है। इस भाषण में वह देश की आर्थिक स्थिति का उल्लेख करता है, आय के समस्त साधनों और व्यय की विभिन्न मदों का विवरण देता है तथा विकास की विशिष्ट योजनाओं की जानकारी देता है।
बजट के प्रस्तुतीकरण के साथ ही **वित्त-विधेयक** (Finance Bill) भी प्रस्तुत किया जाता है। इसमें कर सम्बन्धी प्रस्ताव होते हैं। जिस दिन बजट प्रस्तुत किया जाता है, उस दिन उस पर कोई विचार-विमर्श नहीं होता, जिससे सदस्यों को बजट का विस्तृत अध्ययन करने के लिए पर्याप्त समय मिल सके।

III. सामान्य विचार-विमर्श (General Discussion)

बजट प्रस्तुत करने के पश्चात् उस पर सामान्य विचार-विमर्श लिए एक तिथि निश्चित कर दी जती है। यह विचार-विमर्श लगभग दो से चार दिन तक चलता है। इस विचार-विमर्श में केवल नीतियों पर बहस की जाती है। जिन मदों पर मतदान की आवश्यकता नहीं है, सामान्य विचार-विमर्श में उन मदों पर भी बहस की जा सकती है। बहस की समाप्ति पर वित्त-मन्त्री बहस में की गई आलोचनाओं और उठायी गई शंकाओं का उत्तर देता है तथा इस उत्तर के साथ बजट पर सामान्य विचार-विमर्श का चरण पूरा हो जाता है।

IV. मतदान (Voting)

बजट पर सामान्य बहस होने के पश्चात् उस पर मतदान का प्रश्न उठता है। मतदान की दृष्टि से बजट में दो प्रकार के व्यय अलग-अलग दिखाए जाते हैं—1. गैर-मत योग्य मदें, और 2. मत योग्य मदें।

1. **गैर-मत योग्य मदें** (Non-votable Items)—वे हैं, जिनकी व्यय की स्वीकृति के लिए लोक-सभा में मतदान की कोई आवश्यकता नहीं होती। ये व्यय **'भारत के संघनित कोष'** (Consolidated Fund of India) में से चुकाए जाते हैं। इन मदों में राष्ट्रपति का वेतन-भत्ता, और उनके कार्यालय से सम्बन्धित व्यय, संसद के अध्यक्ष और उपाध्यक्ष का वेतन और भत्ता, सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीशों के वेतन और भत्ते, भारत के नियन्त्रक और महालेखा परीक्षक का वेतन और भत्ते, सार्वजनिक ऋण सम्बन्धी मूलधन और ब्याज का भुगतान इत्यादि शामिल होता है।
2. **मत योग्य मदें** (Votable Items)—वे हैं, जिनके व्यय की स्वीकृति के लिए संसद में मतदान की आवश्यकता होती है। मतदान योग्य मदों पर सम्बन्धित मन्त्री अनुदानों की माँग (Demand for Grants) करते हैं, जिस पर अलग-अलग बहस की जाती है।

लोक-सभा माँगों के लिए अपना मत निम्न प्रकार से दे सकती हैं—1. माँगे पूर्णत: स्वीकार कर ली जाएँ, 2. माँगे अस्वीकार कर दी जाएँ या 3. माँगें कटौती के साथ स्वीकार की जाएँ। यह उल्लेखनीय है कि लोक-सभा माँगों में वृद्धि नहीं कर सकती। कटौती के प्रस्ताव तीन प्रकार के हो सकते हैं—

(i) नीति कटौती प्रस्ताव (Policy cut motion),
(ii) मितव्ययिता कटौती प्रस्ताव (Economy cut motion), तथा
(iii) सांकेतिक कटौती प्रस्ताव (Token cut motion)

कटौती प्रस्ताव करने वाला सदस्य माँग की गई राशि के सम्बन्ध में आलोचनाएँ करता है और सम्बन्धित मन्त्री उनका उत्तर देता है। यदि प्रस्ताव उत्तर से सन्तुष्ट हो जाता है, तो अपने कटौती प्रस्ताव को वापस ले लेता है अन्यथा कटौती प्रस्ताव पर मतदान होता है। यदि कटौती प्रस्ताव पास हो जाता है, तो इसका अर्थ मन्त्रीमण्डल के प्रति अविश्वास समझा जाता है।

V. विनियोग एवं वित्त-विधेयक (Appropriation and Finance Bill)

अनुदान की माँगों के स्वीकृत हो जाने के पश्चात् वित्त-मन्त्री एक विनियोग विधेयक प्रस्तुत करता है। इस विधेयक में गैर-मत योग्य मदें तथा स्वीकृत हो गई मत-योग्य मदें शामिल होती हैं। इस विधेयक के पारित हो जाने पर सरकार को बजट राशि व्यय करने का अधिकार मिल जाता है।

TOUCH 'n' PASS

विनियोग विधेयक के पारित होने के पश्चात् वित्त-विधेयक को पारित कराया जाता है। इस विधेयक में सरकार के 4 प्रस्ताव होते हैं, जिनमें बजट व्यय करने के लिए नया कर लगाने, पुराने करों की दरें हटाने या परिवर्तन करने के सुझाव एवं संशोधन होते हैं। जब लोकसभा द्वारा विनियोग एवं वित्त-विधेयक पारित कर दिए जाते हैं, तो इन्हें विचारार्थ राज्य-सभा में भेज दिया जाता है। इन विधेयकों पर विचार करके राज्य-सभा को 14 दिन के अन्दर लोकसभा को वापस करना होता है। यदि राज्यसभा इस अवधि में यह बिल वापस नहीं करती, तो लोकसभा यह मान लेती है कि राज्य-सभा इससे सहमत है और बिलों की स्वीकृत के लिए राष्ट्रपति के पास भेज देती है।

अनुपूरक माँगे (Supplementary Demands)—कभी-कभी लोकसभा द्वारा पारित किए गए बजट की राशि वर्ष में व्ययों के लिए कम पड़ जाती है या सरकार को किसी नई मद पर व्यय करना होता है, तो इसके लिए पूरक बजट प्रस्तुत किया जाता है और उसमें माँगों को अनुपूरक माँगों के रूप में प्रस्तुत किया जाता है।

लेखा अनुदान (Vote on Account)—यदि बजट को पास होने में 1 अप्रैल के बाद का समय लग जाता है, तो इस मध्य सरकार अपने व्ययों को करने के लिए लेखा अनुदान के आधार पर व्यय करने की अनुमति प्राप्त कर लेती है।

साख अनुदान (Vote on Credit)—कभी-कभी राष्ट्रीय संकट और विशेष रूप से युद्ध के समय सरकार को अतिरिक्त राशि की आवश्यकता पड़ती है, लेकिन जिसके सम्बन्ध में सरकार विस्तृत सूचना नहीं देना चाहती, तो इनकी व्यय की माँग को साख अनुदान के रूप में प्रस्तुत किया जाता है।

VI. बजट का क्रियान्वयन (Execution of the Budget)

बजट के पारित हो जाने के पश्चात् उसे क्रियान्वित किया जाता है। बजट के क्रियान्वयन के विविध पहलुओं का अध्ययन निम्न शीर्षकों के अन्तर्गत किया जा सकता है—

1. **आय का एकत्रीकरण** (Collection of Revenue)—बजट क्रियान्वयन का सबसे पहला कदम आय का एकत्रीकरण है। आय के एकत्रीकरण की दो क्रियाएँ हैं—(i) विभिन्न व्यक्तियों या संस्थाओं में एकत्र की जाने वाली राशि का निर्धारण, तथा (ii) इस निर्धारण के आधार पर आय का एकत्रण। केन्द्रीय सरकार में इस कार्य के लिए वित्त-मन्त्रालय में दो परिषदें हैं—
   (i) प्रत्यक्ष करों की केन्द्रीय परिषद् (Central Board of Direct Taxes), तथा
   (ii) उत्पादन शुल्क और सीमा शुल्क की केन्द्रीय परिषद् (Central Board of Excise and Custom)।
2. **करों की अभिरक्षा** (Custody of Funds)—आय के एकत्रीकरण के पश्चात् कोषों की अभिरक्षा की व्यवस्था की जाती है। इस व्यवस्था में दो बातों पर मुख्य रूप से ध्यान दिया जाता है—
   (i) कोषों के सम्बन्ध में सभी सम्भावित गबनों और दुरुपयोगों को रोका जा सके, तथा
   (ii) धन के व्यवहारों में सुविधा और तत्परता बनी रहे।
   प्रारम्भ में यह कार्य सरकारी खजानों और उप-खजानों के माध्यम से किया जाता था, लेकिन अब इसके लिए बैंकिंग सुविधाओं, विशेषकर रिजर्व बैंक और स्टेट बैंक का भी प्रयोग किया जाता है।
3. **कोषों का वितरण** (Disbursement of Funds)—बजट के क्रियान्वयन में एक महत्त्वपूर्ण पहलू व्ययों का करना, अर्थात् कोषों का वितरण करना होता है। इस सम्बन्ध में भारत में व्यवस्था यह है कि विनियोग विधेयक पारित हो जाने के पश्चात् विभिन्न मन्त्रालयों और विभागों को उनके लिए स्वीकृत की गई राशि के सम्बन्ध में सूचित कर दिया जाता है। प्रत्येक मन्त्रालय और विभाग का यह उत्तरदायित्व होता है कि व्यय को स्वीकृत हुई मदों पर और केवल स्वीकृत हुई राशि तक ही करें।
4. **लेखे तैयार करना** (Preparation of Accounts)—प्रारम्भ में लेखे तैयार करना और अंकेक्षण करने का कार्य एक ही विभाग, 'Audit and Accounts Department of the Govt. of India' के नियन्त्रण में था, जिसका अध्यक्ष नियन्त्रक और महालेखा अंकेक्षक (C & AG) होता था। 1 मार्च, सन् 1976 से अंकेक्षण कार्य को लेखा कार्य से पृथक् कर दिया गया है।
5. **अंकेक्षण**—लेखों के तैयार हो जाने पर उनका अंकेक्षण होता है और फिर महालेखा अंकेक्षक उसकी अंकेक्षण रिपोर्ट प्रस्तुत करता है, जिसे संसद में प्रस्तुत किया जाता है।

TOUCH 'n' PASS

प्र.8. बजट के उद्देश्यों का विस्तार से उल्लेख करते हुए बजट के प्रकार लिखिए।
Explaining the objectives of budget in detail, write the types of budget.

उत्तर

बजट के उद्देश्य या महत्त्व
(Objctives or Importance of Budget)

बजट वित्तीय प्रशासन का एक महत्त्वपूर्ण उपकरण और राज्यकोषीय नीतियों को लागू करने का प्रभावशाली साधन है। इसके महत्त्व की चर्चा करते हुए **फिण्डले शिराज** ने लिखा है कि "बजट नि:सन्देह प्रशासन की धुरी है तथा अच्छे सिद्धान्तों पर आधारित बजट के बिना वित्तीय कठिनाइयाँ अपने सभी परिणामों के साथ इस प्रकार आती हैं, जिस प्रकार दिन के बाद रात्रि आती है।" **फिलिप ई० टेलर** ने लिखा है कि "बजट सरकार की विस्तृत वित्तीय योजना (Master financial plan) है।" बजट के महत्त्व को निम्न शीर्षकों में रखा जा सकता है—

1. **हिसाबदेयता** (Accountability) **के उद्देश्य की पूर्ति**—भारत जैसे प्रजातान्त्रिक राष्ट्र में सरकार जनता के प्रति इस बात के लिए हिसाबदेय होती है कि सार्वजनिक धन का प्रयोग किस प्रकार किया जा रहा है और इसमें पूर्व स्वीकृतियों का पालन किया गया है या नहीं? बजट के माध्यम से इस उद्देश्य की पूर्ति हो जाती है।
2. **प्रशासकीय कुशलता का साधन** (Tools of Administrative Efficiency)—बजट का एक महत्त्व यह है कि इससे वित्तीय प्रशासन में कुशलता लायी जा सकती है। इसमें पहले से प्रत्येक क्षेत्र की आवश्यकताओं का अनुमान लगा लिया जाता है फिर उनके अनुसार व्यय करने की स्वीकृति दी जाती है। इसके पश्चात् इस बात पर ध्यान दिया जाता है कि इन स्वीकृतियों के अनुसार व्यय किया जाए और यदि कोई असाधारण अन्तर हो, तो उस सम्बन्ध में सुधारात्मक कदम उठाए जाएँ।
3. **आर्थिक नियोजन में सहायक** (Helpful in Economic Planning)—वर्तमान समय में, प्रत्येक देश में किसी-न-किसी रूप में आर्थिक नियोजन और कार्यक्रमों को अपनाया जा रहा है। नियोजन के लिए वित्तीय साधन जुटाने और नियोजन में निर्धारित आर्थिक नीतियों को लागू करने में बजट की उल्लेखनीय भूमिका रहती है।
4. **राजकोषीय नीतियों का उपकरण** (Tool of Fiscal Policies)—सरकार को उत्पादन में वृद्धि, आर्थिक स्थायित्व और पूर्ण रोजगार आदि की दृष्टि से कर, व्यय, ऋण इत्यादि के सम्बन्ध में जिन विभिन्न नीतियों को लागू करना होता है, उन्हें बजट के माध्यम से ही अपनाया जाता है।
5. **सार्वजनिक कोषों पर विधायी नियन्त्रण** (Legislative Control on Public Funds)—बजट के माध्यम से केन्द्रीय सरकार की दशा में संसद को और राज्य सरकारों की दशा में विधान-सभाओं को सार्वजनिक कोषों की प्राप्ति और प्रयोग के सम्बन्ध में नियन्त्रण का अधिकार प्राप्त हो जाता है।
6. **सामाजिक कल्याण का आधार** (Basis of Public Welfare)—यदि बजट उचित रूप से तैयार किए जाएँ, तो इनमें सामाजिक कल्याण के अनेक उद्देश्यों की पूर्ति में सहायता मिलती है; जैसे—आय और सम्पत्ति के वितरण की असमानताओं को कम करना, सामाजिक सुरक्षा की योजनाओं को लागू करना, पिछड़े क्षेत्रों का विकास करना तथा निर्धन वर्ग के कल्याण पर व्यय करना इत्यादि।
7. **आर्थिक क्रियाओं का विश्लेषण** (Analysis of Economic Activities)—बजट से देश में विभिन्न आर्थिक क्रियाओं का विश्लेषण किया जा सकता है; जैसे—सरकारी क्रियाओं से राष्ट्रीय आय में क्या वृद्धि हो रही है या लोक क्षेत्र में देश में पूँजी-निर्माण में क्या भाग है इत्यादि। वास्तविकता यह है कि बजट देश की व्यवस्था के सभी आर्थिक पहलुओं के परीक्षण का अवसर प्रदान करता है।

बजट के प्रकार
(Kinds of Budget)

बजट के प्रमुख प्रकारों को निम्न आधार पर विभाजित किया जा सकता है—

I. सन्तुलन के आधार पर (On the Basis of Balance in Budget)

बजट में आगम और व्ययों में सन्तुलन के आधार पर बजट दो प्रकार के हो सकते हैं—

1. **सन्तुलित बजट** (Balanced Budget)—यदि बजट में आगम और व्ययों की राशि समान होती है, तो उसे सन्तुलित बजट कहा जाता है।

TOUCH 'n PASS

यह उल्लेखनीय है कि वर्तमान सन्दर्भ में सन्तुलित बजट एक आदर्श व्यवस्था है, जिसे व्यावहारिक रूप में अपनाना काफी कठिन होता है।

2. **असन्तुलित बजट** (Unbalanced Budget)—असन्तुलित बजट से आशय ऐसे बजट से है, जिसमें सरकार की आगम एवं व्ययों में समानता नहीं होती। असन्तुलित बजट दो प्रकार के हो सकते हैं—
   (i) **घाटे का बजट**—यदि बजट में आगम की तुलना में व्ययों की राशि अधिक होती है, तो उसे घाटे का बजट कहा जाता है।
   (ii) **आधिक्य का बजट**—यदि बजट में व्ययों की तुलना में आगम की राशि अधिक होती है, तो उसे आधिक्य का बजट कहा जाता है।

II. बजट की मदों की प्रकृति के आधार पर (On the basis of Items of Budget)

इस दृष्टि से बजट निम्न दो प्रकार के होते हैं—

1. **आगम बजट** (Revenue Budget)—इस बजट में आयगत प्रकृति की आय एवं व्ययों की मदों को शामिल किया जाता है।
2. **पूँजीगत बजट** (Capital Budget)—पूँजीगत बजट में पूँजीगत मदों पर होने वाले व्ययों को शामिल किया जाता है और इसकी अधिकांश राशि की पूर्ति ऋणों द्वारा की जाती है।

III. अन्य वर्गीकरण (Other Classification)

1. **सामान्य बजट** (Ordinary Budget)—जिन बजटों का निर्माण सामान्य परिस्थितियों में वार्षिक आधार पर किया जाता है, उन्हें सामान्य बजट कहा जाता है।
2. **तदर्थ बजट या अन्तरिम बजट** (Provisional or Intrim Budget)—इसे व्यवस्था के अन्तर्गत पूरे वर्ष के लिए तैयार नहीं किया जाता और कुछ अवधि के लिए लेखा-अनुदान के आधार पर व्यय करने की अनुमति प्राप्त कर ली जाती है।
3. **पूरक बजट** (Supplementary Budget)—कभी-कभी सरकार द्वारा पास कराए गए बजट की राशि वार्षिक व्ययों के लिए कम पड़ जाती है या सरकार को किसी नई मद पर व्यय करना होता है, तो इसके लिए पूरक बजट पास किया जाता है।
4. **साख-अनुमान बजट** (Vote on Credit Budget)—कभी-कभी राष्ट्रीय संकट और विशेष रूप से युद्ध के समय सरकार को अतिरिक्त राशि की आवश्यकता पड़ती है, लेकिन जिसके सम्बन्ध में सरकार विस्तृत सूचना नहीं देना चाहती, तो इनकी व्यय की माँग को साख-अनुदान के रूप में प्रस्तुत किया जाता है।

बहुविकल्पीय प्रश्न

प्र.1. कब भारत सरकार के वित्त सदस्य बैसिल ब्लैकिट ने ऋणों के भुगतान हेतु एक नवीन योजना का निर्माण किया गया—

(a) 1921 (b) 1922
(c) 1923 (d) 1924

उत्तर (d) 1924

प्र.2. निम्न में कौन-सा प्रत्यक्ष कर नहीं है—

(a) विलासिता कर (b) मनोरंजन कर
(c) आय कर (d) सम्पदा कर

उत्तर (c) आय कर

प्र.3. निम्न में कौन-सा प्रत्यक्ष कर है—

(a) प्रवेश कर एवं चुंगी (b) स्टाम्प शुल्क
(c) दूरसंचार लाइसेंस शुल्क (d) ये सभी

उत्तर (d) ये सभी

TOUCH 'n' PASS

प्र.4. माल शब्द किस शब्द का अर्थ है—
(a) वाद-योग्य दावे (b) उगती फसलें
(c) ऐसी वस्तुएँ जो भूमि का भाग हैं (d) ये सभी
उत्तर (d) ये सभी

प्र.5. सामान्य परिशोधन कोष की स्थापना कब हुई थी?
(a) 1923 (b) 1924 (c) 1925 (d) 1926
उत्तर (b) 1924

प्र.6. राजस्व मदों के अन्तर्गत किसे शामिल किया जाता है—
(a) ब्याज भुगतान (b) प्रतिरक्षा राजस्व व्यय
(c) किसानों को ऋण राहत (d) ये सभी
उत्तर (d) ये सभी

प्र.7. जी०एस०टी० (GST) के समूचे देश में कब से लागू किया गया—
(a) 1 जुलाई, 2016 (b) 1 जुलाई, 2017
(c) 1 जुलाई, 2018 (d) 1 जुलाई, 2019
उत्तर (b) 1 जुलाई, 2017

प्र.8. जी०एस०टी० के कितने हिस्से हैं—
(a) 2 (b) 3 (c) 4 (d) 5
उत्तर (a) 2

प्र.9. निम्न में कौन-सा कथन सही है—
(a) CGST केन्द्र सरकार के खाते में जमा किया जाता है
(b) SGST को राज्य सरकार के खाते में जमा किया जाता है
(c) राज्यों द्वारा लगाये गये करों को राज्य वस्तु एवं सेवा कर कहा जाता है
(d) उपरोक्त सभी
उत्तर (d) उपरोक्त सभी

प्र.10. निम्न में कौन-सा जी०एस०टी० से प्रतिस्थापित कर है—
(a) केन्द्रीय उत्पाद शुल्क (b) सेवा कर
(c) मनोरंजन और मनोरंजक कर (d) ये सभी
उत्तर (d) ये सभी

प्र.11. CGST के अन्तर्गत कौन-सा कर नहीं आता है?
(a) सेवा कर (b) प्रवेश शुल्क (c) उत्पाद शुल्क (d) विशेष अतिरिक्त शुल्क
उत्तर (b) प्रवेश शुल्क

प्र.12. निम्न में कौन-सा राज्य कर नहीं है—
(a) वैट (b) विक्रय कर
(c) उत्पाद शुल्क अतिरिक्त देय (d) क्रय कर
उत्तर (c) उत्पाद शुल्क अतिरिक्त देय

प्र.13. निम्न में किसमें मिश्रित उद्ग्रहण होता है परन्तु केन्द्र सरकार द्वारा संग्रहण होता है—
(a) CGST (b) SGST
(c) IGST (d) इनमें से कोई नहीं
उत्तर (c) IGST

TOUCH 'n PASS

प्र.14. निम्न में कौन-सा कर संघ शासित प्रदेश में लगता है—
(a) CGST (b) SGST (c) IGST (d) VTGST
उत्तर (d) VTGST

प्र.15. भारत में सरकारी व्यय की वृद्धि का कौन-सा कारण है—
(a) प्रतिरक्षा सेवाओं का विस्तार (b) सामाजिक सुरक्षा एवं कल्याणकारी सेवाओं में वृद्धि
(c) ऋण तथा ब्याज की अदायगी में वृद्धि (d) ये सभी
उत्तर (d) ये सभी

प्र.16. वार्षिक व्ययों के लिए जब राशि कम पड़ जाती है तब पारित करते हैं—
(a) सामान्य बजट (b) साख अनुमान बजट
(c) अन्तरिम बजट (d) पूरक बजट
उत्तर (d) पूरक बजट

प्र.17. जब कुछ अवधि के लिए लेखा-अनुदान के आधार पर व्यय करने की अनुमति प्राप्त कर ली जाती है, वह बजट कहलाता है—
(a) सामान्य बजट (b) तदर्थ बजट (c) पूरक बजट (d) साख-अनुमान बजट
उत्तर (b) तदर्थ बजट

प्र.18. किस बजट में आयगत प्रकृति की आय एवं व्ययों की मदों को शामिल किया जाता है—
(a) घाटे का बजट (b) आधिक्य का बजट (c) आगम बजट (d) पूँजीगत बजट
उत्तर (c) आगम बजट

प्र.19. कब से लेखा कार्य से अंकेक्षण कार्य को पृथक कर दिया गया—
(a) 1 मार्च, 1975 (b) 1 मार्च, 1976 (c) 1 मार्च, 1977 (d) 1 मार्च, 1978
उत्तर (b) 1 मार्च, 1976

प्र.20. बजट का कौन-सा उद्देश्य या महत्त्व है—
(a) आर्थिक नियोजन में सहायक (b) आर्थिक क्रियाओं का विश्लेषण
(c) राजकोषीय नीतियों का उपकरण (d) ये सभी
उत्तर (d) ये सभी

प्र.21. विनियोग विधेयक में सरकार के कितने प्रस्ताव होते हैं—
(a) 2 (b) 3 (c) 4 (d) 5
उत्तर (c) 4

प्र.22. राज्य सभा को विनियोग एवं वित्त-विधेयक पर कितने दिन के अन्दर विचार करके वापस करना होता है—
(a) 12 दिन (b) 13 दिन (c) 14 दिन (d) 15 दिन
उत्तर (c) 14 दिन

प्र.23. राष्ट्रीय संकट और विशेष रूप से युद्ध के समय अतिरिक्त राशि स्वीकृति का माध्यम बनता है—
(a) लेखा अनुदान (b) साख अनुदान (c) अनुपूरक माँगे (d) इनमें से कोई नहीं
उत्तर (b) साख अनुदान

प्र.24. भारत में बजट प्रक्रिया 6 शीर्षकों के अन्तर्गत की जा सकती है। मतदान इसमें कौन-से स्थान पर आयेगा—
(a) पहले (b) दूसरे
(c) तीसरे (d) चौथे
उत्तर (d) चौथे

TOUCH 'n' PASS

प्र.25. निम्न में कौन-सा कटौती प्रस्ताव होता है—
(a) नीति कटौती प्रस्ताव (b) मितव्ययिता कटौती प्रस्ताव
(c) सांकेतिक कटौती प्रस्ताव (d) ये सभी
उत्तर (d) ये सभी

प्र.26. भारत के संघनित कोष से कौन-सा वेतन नहीं दिया जाता—
(a) राष्ट्रपति का (b) सांसदों का
(c) सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीश (d) भारत के नियन्त्रक एवं महालेखा परीक्षक
उत्तर (b) सांसदों का

प्र.27. वित्त मन्त्रालय सभी मन्त्रालयों तथा उनके अधीन मन्त्रालयों को कब अनुमान-पत्र भेजता है—
(a) जुलाई-अगस्त के निकट (b) सितम्बर-अक्टूबर के निकट
(c) नवम्बर-दिसम्बर के निकट (d) इनमें से कोई नहीं
उत्तर (a) जुलाई-अगस्त के निकट

प्र.28. भारत में आर्थिक नियोजन का मार्ग कब अपनाया गया?
(a) 1 अप्रैल, 1950 (b) 1 अप्रैल, 1951 (c) 1 अप्रैल, 1952 (d) 1 अप्रैल, 1953
उत्तर (b) 1 अप्रैल, 1951

प्र.29. हीनार्थ प्रबन्धन के पक्ष में कौन-सा तर्क नहीं है?
(a) आर्थिक विकास की गति को बनाये रखना (b) प्रभावपूर्ण माँग में वृद्धि
(c) व्यापार असन्तुलन (d) गैर-मौद्रिक क्षेत्रों का मौद्रिक क्षेत्र में परिवर्तन
उत्तर (c) व्यापार असन्तुलन

प्र.30. हीनार्थ प्रबन्धन के विपक्ष में कौन-सा तर्क सही नहीं है—
(a) मुद्रा स्फीतिक प्रभाव (b) आर्थिक विषमताओं में कमी
(c) सार्वजनिक उद्योगों में विनियोग व्यवस्था (d) व्यापार असन्तुलन
उत्तर (c) सार्वजनिक उद्योगों में विनियोग व्यवस्था

प्र.31. केन्द्रीय सरकार के लोक ऋण में कितने प्रकार की देयताएँ शामिल की जाती हैं—
(a) 2 (b) 3 (c) 4 (d) 5
उत्तर (b) 3

प्र.32. निम्न में कौन-सी समितियाँ कराधान से सम्बन्धित हैं—
(a) वान्चू समिति (b) काल्डोर समिति
(c) डी०के० रंगनेकर समिति (d) ये सभी
उत्तर (d) ये सभी

प्र.33. सम्पत्ति कर सर्वप्रथम भारत में कब लगाया गया था—
(a) 1957-58 (b) 1959-1960 (c) 1961-62 (d) 1963-1964
उत्तर (a) 1957-58 ❑

TOUCH 'n' PASS

- यद्यपि इस पुस्तक को यथासम्भव शुद्ध एवं त्रुटिरहित प्रस्तुत करने का भरसक प्रयास किया गया है, तथापि इसमें कोई कमी अथवा त्रुटि अनिच्छाकृत ढंग से रह गई हो तो उससे कारित क्षति अथवा सन्ताप के लिए लेखक, प्रकाशक तथा मुद्रक का कोई दायित्व नहीं होगा। सभी विवादित मामलों का न्यायक्षेत्र मेरठ न्यायालय के अधीन होगा।
- इस पुस्तक में समाहित सम्पूर्ण पाठ्य-सामग्री (रेखा व छायाचित्रों सहित) के सर्वाधिकार प्रकाशक के अधीन हैं। अतः कोई भी व्यक्ति इस पुस्तक का नाम, टाइटिल-डिजाइन तथा पाठ्य-सामग्री आदि को आंशिक या पूर्ण रूप से तोड़-मरोड़कर प्रकाशित करने का प्रयास न करें, अन्यथा कानूनी तौर पर हर्जे-खर्चे व हानि के जिम्मेदार होंगे।
- इस पुस्तक में रह गई तथ्यात्मक त्रुटियों तथा अन्य किसी भी कमी के लिए विद्वत् पाठकगण से भूल-सुधार/सुझाव एवं टिप्पणियाँ सादर आमन्त्रित हैं। प्राप्त सुझावों अथवा त्रुटियों का समायोजन आगामी संस्करण में कर दिया जाएगा। किसी भी प्रकार के भूल-सुधार/सुझाव आप info@vidyauniversitypress.com पर भी ई-मेल कर सकते हैं।